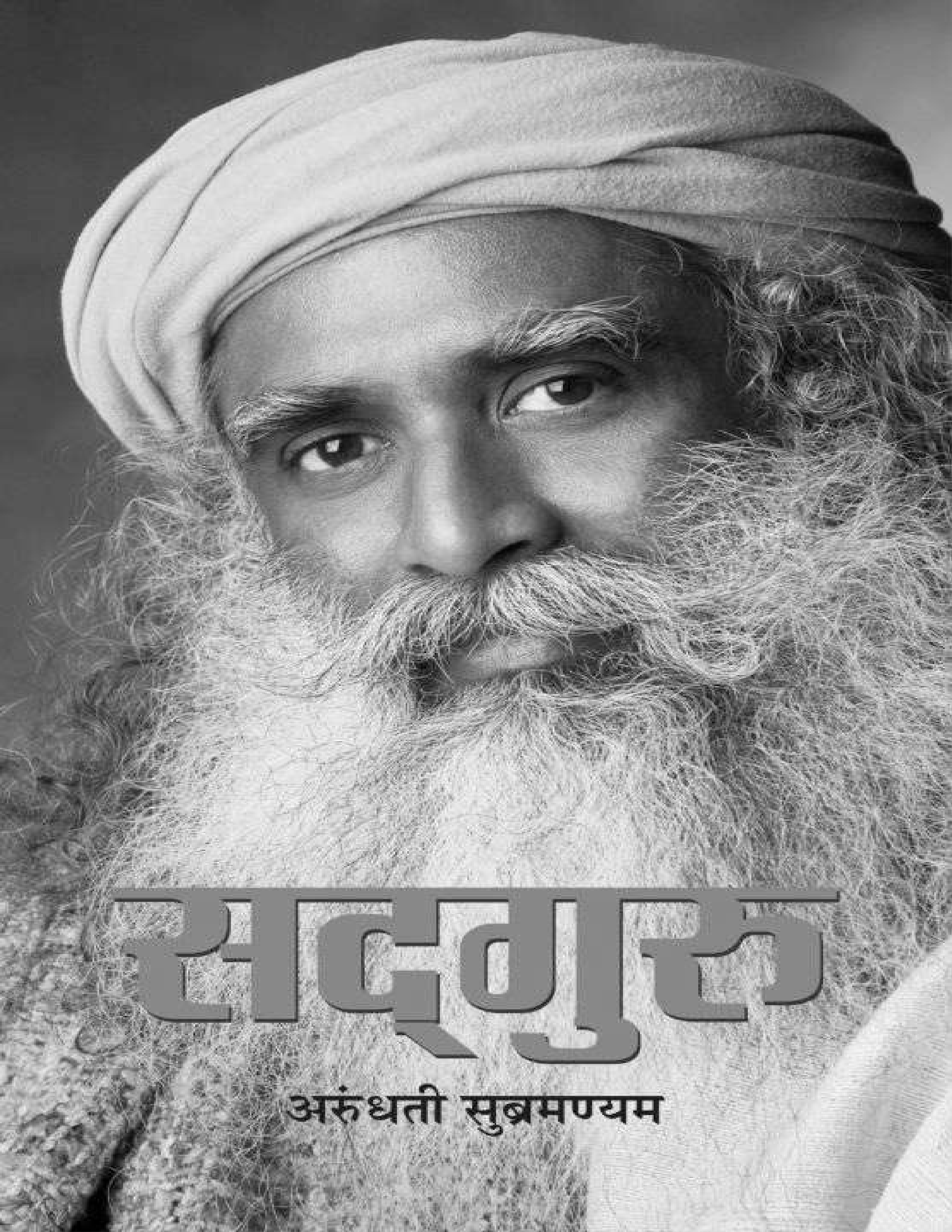
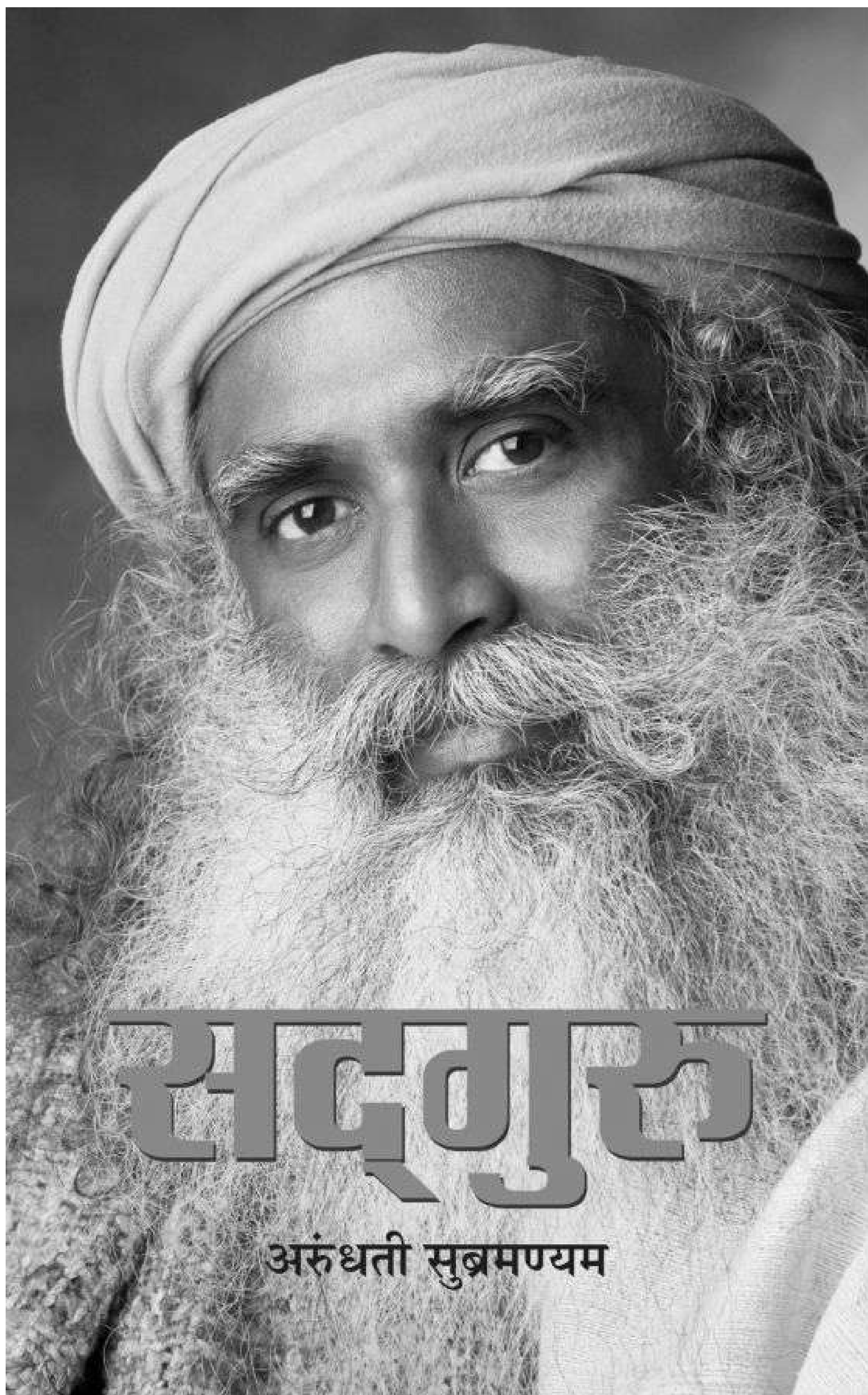
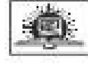

सद्गुरु
अरुंधती सुब्रमण्यम


सद्गुरु
अरुंधती सुब्रमण्यम

सद्गुरु

अरुंधती सुब्रमण्यम



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रस्तावना

यह पुस्तक एक व्यक्ति की जीवन यात्रा या यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जीवन यात्राओं का आत्मनिष्ठ वर्णन है। यह वस्तुत: जीवनी नहीं है, जैसाकि इस शब्द (जीवनी) से तिथियों, समयों और घटनाओं की प्रामाणिक सूची की उम्मीदों का आभास होता है। यह उस व्यक्ति (सद्गुरु) से, उनके परिचितों से मेरी बातचीत एवं ईश योग केंद्र कोयंबतूर के पुरालेखागार में संग्रहीत सामग्री पर आधारित है।

जब व्यक्ति आध्यात्मिक हो तो आप अपरिहार्य रूप से उच्च आत्मनिष्ठता के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। मेरा अधिकतर वृत्तांत सद्गुरु के जीवन के प्रारंभिक काल से जुड़ी आंतरिक एवं बाह्य घटनाओं पर आधारित है। तदुपरांत उनके मिशन से जुड़े, उनके इर्द-गिर्द रहनेवाले लोगों के दृष्टिकोणों एवं राय पर भरोसा किया है।

मैंने कहानी में जिज्ञासु के तौर पर अपनी स्वयं की यात्रा को भी प्रासंगिक युक्ति के रूप में शामिल करने का निर्णय लिया। स्वयं को एक मिथ्या सर्वज्ञ कथाकार मान लेने के स्थान पर यही उचित प्रतीत हुआ कि मैं पाठकों को अपनी हैसियत (सन्निहित पूर्वाग्रहों एवं सीमाओं के साथ) का जायजा दूँ।

कथानक के आगे बढ़ने के साथ ही यह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता गया कि अन्य पक्ष के तौर पर भूमिका निभाना असंभव ही होगा। परिणामस्वरूप कहानी के कुछ निश्चित बिंदुओं पर मैंने जान-बूझकर स्वयं को अपने हिस्से के प्रश्न एवं प्रति-प्रश्न पूछने के लिए स्थान दिया है, जिनसे मेरा मानना है कि अनेक पाठक भी लाभान्वित होंगे।

मैं ईश योग केंद्र से जुड़े उन लोगों की भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों के आधार पर अपने जीवन के गहनतम अनुभव मेरे साथ बाँटे। उनकी उदारता, उनकी ईमानदारी, उनके अंतर्ज्ञान के बिना इस पुस्तक का अस्तित्व में आना संभव न होता।

सद्गुरु के विषय में तो उतने ही मत हैं, जितने लोग उन्हें जानते हैं और इस राह पर मेरा सामना अनेक सक्षम जीवनीकारों से भी हुआ। यह पुस्तक सद्गुरु के जीवन एवं ईश के उदय के वृत्तांत से अधिक और कुछ नहीं है।

संभवत: इसी विषय पर कुछ अन्य पुस्तकें भी होंगी।

मैं विशेष धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूँगी ईश पुरालेखागार से जुड़ी माँ ग्नाना के प्रति जिन्होंने पूर्ण शांतचित्त एवं स्वाभाविक मुसकान के साथ मेरे बहुत से विविध अनुरोधों को लेकर सहयोगात्मक रुख अपनाया; स्वामी चितरंग एवं स्वामी देवासत्व के प्रति, जिन्होंने पुस्तक का आवरण पृष्ठ डिजाइन किया।

सर्वोपरि मैं सद्गुरु की आभारी हूँ, जिन्होंने इस पांडुलिपि हेतु मुझे पूर्ण स्वतंत्र होकर कार्य करने की अनुमति दी, विवरणों को निजी तौर पर खुलकर उपलब्ध कराया एवं लगभग रोंगटे खड़े कर देनेवाली सजीवता के प्रति जिससे वह अपने जीवन को खुली किताब सा छोड़ देते हैं, ताकि सभी धारणाओं के पाठक अपने स्वयं के निष्कर्षों पर पहुँच सकें।

परिचय



मैं सोचती थी कि गुरु कुछ और ही तरह के लोगों के लिए होते हैं। मैं अपने दंभ को अविलंब स्वीकार कर लूँ। मैं सोचती थी कि वे कुछ विशेष तरह के सफारी सूट पहननेवाले भारतीय पुरुषों एवं उनकी आज्ञाकारिणी विनम्र पत्नियों के लिए होते हैं।

मैं सोचती थी कि वे उनके लिए होते हैं, जो कर्मकांड की बारीकियों एवं पंडितों के औपचारिक शिष्टाचार की जानकारी रखते हैं, उन्हें, जिन्हें पवित्र चरणों में नतमस्तक होने और सत्संगों में अति प्रसन्न नजर आने के गुर मालूम हैं।

एक स्तर पर यह सत्य भी है, किंतु मैं यह स्वीकार करती हूँ कि यह स्तर कुछ हास्यास्पद सा है। मैं यह भी कह लूँ कि बतौर अन्वेषक (यातना और इच्छा के मेरे हिस्से के साथ) मैंने इस बात का पर्याप्त अध्ययन किया था कि गुरु तभी प्रकट होते हैं जब चेले तैयार हों। किंतु किसी गुरु के मुंबई लोकल ट्रेन के सबसे ज्यादा भीड़वाले समय में प्रकट होने के कितने संयोग हैं? या कविता पाठन के दौरान? या किसी शहरी बुक स्टॉल या थिएटर या कैफे पर उनके प्रकट होने के क्या संयोग हैं? और इन बातों के कितने संयोग हो सकते हैं कि एक गुरु मेरी खास भाषा बोले, मेरे जटिल, आंतरिक भूगोल का अनुमान लगा ले— एक ही समय में मेरी मार्गदर्शन की आवश्यकता और मार्गदर्शकों के प्रति घृणा, ऐसी शब्दावली की मेरी आवश्यकता जो पवित्र होने के अलावा धर्मनिरपेक्ष भी हो? और मेरी संरक्षकों को यातनादायकों में बदल देने की विशिष्टता?

नहीं, गुरु आज की शहरी औरतों के लिए नहीं होता। उनके लिए मनोचिकित्सक होते हैं। पुस्तकें एवं वार्त्तालाप होते हैं। विटजेंसटीन किर्केगार्द एवं कृष्णमूर्ति का दर्शन बघारनेवाले मित्र हुआ करते हैं। गुरुओं का संबंध दूसरे युग से, दूसरी दुनिया से होता है— एक अपेक्षाकृत ज्यादा साधारण दुनिया जहाँ नेतृत्वकर्ता और अनुयायियों के मध्य अपेक्षाकृत साधारण मतभेद या दूरियाँ होती हैं।

तब एकमात्र गुरु जिसकी छवि मैं दिमाग में उतार सकी, वह था सफेद दाढ़ीधारी और संकीर्ण उदारता का भाव लिए हुए बी ग्रेड की किसी भारतीय पौराणिक फिल्म में नजर आनेवाला।

स्मृतिशेष गुरु अच्छे होते थे। वे अपने पीछे ऐसी बातें छोड़ जाते थे, जो हमें उत्प्रेरित करती एवं चुनौती देती थीं। यह एक सँभालने योग्य उत्तरदान था, किंतु जीवित गुरु विचार से परे थे या यदि दूसरी तरह से कहा जाए तो मेरे पास उनके लायक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक योग्यता नहीं थी।

...अस्तित्वात्मक योग्यताएँ? मैं सोचती थी कि मुझमें कुछ थीं, बशर्ते यदि उनका अर्थ अभाव था। बेचैनी, अस्त-व्यस्तता की अनुभूति, इन सबसे क्या होता है जैसे प्रश्न, मृत्यु का अचानक होनेवाला भय जैसी बातें मुझमें थीं और उन अरुचिकर क्षणों में से कुछ को किसी पद्य या यौनक्रिया, यात्रा या एक किताब या चॉकलेट के माध्यम से टाला जा सकता है, लेकिन मैं जानती थी कि कुछ ऐसे भी थे, जिनका समाधान नहीं था।

और योगी? मैं सोचती थी कि वे रहस्यमय एकशृंगियों की तरह थे। लगभग पौराणिक। मैं सोचती थी कि वे सुदूर हिमालय की कंदराओं में या आध्यात्मिक साहित्य (जैसे परमहंस योगानंद की 'आटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी') में पाए

जाते हैं। मैं तो मात्र उन योगियों को जानती थी, जो तनाव कम करने एवं मधुमेह से लड़ने के बारे में सप्ताह में दो दिन के प्रवचन आयोजित करते थे।

तभी मेरी मुलाकात सद्‌गुरु से हुई। छह वर्ष पूर्व हुई इस मुलाकात के बाद से मेरे जीवन में अनेक परिवर्तन आए। एक ऐसा ही परिवर्तन यह था कि योगियों का अस्तित्व होता है। मेरा तात्पर्य वास्तविक योगियों से है। मुझे ज्ञात हुआ कि वे मात्र शरीर को विभिन्न स्थितियों में रखकर खेल-तमाशा दिखानेवाले नट नहीं हैं या नए युग के यह दावा करनेवाले कि उनके पास रूपांतरण हेतु समय की कसौटी पर खरी उतरनेवाली नवीनतम तकनीक है, जिसमें साधक को आत्मसाक्षात्कार की राह पर आमूल-चूल शक्ति प्रदान करने की क्षमता है।

मैंने जाना कि निर्वाण बुद्ध या ईसा मसीह या अक्का महादेवी या रामकृष्ण या वे कोई भी; जिन्हें आराम से अंतिम साँस लेने के पश्चात् समाधि दे दी गई—का पूर्ण एकाधिकार नहीं है। मैंने यह जाना कि एक ऐसे व्यक्ति का मिलना संभव है, जो पूर्ण अधिकार के साथ जीवन-मृत्यु से जुड़े मुद्दों पर चर्चा कर सकता है, साथ ही भोले-भाले उत्साही व्यक्ति की तरह मोटरसाइकिल, सलमान रुश्दी के उपन्यास या गोल्फ खेल के विषय में बात भी कर सकता है। एक ऐसा व्यक्ति जो मन की बात जान ले, आरोग्य प्रदान करे, भूत और भविष्य के जीवन के विषय में बातें करे, फिर भी तार्किक, वैज्ञानिक, जमीन से जुड़ा हुआ बना रहे। एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म, निर्वाण एवं प्राचीन आध्यात्मिक परंपराओं के विषय में तर्क-वितर्क कर सके फिर भी उदार, प्रेरक एवं समकालीन बना रहे।

एक वेबसाइट पर उन्हें 'स्व-अनुभूति प्राप्त योगी' एवं हमारे युग के गूढ़ रहस्यवादी, युगद्रष्टा, मानवतावादी एवं प्रमुख आध्यात्मिक नेता निरूपित किया गया है। वह सबकुछ होने के अलावा और भी बहुत कुछ हैं। सद्‌गुरु ईश फाउंडेशन कोयंबतूर के संस्थापक हैं, जिसके देशभर एवं विश्व के अन्य हिस्सों में 100 से अधिक केंद्र हैं। आज इन केंद्रों में देश के विभिन्न भागों, यू.एस.ए., यू.के. एवं यूरोप में करोड़ों लोग ईश योग का अभ्यास कर रहे हैं। अपनी पैनी बुद्धिमत्ता, त्वरित वाक्चातुर्य, आधुनिक शब्द भंडार एवं विविध सामाजिक उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण एक अंतरराष्ट्रीय वक्ता के रूप में उनकी माँग बढ़ती जा रही है।

वह हर समारोह में अनौपचारिक बने रहते हैं, चाहे भारत में ध्यान-सत्संग में जुड़ा हजारों का जन-समूह हो या देवोस वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम हो। वह तमिल किसानों या बंदियों के बीच भी उतने ही सहज देखे जाते हैं, जितने संयुक्त राष्ट्र संघ के सहस्राब्दी शांति शिखर सम्मेलन में।

किंतु ये तो उनके वैयक्तिक वर्णन हैं। इससे उनके स्वयं व्यक्ति के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है। एक ऐसा व्यक्ति जो रहस्यवादी, किंतु पराभौतिकवादी नहीं है। एक ज्ञानी है विद्वान नहीं। एक गुरु है तांत्रिक नहीं, एक उल्लसित, जीवंत मनुष्य है, चेहरे पर चमक का आवरणधारी संत नहीं।

यह पुस्तक इस तरह के व्यक्ति के विषय में है, जिनसे मिलने की मुझे कभी उम्मीद नहीं थी। एक ऐसा व्यक्ति जिन्हें मैं गुरु मानती हूँ, क्योंकि मेरी जानकारीवाले अन्य किन्ही वर्गों में उन्हें नहीं रखा जा सकता, इसलिए मैंने इस संबंध को कोई नाम देने की कोशिश की तो मित्रता को ही निकटतम पाया, किंतु यह केवल मित्रता भी नहीं है।

मैं साधारणत: आदर, श्रद्धा की भावना जाहिर करने की अभ्यस्त नहीं हूँ, दीर्घकाल से मैं एक व्यथा से पीड़ित रही, जिसे मैं अनाधीनता का नाम देती हूँ—सभी तरह के अधिकारी गणों एवं द्वारपालों से असहजता और इसी से जुड़ी है कमजोर भावुकता एवं बड़ाई-प्रशंसा, भाट की तरह श्रेष्ठतम शब्द के प्रयोग और चरण-कमल जैसी आलंकारिक भाषा के प्रयोग के प्रति मेरी नापसंदगी, जो सामंती गुरुवादी प्रथा से संबंधित है। मैं धर्म की तार्किक समीक्षा करते हुए बड़ी हुई और यद्यपि कला के प्रति प्रेम के कारण उस तार्किकता के हठधर्मी पहलू नरम पड़ गए, तथापि मैं अभी भी अनेक मुद्दों पर व्यवहार बुद्धि की प्रबल समर्थक हूँ।

उन बातों के अलावा मैं यह स्वीकार कर लूँ कि उनके प्रति मुझमें सम्मान जागता है, जो मात्र इसलिए नहीं कि वह बुद्धिमान हैं बल्कि इसलिए कि कितनी सहजता से वह उस बुद्धिमत्ता को धारण किए हुए हैं। मात्र इसलिए नहीं कि

उनमें सहृदयता है— और वह अपने समय, देख-रेख और ऊर्जा के प्रति फिजूल खर्च रहे। अपितु इसलिए कि वे बिना सरंक्षक बने, हितग्राही को हीनता महसूस कराए बगैर प्रदान करते हैं। मात्र इसलिए नहीं कि उनका एक विशिष्ट व्यक्तित्व है बल्कि इसलिए कि वह सान्निध्य से, उस बात से बहुत ज्यादा प्रकट होता है जिसे समकालीन संस्कृति करिश्मा कहकर सराहती है। इसलिए नहीं कि उन्हें 'मास्टर' (स्वामी) माना जाता है बल्कि किसी पदवी के लिए उनसे व्यक्त होती अस्वीकृति के कारण इस शब्द (मास्टर) के प्रति दीर्घकाल से चली आ रही मेरी खीझ समाप्त हो गई।

सामान्य तौर पर अभी तक मैं जितने लोगों से मिली हूँ, उनमें वह सर्वाधिक जीवंत मानव हैं। वह सर्वाधिक उदार भी हैं और क्षणभर में ताकतवर को परिष्कृत, ऊर्जावान को धैर्यशील, स्थूल को सूक्ष्म में रूपांतरित कर देने की क्षमता रखते हैं। इससे वह मेरे लिए सर्वाधिक विशिष्ट व्यक्ति हैं।

कविता मेरे लिए महत्त्व रखती है। मैं इसके भाषा-विन्यास व रूप रचना की कद्र करती हूँ। यह मुझे विज्ञापनों के घर में प्रवेश करनेवाली व्यूह रचनाओं से सर्तक करती है, किंतु इस मामले में यह कहना कदापि गलत न होगा कि मैं अपने जीवन को दो विशिष्ट चरणों में बाँट सकती हूँ—सद्गुरु के पहले और सद्गुरु के बाद। मैं 'बाद' को क्यों महत्त्व देती हूँ? इस विषय में अपने विचार व्यक्त करने से पूर्व 'पहले' के विषय में कुछ बताना सार्थक होगा।

अन्य कई लोगों की तरह मैंने अपना बहुत सा जीवन जानने की चाह रखते हुए व्यतीत किया और इसका अभिप्राय बिलकुल आधारभूत खोज थी—एक गुरु की खोज। मैं ऐसा कदापि नहीं सोचती कि मैंने कभी बहुत ज्यादा माँगा है। सर्वज्ञता? नहीं। वस्तुत: मुझे पहले ही यह भान हो चुका था कि जो सभी उत्तरों की जानकारी रखनेवाले लगते हैं वे ढोंग करते हैं। भ्रष्टाचार एक सशक्त शब्द है, किंतु मुझे इसका सबसे प्रारंभिक अनुभव शिक्षकों के बीच ही हुआ। स्कूल और विश्वविद्यालय के बहुत से शिक्षक जिन्हें मैं जानती थी, वे इसी स्तर के थे। संक्षेप में, जितने भी धौंस जमानेवाले मुझे मिले वे सबसे पहले थे। निस्संदेह मैंने भी यह खेल सीख लिया। मैंने उलटा खेलने की अपेक्षा चतुराई पूर्वक खेलना सीख लिया; प्रफुल्लित किंतु हठी नहीं। यद्यपि मैंने शांत या विनीत होने का दिखावा किया, किंतु मेरा सामना दस साल की उम्र से ही कई धौंसिया किस्म की बहनों से हो चुका था, जिससे मुझमें प्रजातंत्र के सूक्ष्मतर अर्थ की गहरी समझ विकसित हुई।

मेरा प्रथम व्यवसाय—महाविद्यालयीन शिक्षण, जिससे मैंने दो महीने में पीछा छुड़ा लिया— मुझे उस प्रजातंत्र को संचालित करने की चुनौतियों को महसूस कराने में मददगार सिद्ध हुआ। अपनी कट्टरधर्मिता—उसकी विषय-वस्तु चाहे जितनी भी उदार हो—से कक्षा को संक्रमित करना कितना सरल होता है। ऐसे में मैं महसूस करती हूँ कि छात्र के लिए एकमात्र युक्ति यही है कि वह अपनी कठोरता से प्रतिवाद करे, ताकि जीवन का शेष समय अपनी कट्टरधर्मिता को भुलाते हुए जिए।

वे सर्वश्रेष्ठ शिक्षक जो कभी मेरी जानकारी में आए हैं, उन्होंने (और वे बहुत कम थे) मुझे व्यक्तित्व की अनुपस्थिति से प्रभावित किया है (यद्यपि तब मुझे इसका भान नहीं था।) वे मार्गदर्शक एवं संरक्षक बनने की जद्दोजहद में नहीं थे। बल्कि उन्होंने एक स्पष्ट, लोचदार आयाम निर्मित किया जिसमें हम प्रयास कर सकते थे, हाथ-पैर चला सकते थे, लड़खड़ा सकते थे और अंतत: स्वयं को स्थापित कर सकते थे।

लेकिन वस्तुत: मैं जानना क्या चाहती थी? वही आम बातें। मृत्यु, जन्म, कष्ट, ब्रह्मांड— और सभी रहस्यों और आतंकों को। ऐसे प्रश्न जिनके कारण बुद्ध से पूर्व और बुद्ध के बाद से प्रत्येक युवा अपनी यात्रा शुरू कर तब तक चलता रहा जब तक कि औपचारिक और सांसरिक ज्ञान (शिक्षा) ने उसका ध्यान भंग नहीं कर दिया। जो कुछ भी मैंने स्कूल और विश्वविद्यालयों से सीखा उनमें से कुछ भी उन प्रश्नों को संबोधित करता प्रतीत नहीं हुआ बल्कि इस शिक्षा ने तो ऐसे बहुत से अन्य प्रश्न खड़े कर दिए। और इन्हीं प्रश्नों ने बहुत लंबे समय तक मुझे उलझाकर व्यस्त रखा।

किंतु कहीं न कहीं पुराने प्रश्न यथावत् बने रहे और मुझे कुरेदते रहे और यही प्रश्न है, जिन्होंने शायद बहुत से अन्य लोगों की तरह मुझे मानवीय विज्ञानों और आगे चलकर विशेष रूप से साहित्य के अध्ययन हेतु प्रेरित किया। कला ही

एक ऐसा क्षेत्र था, जिसमें जीवन के अर्थ के विषय में भटकना सुविधाजनक प्रतीत हुआ। अन्य हर क्षेत्र में प्रश्न सेक्स से ज्यादा प्रतिबंधित महसूस हुए। बड़ी विचित्र बात है कि जहाँ सेक्स चर्चा उदारतावाद को दर्शाती थी, वहीं प्रश्नों की चर्चा लगभग पातकी या अधार्मिक कृत्य में परिवर्तित हो गई थी।

अस्तित्वात्मक यात्रा या तो राख-लपेटे कुंभ मेले में विराजे साधुओं (मेज पर सजनेवाली सचित्र पुस्तकों में जो सदा से पाए जाते हैं) का पर्याय लगने लगती है या चमचमाती लंबी कारों में सवार रोलेक्स घड़ी चमकानेवाले तांत्रिकों का। अपने मास्टर्स से संबंध विच्छेद करने तक मैंने महसूस किया कि जहाँ कर्मकांड मन को भटकानेवाले थे, वहीं मेरे दिमाग में अभी भी ऐसे प्रश्न मँडराते थे, जिनके उत्तर मात्र शिक्षा-शास्त्रों से प्राप्त नहीं किए जा सकते। मैंने महसूस किया कि वास्तविक बातों से संघर्ष करने हेतु रचनात्मक लेखन हमेशा से ही मेरे ज्यादा करीब रहा। मेरी स्वजात प्रवृत्ति मुझे इसका आभास दिलाती थी।

आकर्षक ज्ञान वार्त्ता (जिसे एक अभिलाषी युवा शिक्षाशास्त्री के रूप में मैं तेजी से अपनाना सीख रही थी।) पर मेरा अविश्वास करना सही था। कम से कम कविता में बौद्धिकता की अपेक्षा कुछ अधिक सन्निहित है। ऐसा लगता था कि इससे मन का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार व्यक्त होता था एवं सर्वोपरि रूप से अटकने के लिए, संदेह के लिए, रुकने के लिए, मौन के लिए, आयाम निर्मित करती थी।

लंबे समय तक मैंने यह महसूस किया कि इस मनोभाव ने मुझे टिकाऊ आधार दिया। मैंने जादू इस तरह देखा, जैसे रूपक यथार्थ होकर, संपूर्ण हो गया, जैसे अमूर्त और मूर्त, विचार और मनोभाव, करीब आकर अपृथक हो गए हों। मुझे महसूस हुआ कि यह सब और दर्शन में मेरी रुचि पर्याप्त है। एक लेखक की हैसियत से भीड़भाड़ वाले शहर में रचनात्मक मित्रों से घिरकर रहना, कलाओं के विषय पर लेखन कर अपनी आजीविका कमाना चुनौती भरा जीवन था। मैं जानती थी कि जैसी जिंदगी मैं चाहती था (रोमांचकारी, अनिश्चित, संस्कृति-विरोधी) वैसी जिंदगी मेरी थी, किंतु यही पर्याप्त नहीं था।

1997 में कुछ निर्णयात्मक सा घटित हुआ—कुछ शांत किंतु अपने आप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण। मैं नेपाल से सप्ताह भर की आरामदायक छुट्टी बिताकर ट्रेन से लौट रही थी। दुनिया भी अपनी पटरी पर चल रही थी या प्राय: जितना पाया जाता है उसकी अपेक्षा कुछ भी बुरा महसूस नहीं हो रहा था। और तभी एक प्रक्रिया शुरू हुई जो कई दिनों तक चलती रही। मैं मरने लगी—शारीरिक रूप से नहीं। मैं किसी बीमारी से उबर नहीं रही थी, न ही बीमार हो रही थी, मानसिक रूप से भी नहीं। मैं अवसादग्रस्त नहीं थी और मैंने अपने हिस्से की विपरीत परिस्थितियाँ भी झेली हैं, जिससे मैं जानती थी कि यह चिरपरिचित उतार-चढ़ाव की स्थिति भी नहीं है। किंतु मुझे मालूम था कि मेरी मौत हो रही थी। यह स्पष्ट था। घर लौटकर मैंने अपने साथी और अपनी बिल्लियों को परछाई की तरह असार रूप में परिवर्तित होते हुए देखा। मैंने उन सभी लम्हों जिन्हें मैंने मूल्यवान आँका था—विजय, उल्लास, यहाँ तक कि क्रोध भी—को खोखला होते हुए देखा। मैंने धीरे-धीरे स्वयं को आशाहीन होते हुए देखा। मुझे अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की लालसा हुई—भुला दी गई खिन्नताओं के पुराने प्रहार की भी। मैं इस आशा के साथ बिस्तर पर लेट जाती थी कि अगली सुबह स्थितियाँ बदल जाएँगी, और जागकर पाती थी कि मेरा शरीर मुरदे जैसी अक्रिमता से कठोर पड़ा हुआ है। फिर भी मैं इतनी जीवंत थी जितनी पहले कभी नहीं थी और जो कुछ हो रहा था, उसे भयंकर रहस्यमयता से निहारती रहती।

सबसे बुरी स्थिति यह थी कि भाषा मेरा साथ छोड़ रही थी। जो चल रहा था उसे व्यक्त करने के लिए मैं शब्दों की तलाश करती, किंतु वे मेरे बोध से दूर जा छिटकते। मैं अपनी सामान्य अवस्था में लौटने हेतु प्रार्थना करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती थी, किंतु ऐसा करते हुए भी मुझे हलकी सी जानकारी थी कि जो कुछ चल रहा था, वह उससे भी ज्यादा वास्तविक है जो मैंने कभी जाना था। अपने श्वास-प्रच्छवास को आते-जाते देखना अब कोई कठिन आध्यात्मिक तप महसूस नहीं हुआ; यह एक क्षण से दूसरे क्षण में जाने की एकमात्र विधि थी।

यह अनुभव टिकाऊ नहीं रहा। जब मैंने उस चरण से बाहर आना प्रारंभ किया तो एक तरह की शांति थी। यह लंबी

बीमारी के पश्चात् पुन: स्वास्थ्य प्राप्ति की शांति थी। सबकुछ खो चुकने एवं यह जानने कि अब खोने को कुछ रहा नहीं के बाद की शांति थी। भले ही मैंने बड़े आराम से इस अनुभव को घटते हुए देखा, किंतु मैं जानती थी कि जो मुझे याद था वह महत्त्वपूर्ण था। मौत से इस विचित्र मुठभेड़ के साथ उस चीज की एक स्पष्ट तसवीर उभरी, जो कि सचमुच महत्त्वपूर्ण थी।

पुस्तकें, प्रेम, यात्रा एवं कला सभी कुछ बहुत अच्छे थे, किंतु जो सचमुच पते की बात थी, जो अब मैं जानती थी, वह यही हो सकती थी; मृत्यु का अर्थ समझना और इसी प्रक्रिया में संभवत: जीवन के अर्थ को भी समझना।

मैं बेशक भूल गई। वह अनुभव मेरी स्मृति में छिप गया और इसकी तीव्रता को मैंने असहजता के व्यवस्थित स्तर तक सँभालकर रख लिया। यह जब-तब मुझे छेड़ता रहता है, किंतु पहले की तरह इसने कभी भी मेरे जीवन को अस्त-व्यस्त नहीं किया। मैंने निरंतर गलती करना जारी रखा, उतनी ही मात्रा में मैं रोज, ईर्ष्या, अपर्याप्तता और दु:ख के प्रभाव में रही। किंतु इस राह पर एक निश्चित बदलाव आया। मेरी प्राथमिक तौर पर स्वयं की परिभाषा या पहचान कवि की जगह साधक हो गई और इसीलिए मेरे अध्ययन में एक नई उत्तेजना आ गई। पराभौतिकी अब पर्याप्त नहीं रही। अब मुझे रहस्यवादियों की आवाजों की खोज रहने लगी। सूली के संत जॉन से लेकर रामकृष्ण तक, कृष्णमूर्ति से रमण महर्षि तक, निसर्गदत्त महाराज से लेकर मेइस्टर एक्हार्ट एवं अन्य तक। मुझे कथानक दुर्बोध लगने लगे, इसलिए उपन्यासों को मैंने ठंडे बस्ते में डाल दिया। कविता अहम रही, किंतु सीमित महसूस हुई। मैंने तय किया कि यदि यह मुझे स्वयं को जानने का गहन मार्ग था तो यह पर्याप्त गहन नहीं था। रिल्के, स्टीवन्स और नेरुदा किसी निश्चित बिंदु तक तुम्हें ले जा सकते हैं, किंतु अपने सभी गुणों व सदाचारों के कारण वे एक ही राह के अन्वेषक थे। मुझे किसी आस्तिक की अंधी निश्चितता की आवश्यकता नहीं थी। न ही मुझे किसी कटिबद्ध संशयवादी की सुविधाजनक अनिश्चितता की आवश्यकता थी। मुझे किसी जानकार की सुबोधता की आवश्यकता थी। मुझे कोई दिग्गज (परिस्थितियों के साँचे में ढला, दबंग) ही चाहिए था। एक समय के बाद अध्ययन भी अपर्याप्त लगने लगा।

मैंने महसूस किया कि जिसकी मुझे आवश्यकता थी वह था एक जीता-जागता मार्गदर्शक, जिसे यह जानकारी हो कि यात्रा पर चल पड़ना कैसा होता है। यात्रा जो यों ही अचानक होने की अपेक्षा होशो-हवास में जीते-जागते तार्किक मन के परे के ठिकानों वाले गंतव्यों की हो। वह कोई ऐसा होता जिसे अंदर के आयामों के विषय में किसी चित्रकार या वैज्ञानिक से ज्यादा ज्ञान हो। मुझे मालूम था कि मेरे अनुभवों को व्यक्त करनेवाले दर्जनों विभिन्न तार्किक समाधान थे। किंतु मैं जानती थी कि उस घटना के रहस्य को न तो तर्क छू सकता था न ही कला। वे (तर्क एवं कला) खालीपन के उस नीरव आयाम में प्रवेश भी नहीं कर सकते थे। केवल वे ही लोग जो उस मायावी विधान की मेरी समझ के मुताबिक व्याख्या कर पाते, वे रहस्यवादी ही होते किंतु क्या ऐसे लोगों का अस्तित्व मेरी दुनिया में था?

मैं दक्षिण मुंबई में रहनेवाले एक स्थानीय वेदांती (एक सेवानिवृत बैंक कर्मचारी) के घर नियमित जाने लगी। उसने बड़े-बड़े दावे करने के बजाए केवल एक साधारण अनुभव की खोज के बारे में बताया कि उसे यों ही अप्रयासपूर्वक प्राप्त हुई थी। 'मैं कर्ता नहीं हूँ।' उसके साथ हुई मुलाकातें सहायक सिद्‌ध हुईं। मैं उस व्यक्ति का अत्यधिक सम्मान करती थी। उसके दृष्टिकोण की सुबोधता नितांत स्पष्ट थी। लेकिन अब मेरी अपनी यात्रा का सवाल था। हरेक बात जो उसने कही, बौद्‌धिक स्तर पर खरी उतरती थी किंतु मैंने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि मेरे स्वयं के विस्तृत छोर थे, जो बौद्‌धिक स्तर से परे थे।

अनेक आधुनिक साधकों की तरह मैंने भी बौद्‌ध धर्म के प्रति लंबे समय तक निकटता महसूस की और विपासना ध्यान आजमाने का निर्णय लिया। मैंने दस दिनों के मौन पाठ्यक्रम को तीन दिनों में ही छोड़ दिया। जहाँ आत्म-अवलोकन हेतु साँस पर ध्यान केंद्रित करने की धारणा सही लगी वहीं मैंने महसूस किया कि मैं इस स्तर की तपस्या हेतु तैयार नहीं थी। मैं यह समझकर इससे अलग हो गई कि कमी पाठ्यक्रम में नहीं बल्कि स्वयं मुझ में थी। जो दिमाग में था, वह अभी भी गले नहीं उतरा था। इसके पश्चात् मैंने लोकप्रिय क्रियायोग भी शुरू किया। यह भी मददगार सिद्‌ध

हुआ। इससे ऊर्जा के नए स्तर एवं स्वस्थता का संचार हुआ, किंतु शीघ्र ही एक गतिरोध उपस्थित हो गया।

मुझे वह मार्गदर्शन नहीं मिला जिसकी मुझे तलाश थी। यह विरोधाभासी था। मुझे श्रेणीबद्ध संस्था (अधिक्रम) के प्रति स्वयं के अविश्वास का भान था, जो कि मेरी कठोर बौद्धिक धृष्टता थी। साथ ही मुझे किसी ऐसे व्यक्ति से मार्गदर्शन की आवश्यकता थी जिसका मैं विश्वास कर सकती। यह दोहरा बंधन था। साथ ही मैंने तय किया कि अब बहुत हो गया। मैं अपनी विपरीत इच्छाओं में खुद को उलझा रही थी। इसके समाधान यदि कोई थे (और मैं तथा अन्य व्यक्ति, इसे जानते थे) तो वे मेरे अंदर ही पाए जाने थे। हाँ, अच्छा ही होता यदि यह आत्म (स्व) कम व्यस्त और जीर्ण-शीर्ण रहता, यदि यह अधिक शांत स्थान होता। किंतु अपने अंतरमन में इलेवेटर म्यूजिक एवं एयर फ्रेशनर की खोज निरर्थक थी। मैं सुरबद्ध होने नहीं जा रही थी। मैं परिस्थिति के अनुरूप समायोजित नहीं हो पाती थी और न ही कभी होऊँगी। मैं अड़ियल थी, बस। यह अपनी कमियों को स्वीकार करके समझौता करने का समय था।

तभी, मई 2004 में मैं सद्गुरु के सत्संग में शामिल हुई।

उस शाम, जब मैंने दक्षिण दिल्ली में श्रोताकथा में प्रवेश किया तो मुझे कुछ खास उम्मीदें नहीं थीं। किंतु मैं उत्सुक थी। मैंने पहली ही पंक्ति में, आर्ट्स सेंटर (जहाँ मैं कार्यरत थी) के अपने कुछ सहकर्मियों के साथ स्थान ग्रहण किया।

कुछ वर्षों पूर्व मैंने पूरे चेन्नई में लगे उस व्यक्ति के पोस्टर देखे थे जिसमें सफेद दाढ़ी लहराते हुए उस व्यक्ति को बड़े आकर्षक अंदाज में आकाश की ओर निहारते दिखाया गया था। उसके शीघ्र बाद मेरी माँ ने सत्संग में भाग लिया था और उन्होंने मुझे बताया कि वह काफी प्रभावित हुई थीं। किंतु उनके (माँ) द्वारा अनुमोदित की हुई उनकी (सद्गुरु) पुस्तक 'इनकाउंटर द इनलाइटेंड' मैंने पढ़ी तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वे इतने रूखे और दंभी हैं कि मैं उन्हें पसंद नहीं कर सकती। रविवार के समाचार-पत्र की पूरक पत्रिका (सप्लीमेंट) में छपी मोटरसाइकिल पर सवार उनकी तसवीर देखकर मुझे यकीन हो गया था कि वह बहुत पुरुषोचित (दिखावेवाले) व्यक्ति हैं।

मैंने स्वयं से कहा कि मेरे आध्यात्मिक शिक्षक में तो ये कुछ स्त्रियोचित विशेषता होनी चाहिए, भले ही वह संयोगवश पुरुष के रूप में जन्मा हो।

उस शाम के सत्संग का ज्यादा प्रसंग तो मुझे याद नहीं है, किंतु मैं मंत्रमुग्ध थी। उनकी बातें बड़ी अर्थपूर्ण थीं। वे बातें सीधे उस स्तर से संबंधित थीं जहाँ मैं थी। जिस ढंग से वे बातें कही गईं उनसे मैं और ज्यादा आकृष्ट हुई।

उनकी शैली औपचारिकता, संकोच के अभाव के साथ-साथ ग्रंथों के उद्धरणों से मुक्त थी। यह बोधगम्य, गंभीर किंतु विनोदप्रिय व भावुकताहीन शैली थी। यह स्पष्ट था कि वक्ता पंथानुगामी नहीं था और श्रद्धा व अनुयायियों की माँग नहीं कर रहा था।

माइक के सामने सहजतापूर्वक बैठे इस व्यक्ति से उसकी दृढ़ स्पष्टवादिता, उसकी शुष्क विनोदप्रियता व मानवीय सहानुभूति के समन्वय, जोकि उसकी अभिव्यक्ति से प्रकट होता था; से मैं हतप्रभ रह गई थी। उसके बारे में कुछ बातें चिर-परिचित सी लगीं। मुझे याद है कि तब मैं सोचने लगी थी कि उनसे जुड़ सकती हूँ। मुझे पता है कि वह कहाँ से आते हैं। वह मेरे मित्र भी हो सकते हैं। एक ऐसे मित्र, जिनसे मैं बहुत कुछ सीख सकती हूँ और शायद इसी कारण वह एक शिक्षक भी बन पड़ते हैं, जो समानतावाद को समझते हैं, जो दंभी नजर नहीं आते और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो एक ऐसे व्यक्ति की तरह नजर आते हैं जिनका मैं विश्वास कर सकती हूँ।

मुझे उनके संबोधन का प्रजातांत्रिक रुख, रहस्यपूर्ण को रहस्यमय बनाने से उनका इनकार, भौतिक और आध्यात्मिक, अपवित्र और पवित्र में कोई भेद देखने से उनका इनकार विशेष रूप से पसंद आया।

''प्रत्येक मानव आध्यात्मिक है। तुम्हारे समक्ष एकमात्र विकल्प यही है कि तुम जान-बूझकर या बिना जाने-समझे आध्यात्मिक बनो। तुम अपनी आँख खोलकर चलना चाहते हो या मूँदकर? प्रश्न यही है।''

और एक ऐसा ढंग था उनके पास जिससे वह हमारा ध्यान हमारे रोजमर्रा के जीवन के जादुई परिवर्तन की ओर खींचते थे। वह प्रक्रिया, उदाहरण के लिए, जिसके माध्यम से व्यक्ति केला खाकर उसे अपने स्वयं का भाग बना लेने में

सक्षम था। किंतु यह चमत्कार जैसा कि उन्होंने बताया, अब भी अचेतन था। यदि तुम सचेत होकर केले को मनुष्य बना देते हो तो तुम स्वयं सृष्टिकर्ता बन जाते हो। वह हमें ऐसी राह की ओर ले जाने का आमंत्रण दे रहे थे जो मजबूरी से पसंद, आदतन से सचेत, गैर-जागरूकता से जागरूकता की ओर ले जाती है। इसमें खिंचाव था। ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो वह बोलते उसके वह जानकार प्रतीत हो रहे थे।

बाद में मैंने सिस्टर निवेदिता की स्वामी विवेकानंद से हुई प्रारंभिक मुलाकात के विषय मैं लिखी गई पंक्ति को याद किया... ''मैंने देखा कि उनमें प्रस्तुत करने के लिए एक विचार प्रणाली थी, फिर भी यदि वह पाते कि सत्य का मार्ग कहीं और जाता था तो एक क्षण में ही वह उस विचार प्रणाली से अपृथक हो जाते थे।''

उनका तात्पर्य क्या था यह मैं जानती थी। अपने संशयवाद के कारण, सत्यनिष्ठता जब मेरी राह पर आई तो मैंने उसे पहचान लिया। उस सप्ताहांत में मैंने दो दिवसीय इनर इंजीनियरिंग प्रोग्राम हेतु अपना नामांकन करा लिया।

दो दिवसीय कार्यक्रम के अंत में मैंने स्वयं को इस विचित्र आकृति (जो कि पगड़ी-शॉल धारणकर, दाढ़ी लहराते हुए समय की घुमड़ती धुंध से बाहर आते से लगे।) की ओर चलकर जाता हुआ पाया, और कुछ बेढंगे तौर से मैंने उनसे पूछा कि क्या हम कॉफी पीने के लिए मिल सकते हैं? उन्होंने मेरी ओर भावहीनतापूर्वक देखा और सुझाया कि सितंबर में मैं आश्रम आकर उनसे मिलूँ।

उस शाम मैंने अपनी माँ को फोन पर बताया, ''मुझे गुरु मिल गया है।'' शब्द का रूप अभी भी परिवर्तित था, मेरा दृष्टिकोण अब भी बहका-सा था।

चार महीने बाद मैं आश्रम पहुँची। कॉफी तो नहीं हुई, वार्त्तालाप हुआ। अगले कुछ महीनों के दौरान वही बातचीत गहराती गई। पाँच वर्षों एवं कई कार्यक्रमों के पश्चात् वह (बातचीत) और गहरी हो गई।

उन्हें सद्गुरु कहते अभी भी मुझे परेशानी होती है। समारोहात्मक नामकरण से मैं असहज महसूस करती हूँ। किंतु मेरे मन में उनके गुरु होने के प्रति तनिक भी संदेह नहीं है। एक बात और है कि उस शब्द से मुझे कोई परेशानी नहीं है। यह एक विवरण से अधिक नहीं जान पड़ता; एक ऐसा व्यक्ति जिसे आंतरिक जीवन की क्रियाविधियों का गूढ़ ज्ञान हो और जो यह जानता हो कि कैसे और कब दूसरों के आंतरिक जीवन में भी जरूरी शल्यक्रिया संबंधी छेड़छाड़ करनी है। यह ज्ञान सैद्धांतिक नहीं है। सद्गुरु यह स्वीकारने में बिलकुल नहीं झिझकते कि आध्यात्मिक तौर पर वह एक अशिक्षित स्वामी (मास्टर) हैं, जिन्होंने योग पर आधारित कोई ग्रंथ पूर्णता से नहीं पढ़ा। उन्हें अपने अंतर्ज्ञान के लिए ग्रंथ के सत्यापन की जरूरत नहीं है। वह कहते हैं कि उनके अपने आंतरिक अनुभव ने उन्हें कभी असफल नहीं किया है।

मैं हमेशा से ही भावुक बातों एवं उत्साह, अभिवादन इत्यादि, जो शिष्य होने के अंग माने जाते हैं, के प्रति असहज रही हूँ। किंतु मैंने यह भी महसूस किया है कि इसका कुछ भाग सच्ची भावना से प्रेरित होता है। स्वयं गुरु ने ऐसे किसी समर्पण की माँग कभी नहीं की। बल्कि वह स्व-सशक्तिकरण की राह दिखाते हैं, जो कि समय की कसौटी पर खरी उतरी राह है, (और वह समय-समय पर यही दुहराते हैं) जो तुम्हें तुम्हारे भाग्य का स्वामी बना सकती है। एक बार जब मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने स्व-प्रतिबंध के कृत्यों (जो मुझे अभी भी ज्यादा ही महसूस होते हैं) को सहन क्यों किया जैसे कि कुछ ध्यानी पादुकाएँ पहनाने में उनकी मदद करते हैं तो उन्होंने जवाब दिया कि केवल देते ही रहना और प्राप्त न करना अभद्रता है। कुछ लोगों के लिए यह पारंपरिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। इसमें आभार का बहुत गहरा भाव है जिसे वे व्यक्त करना चाहते हैं। प्रदान करनेवाले के लिए इसका अपना एक अभिप्राय है और इसे मैं हटाना नहीं चाहता।

ईश योग में भावुकता बाहरी स्थान रखती है और मैंने वे तरीके देखे हैं जिनमें भावुक लचीलेपन को प्रोत्साहित किया जाता है। गुरु के प्रति प्रेम सदा स्पष्ट और आध्यात्मिक चमत्कार का शक्तिशाली स्रोत होता है। किंतु ईश योग के अभ्यासियों को भक्त न कहकर ध्यानी कहा जाना अर्थहीन नहीं है। कभी-कभी स्वयं उन्होंने ही शिष्यों द्वारा गुरु के प्रति रखी गई अतिरंजित भावानाओं के विषय में सामान्य शब्दों में कहा है, ''यह एक पौधे की तरह है जो भावनात्मक एवं मानसिक रूप से जल की इच्छा नहीं करता। यदि वहाँ एक बूँद भी पानी है तो जड़ इस तक अपनी पहुँच बना लेती है।

इसमें कोई भावुकता नहीं है। इसमें कोई मन नहीं है। यह एक अलग किस्म की बौद्धिकता है...यह तो जीवन की स्वयं के प्रति लालसा है।''

योग साधना का मार्ग है जिसमें समन्वित एवं अध्यवसायी अभ्यास है, इसमें फिर भी कोई आत्म-अतिरंजन नहीं होता है।

सद्गुरु यह स्वीकार करते हैं कि किसी जीवंत गुरु की उपस्थिति में बहुत कुछ हो सकता है। सही स्तर की ग्राह्यता ही इसकी एक मात्र आवश्यकता है।

उनके सान्निध्य में स्वत: होनेवाले रूपांतरण की साक्षी होने और उनकी अनुभूति के बाद अब मुझे उनकी सत्यता के प्रति संदेह नहीं है। एक बार उन्होंने गुरु को जीता जागता— मार्ग का मानचित्र निरूपित किया था और उसी छवि से मैं सबसे ज्यादा जुड़ी हुई हूँ। वह न तो कोई उत्तराधिकार प्राप्त पैतृक मसीहा हैं, न किसी आध्यात्मिक संगठन के चुनाव में चयनित कार्ड धारक बल्कि वह एक मानचित्र, एक रास्ता है जिस पर अपनी मंजिल प्राप्त करने के उत्सुक हजारों यात्री यात्रा करके अपने पदचिह्न छोड़ सकते हैं।

मैं अब भी स्वयं को विषम चतुर्भुज सा महसूस करती हूँ। किंतु अपनी विषमताओं से अब मैं ज्यादा परेशान नहीं हूँ। अब ऐसा लगता है कि जीने के और भी आयाम हैं। और इस दुनिया में इन कमियों के लिए अपेक्षाकृत ज्यादा स्थान है और मुझे मालूम है कि अपने मन के आरामदायक, किंतु सीमित स्थान से बाहर निकलकर अपने हृदय के समीप ज्यादा खुलेपनवाले स्थान की ओर यात्रा शुरू करने के लिए मुझे स्वयं में पर्याप्त ऊर्जा महसूस होती है (यद्यपि स्वयं सद्गुरु मेरे इस मन से हृदय के यात्रा मार्ग को अत्यधिक घिसी-पिटी बात कहकर खारिज कर देते हैं।) फिर भी वहाँ पहुँचने से मैं काफी दूर हूँ। किंतु इस मंजिल की दिशा में प्रयास करना सार्थक महसूस होता है और संभवत: यह ठिकाना तो है, किंतु यह अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक महसूस होता है। अभी भी दिमाग (मन) वह जगह है, जहाँ मैं अपना बहुत सा जीवन व्यतीत करती हूँ लेकिन मुझे आशा है कि इसमें उक्त ठिकाने में निवास करने से अपेक्षाकृत बहुत कम निहित स्वार्थ हैं।

मुझे अभी भी गलतफहमियाँ हैं, जो उठती हैं, समाप्त हो जाती हैं और पुन: उठ जाती हैं। उदाहरण के लिए संस्थागत आध्यात्मिकता के प्रति मैं असहज रहती हूँ। ऐसे स्वयंसेवी जन जो नए-नए धर्मांतरण करके आए लोगों जैसा शृंद्धालु होने का उत्साह प्रकट करते हैं, मुझे उनसे असहजता महसूस होती है। बाजारीकरण की तरकीबों (यद्यपि यें अन्य कहीं की अपेक्षा ईश में बहुत कम हैं।) से मुझे असहजता महसूस होती है। किंतु हर बार जब मैं गुरुजी से मिलती हूँ तो मेरी दोहरी मानसिकता समाप्त हो जाती है। भले ही ईश केंद्र से नए-नए जुड़नेवाले और ध्यानी (मैं भी) सतत विकास प्रक्रिया में हैं, लेकिन समय-समय पर मौलिकतापूर्वक वह मुझे प्रेरित करते हैं। इस प्रक्रिया में कोई शोर-गुल नहीं है, कोई सहानुभूति प्रकट करनेवाले तकियाकलाम नहीं हैं, कोई भीड़भाड़ वाली व्यावसायिक आध्यात्मिकता नहीं है। उनकी उपस्थिति की गतिशीलता एवं नीरवता ही है जिस पर मैं स्वाभाविक रूप से भरोसा करती हूँ।

एक बार उन्होंने मुझे बताया, ''यह बिलकुल गलत धारणा है कि कुछ करने के लिए जोश और उत्तेजना चाहिए। मात्र क्षुद्र चीजें ही मुकाम पाने के लिए गरम (उत्साहित) हो उठती हैं। मैं तो एक ठंडी आग हूँ। अस्तित्व इसी तरह कार्य करता है। यह ठंडा किंतु रचनात्मक होता है।

अस्तित्व में पाई जानेवाली वास्तविक बड़ी चीजें कभी भी गरम नहीं होतीं। तुम सृजनकर्ता का ही उदाहरण ले लो। तुम जन्मते हो, तुम मरते हो, वह दोनों में से किसी भी अवस्था में सूक्ष्म ही बना रहता है।''

किंतु उनसे बातचीत के दौरान मैं हमेशा ही काफी उत्साहित रहती हूँ। मैं जानती हूँ कि दूसरे यह महसूस करते हैं। ऐसा महसूस होता है कि उनकी तीव्रता संक्रामक है। किसी ने एक बार कहा, ''वह फास्ट फॉर्वर्ड गुरु हैं।'' मुझे तो ऐसा महसूस होता है कि वह एक शक्ति-स्रोत से सीधे संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें जुड़ने से बड़ा सार्थक भाव उत्पन्न होता है।

क्या मेरा यह विश्वास है कि गुरुओं का दिव्यता (दैवज्ञता) से हाटलाइनवाला सीधा संपर्क होता है? यह बात बड़ी

हास्यास्पद लगती है कि आध्यात्मिक जीवन कुछ चुनिंदा लोगों का पूर्व संचय धन है। सद्गुरु ने भी कभी ऐसा कोई दावा नहीं किया।

वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। ऐसे में जुड़ने की (गुरु से) आवश्यकता ही क्या है? मैंने हमेशा से ही 'सद्गुरु संक्रमण' का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। सद्गुरु के करीब होने पर मुझे एवं अन्य लोगों को जीवंतता की पराकाष्ठा जो महसूस होती है, उसकी क्या वजह है?

क्या इसे मैं उनका व्यक्तित्व समझूँ? किंतु जिन व्यक्तित्वों से मैं परिचित रही हूँ, उनसे उनके अहं की बू आती है, जिससे मैं एक अंतराल के बाद उनसे ऊब जाती हूँ तो क्या यह उनकी बुद्धिमत्ता है? किंतु मैं तो उनसे (सद्गुरु से) ज्यादा तथ्यों के संग्रह किए हुए एवं उनसे बड़े बौद्धिक दिग्गजों से मिल चुकी हूँ और कदाचित् ऐसे कई और लोगों से मिलना चाहती रही। अंतत: मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि साधारणत: यह उनकी उपस्थिति ही है—एक नैसर्गिक, घनीभूत एवं अबाधित सबकुछ वही होने का भाव। हम इसे एक ऐसी उपस्थिति के रूप में पहचानते हैं जो तब प्रकट होती है जब हम अपने सभी आवरणों, अपनी कार्यसूचियों, अपनी स्वयं की दुर्बलताओं के प्रति पुरातनकालीन भय से छुटकारा पा लेते हैं।

जैसाकि रमण महर्षि के एक पश्चिमी शिष्य ने उनके विषय में कहा था, ''एक ऐसा शरीर जिससे ईश्वर प्रचंडता पूर्वक प्रकट हो रहा है।'' इसका क्या अर्थ है, यकीनन मुझे नहीं मालूम था किंतु वर्षों पूर्व जब मैंने इसे पढ़ा तो यह सत्य महसूस होता था। मेरा ऐसा अनुमान था कि ऐसा दृश्य मेरे समक्ष उपस्थित होगा तो मैं उसे पहचान लूँगी। और जब समय आया तो मेरा अनुमान सही सिद्ध हुआ। मुझे लगता है कि ऐसे समय ही मौलिक भाव प्रकट होता है। आप जानते हैं, तभी आपको वास्तविक चीज प्राप्त होती है, भले ही इसका अभिप्राय आपने पहले ही समझ लिया हो।

यह पुस्तक उस आश्चर्य के भाव को आपस में बाँटने का प्रयास है, जो इन वर्षों के दौरान सद्गुरु के सान्निध्य में प्राप्त होता रहा। ज्यादा आधारभूत रूप से कहें तो यह एक बहुत ही असाधारण व्यक्ति की कहानी सुनाने का प्रयास है।

ऐसा बहुत कुछ है जो उन्हें 'असाधारण' निरूपित करता है। उदाहरण के तौर पर उनकी जीवन गाथा को ही लें जो प्राय: विश्वास करने की हद ही पार कर देती है। (यदि कोई विश्वास करता है तो इसलिए कि वह व्यक्ति (सद्गुरु) स्वयं ही इस विषय में उदासीन है।) उन्होंने बड़ा अद्भुत एवं शक्तिशाली ऊर्जा रूप— ध्यानलिंग—निर्मित किया है जो प्रतिदिन दुनियाभर के हजारों साधकों के आकर्षण का केंद्र बन गया है। उन्होंने रूपांतरण ध्यान पाठ्यक्रम का लेखन किया है जो दुनियाभर के अभ्यासियों के जीवन में हलचल उत्पन्न करता है, उन्हें बिखेरता है एवं लगभग गहराई तक ले जाता है और गूढ़तम तरीके से उसमें (जीवन में) बदलाव लाता है।

अन्य कई लोगों की तरह मेरे लिए भी वह गुरु हैं, किंतु मुझ समेत उन सभी लोगों के लिए जिन्होंने इस शब्द (गुरु) के प्रति पूर्णत: क्षम्य संशय सँजोकर रखा है, यह पुस्तक एक लुभावने, समकालीन रहस्यवादी एवं जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है—एक नितांत मानवीय पुरुष का चित्रण प्रस्तुत करेगी।

एक दिन किसी ने मुझसे पूछा, 'गुरु मिल गया है।' का वस्तुत: तात्पर्य क्या होता है? मैंने उसे बताया कि मैं तो अभी भी यह जानने का प्रयास कर रही हूँ। किंतु कुछ-कुछ यह जानने जैसा है कि अर्थ हेतु मनुष्य के चीखने के उत्तर में—जैसा कैंमस ने कहा—दुनिया की चुप्पी अनुचित नहीं है।

मैंने एक और खोज की है कि व्यक्ति के जीवन में गुरु का स्थान अधिकारी की तरह नहीं होना चाहिए। मैं जानती हूँ कि कई लोग गुरु-शिष्य के संबंध को लगभग मध्यकालीन युग के पदानुक्रमिक रूप में समझते हैं, जबकि गुरु के प्रति गहन आदर और प्रेम से स्वाभाविक रूप से एक विश्वास उत्पन्न होता है जो कि सीखने की किसी भी प्रक्रिया हेतु महत्त्वपूर्ण है। मेरे लिए यह जानना भी मनोहारी था कि व्यक्ति गुरु के साथ अनौपचारिक संबंध, उनके प्रति सम्मान को थोड़ा भी खोए बगैर रख सकता है!

जो वह कहते हैं, क्या मैं उन सबसे सहमत होती हूँ? आध्यात्मिक मुद्दों पर तो मैं कुतर्क नहीं करती। किंतु अन्य

मुद्दों पर उन्हें छेड़ने में मुझे मजा आता है। उन्होंने मुझे मुंबई का प्रतीकात्मक बौद्धिक एवं 'कला की दुनिया का एक आदर्शवादी' संबोधित किया है, जिससे उनका तात्पर्य, जैसा कि मुझे मालूम है, रुग्ण या कमजोर उदारतावादी है। कभी-कभी तो वह इस बात को इतने अच्छे तरीके से भी नहीं कहते। मुझे लगता है कि मेरा व्यवहार अपेक्षाकृत कम ही रूखा रहा है, यद्यपि मैंने उन्हें प्राय: यह बताया है कि वह परिवर्तनीय एवं निरंकुश हैं। किंतु मुझे तर्क अच्छे लगते हैं और मैं एक ऐसे मार्गदर्शक को पाकर कृतज्ञ हूँ जो इतने सक्षम हैं कि अपने प्रति अस्वीकृति की अनुमति भी देते हैं। गैर-आलोचनात्मक आज्ञापालन या हामी भरना मेरे लिए सहज नहीं है और इसके बिना मैं कितना भी प्रयास करूँ; निरंतर हर्षोन्मत रहनेवालों के वर्ग में मैं शामिल नहीं हो सकती थी।

एक बार मैंने सद्गुरु से बाइबल की इस गूढ़ पंक्ति के विषय में पूछा—'किंतु बहुत से लोग बुलाए जाते हैं और बहुत कम लोगों को चुना नहीं जाता।' मैंने तर्क दिया कि यह तो बहुत अनुचित और गैर-प्रजातंत्रिक है। स्वयं के प्रति रहस्यवादी ज्ञान कुछेक लोगों तक सीमित क्यों रहना चाहिए? हर किसी को क्यों नहीं चुना जाना चाहिए? मुझे उनका उत्तर स्पष्ट रूप से याद है। उन्होंने जवाब दिया—''ऐसा कहा जाना ज्यादा सही है, बहुत से लोग बुलाए जाते हैं किंतु बहुत कम लोग चुनते हैं।''

और ऐसे सभी लोग, जो गुरुओं को करोड़ों मूर्ख लोगों पर प्रशासन करनेवाला समझते हैं, उन्हें यह स्मरण कर लेना उपयोगी होगा कि यह व्यक्ति, अपने से पूर्व अनेक रहस्यवादियों की तरह, आपसे अनुसरण करने के लिए नहीं कहता। वह आपसे प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कहता। वह आपसे आपकी तार्किकता का त्याग करने के लिए नहीं कहता। वह आज्ञापालन के लिए नहीं कहता। वह मान्यता या विश्वास के लिए नहीं कहता। वह सामान्य रूप से आपको चुनने के लिए कहता है।

मार्ग का जीवंत मानचित्र अब भी उपलब्ध है और पसंद अभी भी मौजूद है।

‘शुद्ध जागरूकता एवं उन्मत्तता’

यात्रा का आरंभ

यदि आप कोयंबतूर एयरपोर्ट के ‘बैगेज क्लेम’ से अपना असबाब ले रहे हैं तो आपको दाईं ओर ‘ईश’ लिखा हुआ एक टैक्सी काउंटर नजर आएगा। वहाँ से तीस किलोमीटर की यात्रा के लिए आप टैक्सी किराए पर ले सकते हैं, जो कि डेढ़ घंटे में आपको आपके गंतव्य तक पहुँचा देगी। हालाँकि कोयंबतूर के कुछ ज्यादा निर्भीक टैक्सी ड्राइवर उससे पहले भी आपको वहाँ पहुँचा सकते हैं।

टैक्सी यात्रा के प्रथम भाग में आप शहर की दुकानों और साइकिल सवारों, लक्जरी कारों और इधर-उधर घूमती गायों की हलचल के बीच से गुजरते हैं। कोयंबतूर एक समृद्ध शहर होने के साथ-साथ दक्षिण का एक प्रमुख औद्योगिक केंद्र है और वाणिज्यक कारोबार की यहाँ बहुत भरमार है। नोयल नदी के तट पर स्थित उत्तर और पश्चिम दिशाओं से पर्वतों से घिरा, नम जलवायु की उपलब्धता के साथ (यद्यपि भीड़भाड़ का स्तर बढ़ रहा है) यह अब भी आकर्षक शहर है।

लेकिन शनै:-शनै: आप पाएँगे कि आपकी टैक्सी शहर की सड़कों से अलग बढ़ रही है। अब आप पश्चिम की ओर बढ़ रहे हैं। अब आप ग्रामीण दक्षिण भारतीय क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। अब आप गाँवों के मध्य से गुजर रहे हैं। रास्ते अपेक्षाकृत संकरे, भू-भाग हरे-भरे होते जाते हैं और अचानक सामने की ओर आगे पर्वत—वेलागिरी पर्वत, जिन्हें ‘श्वेत’ और ‘रुपहले’ पर्वत भी कहते हैं, भी आपको नजर आने लगते हैं, जो वनाच्छादित, रहस्यमय और बादलों को छूते से लगते हैं। अचानक नीरवता महसूस होती है।

अब कार का इंजिन पहले की अपेक्षा अधिक शोरगुल करता महसूस होता है। आपको स्कूल से घर लौटते हुए ग्रामीण बच्चे का चिल्लाना, बकरी का मिमियाना, नजदीक से गुजरती मोटर-कार के भोंपू की आवाज सुनाई पड़ती है। नीरवता पर्वतीय हवा की एकमात्र सुगंध की तरह बोधगम्य बनी रहती है। तभी आप एक बोर्ड के करीब से गुजरते हैं जो आपको बताता है कि अब आप अपने गंतव्य से कुछ ही किलोमीटर के फासले पर हैं।

कार एक धूल-धूसरित गली में प्रवेश करती है। यहाँ इसकी गति हिचकोले लेते हुए धीमी रहती है। निरंतर वर्षा की वजह से निर्मित बड़े-बड़े गड्ढोंवाला रास्ता एवं सूखे कठोर कीचड़ की पंक्तियाँ पीछे छूटती जाती हैं। टैक्सी ड्राइवर धीरे-धीरे सीटी बजाता रहता है, लेकिन परेशान नजर नहीं आता। कार के म्यूजिक सिस्टम पर बजता फिल्मी भक्तिमय गीत अपने पूरे उत्साह में चलता रहता है। अंतत: आप अपनी मंजिल पर आ पहुँचते हैं।

एक सुरक्षा गार्ड आपसे आपके आने का उद्देश्य पूछते हुए आपको आगंतुक का लेबल पकड़ाता है। यदि आप भारत में अन्य आश्रमों में जा चुके हैं तो उनकी और इस आश्रम की बनावट के अंतर से आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यहाँ तप है किंतु अकाल्पनिक कर्मकांड का अभाव है। सौंदर्य विषयक चीजों में खूबसूरती से जमे पत्थर, लकड़ियाँ अन्य सामान हैं, जिन पर विभिन्न विवरण अंकित हैं। आप पाते हैं कि हरेक चट्टान, झाड़ी और वृक्ष अपनी नैसर्गिक स्थिति में है। कुछ भी फालतू सा नहीं है, कुछ भी कृत्रिम नहीं है। इस छलहीनता में कोई छल नहीं है। प्रत्येक मोड़ पर पर्वत आपको स्मरण कराते हैं कि आप नीरव अरण्य से कितनी कम दूरी पर हैं।

यदि आपने अपना कॉटेज आरक्षित करा रखा है तो संभव है, सबसे पहले आप वहाँ जाकर, अपने बैग जमाकर, यात्रा की थकावट मिटाएँगे। किंतु शायद आप अधीर हैं। बहुतेरों की तरह आपकी यात्रा का उद्देश्य भी वही रहस्यमय पूजा स्थल है जिसके विषय में आपने इतना कुछ सुन रखा है। शायद आपके मित्रों ने आपको इसके विषय में बताया हो। शायद इंटरनेट में आपको यह यों ही मिल गया हो। शायद बहुतेरों की तरह आपने भी इसे पहले कभी स्वप्न में देखा हो। किंतु आपको यह मालूम है कि आपको वहाँ जाने की आवश्यकता है और प्राथमिकता के आधार पर शीघ्र ही।

आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व कर्मकांड से जुड़ी एक परिक्रमा पूरी करनी पड़ती है। आप अपने जूते-चप्पल एक स्टॉल में रख देते हैं और तभी आपकी भेंट एक स्वयंसेवी से होती है जो आपको आगे होनेवाले अनुभव के विषय में जानकारी देता है। आप पूजास्थल के चारों ओर घूमना शुरू कर देते हैं।

लेकिन प्रवेश से पूर्व आपकी यदि इच्छा हो तो आप मंदिर के तालाब में कर्मकांडी स्नान कर सकते हैं। किंतु आपको यह बताया जाता है कि यह मात्र आनुष्ठानिक सफाई नहीं है। तीर्थ कुंड जमीन के 35 फुट नीचे एक भूमिगत तालाब है जिसका जल ठोस किए गए पारे (जिसे स्पष्ट तौर पर रास वैद्य यौगिक प्रक्रिया से संभव बनाया गया है) से ऊर्जातरंगित किया जाता है। इसका परिणाम मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक तौर पर उतना ही लाभपद्र होता है जितना ग्राह्यता की एक उच्च अवस्था से। ज्यों ही आप बाहर आते हैं आप तरंगित एवं ऊर्जाशील महसूस करते हैं। लेकिन यदि आप इसके प्रति सशंकित हैं तो आप ठंडे जल से स्नान के पश्चात् के प्रभाव से ज्यादा कुछ भी महसूस नहीं करते। फिर भी यह स्थल वातावरणीय है। प्राकृतिक रंगों से निर्मित विशाल भित्तिचित्र, आंतरिक छत व चारों ओर की सुसज्जित दीवारों से प्रतिष्ठा व मौन वैभव का प्रभाव निर्मित होता है। प्रत्याशा का दाव जाग्रत् होने लगता है।

आपका अगला पड़ाव हाल ही में निर्मित लिंग भैरवी के मंदिर पर होता है। वह वहीं निवास करनेवाली देवी हैं जिनके विषय में आपको पता चलता है कि वह प्रचंड संवेदनामय और उग्र हैं। वह एक छोटे एवं जीवंत स्थल पर निवासरत हैं, जोकि परिक्रमा के दक्षिण-पूर्व में है। उनका निवास स्थल अंतरंग, उनका रंग आग की लपटों सा लाल, सुलगते कोयले सा काला है। इस स्थल का पूर्ण प्रबंधन सिंदूरी रंग की साड़ी पहने पुजारिनों के हाथ में होता है, वहाँ पुरुष परिचारक स्पष्ट तौर पर अनुपस्थित रहते हैं। मूर्तिपूजा के स्तब्धकारी प्रदर्शन से आप स्वयं को असहज महसूस कर सकते हैं। यहाँ निश्चय ही गायन एवं नारियल फोड़ने का क्रम जारी रहता है। किंतु आपका ध्यान इस बात पर जाए बिना नहीं रह सकता कि इन कर्मकांडों में परिसीमन एवं उत्कृष्टता है। हर तरफ आकर्षण व लुभावनेपन के साक्ष्य हैं— दीवारों पर, कपड़ों पर, मूर्ति की सामान्य सुडौलता पर और आपके द्वारा इसकी खूबसूरती की सराहना किया जाना संभव है, भले ही आप इसके लिए वास्तविक उत्साह न जुटा पाएँ। चुपके से आप स्वयं को अपनी कोई मन्नत माँगते हुए पा सकते हैं (आखिर वह एक वरदान देनेवाली देवी के रूप में जानी जाती है और आपको ऐसी देवियों की नजर में अच्छा बने रहना उचित प्रतीत हो सकता है, जो सभी आध्यात्मिक परंपराओं के अनुसार चंचलचित्त बताई जाती हैं।) ज्यों ही आप वहाँ से जाते हैं, देवी की हीराजड़ित आँखें जो आपकी ओर टकटकी लगाकर देख रही थीं, आपके पीछे आती महसूस होती हैं।

आप आगे बढ़ते हैं और स्वयं को मुख्य मंदिर के दरवाजे की ओर बढ़ता पाते हैं। देखने में यह एक नाटकीय क्षण महसूस होता है। आप अंडाकार गुंबद को धुंध से ढके, वेलिआंगिरी पर्वतों के सामने पाते हैं। बाद में आपको मालूम होता है कि यह गुंबद पूरी तरह से ईंट एवं गारे से (सीमेंट, छड़ व क्रंकीट के प्रयोग बिना) निर्मित है। प्रवेश द्वार पर एक सर्वधर्म स्तंभ स्थापित है, जिस पर विविध आस्थाओं के ग्रंथीय प्रतीक निर्मित हैं। यह याद दिलाता है—अनुपालित मौन के अलावा कि जहाँ आप प्रवेश करने जा रहे हैं वह सामान्य हिंदू मंदिर जैसा नहीं है। आप तीन खड़ी चिकनी सीढ़ियाँ चढ़ते हैं। अब आप कुछ दूरी तक खुले स्थल पर चलते हैं जिसमें दोनों ओर पत्थर के पैनल हैं, जिन पर दक्षिण भारतीय रहस्यवादी संतों के जीवन के दृश्य उत्कीर्ण हैं। यह पैदल पथ स्पष्ट तौर पर, यह उत्सुकता बढ़ाने के लिए परंपरागत पवित्र स्थापत्यकला के अनुरूप निर्मित है। यह उद्देश्य पूरा भी होता है।

अब यह आपके ऊपर है। दीपकों के हिलते-डुलते प्रकाश से दृष्टिगत यह स्थल बाहर से जितना महसूस होता है, उससे भी बड़ा है। आप अपने सामने 13 फुट ऊँचे ठोस ग्रेनाइट का कॉलम खड़ा पाते हैं, इसकी एकदम काली सतह पर ताँबे के साथ वलय सममिता पूर्वक लगाए गए हैं। इसका (स्तंभ का) आधार स्थल सात कुंडलियों वाले पत्थर के विशाल सर्प का रूप धारण कर लेता है। इसके चारों ओर सामान्य जल की सीमा है, जिस पर तेल के दीपकों से घिरे पुष्प नीरवता पूर्वक प्लावित हैं। यदि आप आधुनिक भारत के पूजा स्थलों में कभी गए हैं तो आप यहाँ के दिखावे के अभाव से आश्चर्य चकित रह जाएँगे। यह स्थान शांत, आडंबररहित, बिलकुल गर्भ सरीखा; मध्ययुगीन काल जैसा है।

आप छायादार आलों में से एक के नजदीक से गुजरते हुए ध्यान लिंग की ग्राह्यता हेतु बैठ जाते हैं।

ध्यान लिंग का तात्पर्य अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग है। कुछ लोगों के लिए यह प्रभु के साक्षात् अवतरण से कहीं कम नहीं है। वे किंकर्तव्यविमूढ़ एवं उन्मत्त होकर बाहर आते हैं। कुछ लोगों के लिए यह एक स्थल न होकर एक प्रक्रिया है—गहनकारी, सुबोधकारी, घनीभूतकारी। वे जिस तरह प्रविष्ट हुए थे, उसकी अपेक्षा स्पष्ट तौर पर भिन्न महसूस करते हुए बाहर आते हैं। उनके चारों ओर शांत और मन एवं शरीर के क्रियाकलाप के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जागरूकता उनमें पाई जाती है। कुछ कहते हैं कि उन्होंने सबकुछ सामान्य ही महसूस किया और फिर भी उनके कुछ मिनट के आभास बाहर आने पर घंटों में परिवर्तित हो जाते हैं। लगभग सभी यह स्वीकारते हैं कि उन्होंने परिष्कृत एवं विशिष्ट अनुभव किया।

शास्त्रीय संगीत गायिका सुधा रघुनाथन कहती हैं, ''यह अनुभव मेरे लिए मेरे जरूरी समय पर ईश्वर के आशीर्वाद की तरह प्राप्त हुआ।'' मिशिगन से आए एक आगंतुक का कहना है, 'वस्तुत: मैं अप्रयासपूर्ण ध्यान में चला गया था, ध्यान जिसे मैं वर्षों से करना चाह रहा था लेकिन मुझे मालूम ही नहीं था कि कैसे किया जाए।'' पंजाब के एक सेवानिवृत व्यवसायी का कहना है, ''यहाँ मुझे अभी तक का सबसे विचित्र अनुभव हुआ। देशभर में मैं बहुत से शक्ति स्थलों में जा चुका हूँ, किंतु एक भी ऐसा नहीं मिला जहाँ इस तरह की ऊर्जा तरंगित होती है।'' जर्मनी के एक आगंतुक ने कहा, ''मैं मन में चिंताओं का भंवरजाल लिए अंदर गया। किंतु जब मैं अंदर पहुँचा तो वे चिंताएँ काफूर हो गईं। ऐसा लगा कि कोई उन्हें (चिंताओं को) मुझसे दूर ले जा रहा है और मैं चैन की साँस ले रहा था।'' एक लेबनानी ध्यानकर्ता ने बताया, ''मुझे ऐसा लगा मानो मेरा गुरु मुझे मिल गया हो, जो हमेशा मेरे साथ रहेगा, जो खुलकर प्रेम से और बिना पक्षपात के मुझे कृपा प्रदान करता रहेगा।'' कनाडा के एक स्कूल शिक्षक ने कहा, ''मैं प्राय: मन में ऐसी शंकाएँ लिए इस स्थान में प्रवेश करता हूँ कि मैं कर क्या रहा हूँ? कहीं मैं यहाँ आकर अपनी भौतिक जिम्मेदारियों से तो कन्नी नहीं काट रहा? किंतु हर बार जब मैं ध्यानलिंग की उपस्थिति में बैठता हूँ तो वे शंकाएँ खत्म हो जाती हैं। मैं समझता हूँ कि क्यों मैं यहाँ हूँ।'' एक युवती इस बात को ज्यादा स्पष्टता के साथ व्यक्त करती है, ''यह मेरा सबसे सच्चा मित्र बन चुका है।''

कुछ ऐसे भी हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि उनके आने के पूर्व ही प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। उन्हें ध्यानलिंग की तसवीर का आकस्मिक दीदार हो जाता है जिससे भावनात्मक रोमांच व बाध्यकारी उत्सुकता पैदा होती है। ऐसा कभी-कभी उनके साथ भी हुआ लगता है जिन्हें पहले आध्यात्मिक जीवन का कोई अनुभव नहीं था।

क्या उस प्रतिमा से कुछ पूर्वजप्रकृत्तिक प्रस्फुटित होता है? क्या उससे अचेतन मन में चिरंतन स्वरूप का प्रत्युत्तर उत्पन्न होता है? या यह समस्त अनुभव के निमित्त तैयार किया गया नाटक मात्र है, जिससे चालबाजी की जाती है? आखिर ध्यानलिंग है क्या?

इनके उत्तर प्रश्न पूछनेवालों के अनुरूप विविध होते हैं। इशा केंद्र के तार्किक व्यक्तित्वों से 'यही उत्तर प्राप्त होगा कि यह ध्यान हेतु एक उपकरण है।' कुछ अपेक्षाकृत ज्यादा भक्तिमय लोग इसे 'शिव' कहेंगे।

अंतत: आपको कुछ ऐसा ही परिणाम मिलेगा। आपको मालूम होगा कि संपूर्ण पृथ्वी पर यह ध्यानलिंग अपने आप में एकमात्र ही है। आप जानेंगे कि इसके तीव्र ऊर्जा क्षेत्र में बैठना किसी जीवंत गुरु के सान्निध्य में बैठने जैसा है। आपको ज्ञात होगा कि यह ऊर्जा का चिरंतन, अविनाशी, अनश्वर एवं पृथ्वी के नष्ट होने के बावजूद अस्तित्वान रहनेवाला स्रोत है। ऐसे में ध्यानलिंग एक जीवंत, स्पंदनशील उपस्थिति है, न कि शिला की एक संरचना मात्र। प्रवेश द्वार पर एक स्वयंसेवी आपको बताता है कि यदि आप इसकी ग्रेनाइट रचना को समाप्त भी कर दें तो लिंग की प्रभावकारिता बरकरार रहती है। किंतु यदि इस संरचना को रखा गया है तो इसकी एकमात्र वजह यह है कि ज्यादातर साधकों को स्वयं को उस ऊर्जा से जोड़ने के लिए मूर्त रूप की आवश्यकता पड़ती है।

मध्य प्रदेश के भोजपुर में ऐसे ही ध्यानलिंग की एक मध्यकालीन प्रतिमूर्ति है जो आप देख सकते हैं, किंतु इसके संपूर्ण होने से पहले ही इसे विरूपित कर दिया गया। और इसी कारण यह ध्यानलिंग (इशा केंद्र) अपने आप में एक

महासिद्धि, एक उपलब्धि है जिसे आसानी से उनके द्वारा नहीं परखा जा सकता जो आध्यात्मिक विज्ञान के इतिहास से अनभिज्ञ हैं।

और आप यह सोच सकते हैं कि आखिर लिंग ही क्यों? निस्संदेह लिंग हिंदुत्व की लिंग पूजा से करीब से संबंधित है। यकीनन ऐसा ही है, और इसके प्रति कोई क्षमाप्रार्थी होने का भाव स्वयंसेवी (आपको जानकारी देनेवाला) में नहीं है। किंतु वह आपको बतलाता है कि यह उस (लिंग पूजा) से कहीं बढ़कर है। अंडाकार आकृति वस्तुत: एक आधारभूत रूप है। आधुनिक विज्ञान भी यही बतलाता है कि प्रत्येक आकाशगंगा (गैलेक्सी) का केंद्रीय भाग अंडाकृति में है। विभिन्न परंपराओं से जुड़े आध्यात्मिक ज्ञानियों को हमेशा से यह ज्ञान रहा है कि यह निराकार (या शून्य, या प्रारंभिक अवस्था को आप जो भी कहें) से प्रकट होनेवाला प्रथम स्वरूप है। एवं समाप्ति के पूर्व का अंतिम रूप भी यही है।

और इसलिए लिंग-रचना की तकनीक काफी प्राचीन है, जो दुनिया की कई संस्कृतियों में परिष्करण के अनेक स्तरों पर पाई जाती है। इसमें उच्च स्तरों की आध्यात्मिक विशिष्टता की आवश्यकता होती है। किंतु ध्यानलिंग निर्मित करने के विज्ञान में एक स्तरीय शौर्य की आवश्यकता होती है, जो कि कहीं ज्यादा विचारणीय है। इसमें सदाचारी या कलामयज्ञ होने से भी अधिक की आवश्यकता होती है। आपको यह बताया जाता है कि इसके लिए प्रचंड कटिबद्धता एवं दुस्साहस की आवश्यकता होती है। इस (ध्यानलिंग निर्माण) के मामले में अपने जीवन को एक से अधिक बार दाँव पर लगाने की शर्त स्वीकारनी पड़ी।

ध्यानलिंग की जीवन गाथा बताने के कई तरीके हैं। किंतु इनमें से किसी भी तरीके में इसके रचयिता के जीवन को अलग नहीं किया जा सकता। उनकी जीवन गाथा का वर्णन करने के भी कई तरीके हैं। उनमें से एक बहुत ही रूखा वर्णन है जिससे किसी भी शंकालु को असहजता महसूस हो सकती है। दूसरा तरीका अपेक्षाकृत अधिक उदार समसामयिक है जिसमें तथ्य असत्यापनीय हैं, किंतु इनमें ज्ञानवर्धक विवरण है।

ध्यानलिंग के रचयिता रूपक प्रेमी हैं। एक बार जब एक बच्चे ने उनसे पूछा कि जीवन सत्य है या स्वप्न, तो उन्होंने बड़ी सहजता से विरोधाभासपूर्वक जवाब दिया, ''जीवन एक स्वप्न है, किंतु स्वप्न सच्चा है।'' वह कविता पाठ एवं रचना करते हैं किंतु मात्र ध्यानलिंग ही पर्याप्त सबूत है कि वह कवि हैं। वह तथ्य एवं सत्य के मध्य भेद की ओर बार-बार ध्यान आकर्षित करते हैं। यह ऐसा भेद है जिसे प्रत्येक कलाप्रेमी बहुत अच्छी तरह जानता है। बेहतरीन उपन्यास एवं कविता स्पष्ट रूप से काव्य का क्षेत्र है। यह इस कहानी से गैरतार्किक को बहिष्कृत करने के हिंसात्मक कृत्य की तरह महसूस होता है।

इसके अलावा ध्यानलिंग के रचयिता संशयवादी भी हैं। उनकी तार्किकता अत्यंत कटु एवं आध्यात्मिक मार्ग पर उनकी छल के प्रति अमान्यता खरी एवं तीक्ष्ण हो सकती है। इससे उनकी कहानी के अपेक्षाकृत अधिक अविश्वसनीय पहलुओं पर विश्वास करना ज्यादा सरल हो जाता है। यदि पाठक वस्तुस्थिति की लय, जिसके माध्यम से इनमें से कई घटनाएँ बताई गई हैं, को सुन सकते हैं तो शायद उन्हें स्वीकारना अपेक्षाकृत आसान हो जाएगा।

आइए, इस कहानी की शुरुआत एक विकल्प से की जाए। अगला अध्याय इस कहानी की संभावित शुरुआत है। किंतु एकमात्र नहीं। जो इसे पचाने में कठिनाई महसूस करते हैं, वे सामान्य रूप से उसके बाद वाले अध्याय में बढ़ सकते हैं और वहाँ से कथानक चुन सकते हैं।

सत्य या तथ्य। वास्तविक या ऐतिहासिक। पसंद आपकी है। किंतु एक चेतावनी है। कहानी के अनेक मोड़ों में दोनों कदापि भिन्न नहीं हैं। इस गूढ़ समन्वय (एक कुंजी भी जिसकी पाठक इस कहानी से अपेक्षा कर सकता है) में, एक अंतर्ज्ञान की प्राप्ति उसी तरह करनी है जैसा कि एक बार ध्यानलिंग के रचयिता ने अपनी रचना में बताया। उन्होंने कहा, ''यह शुद्ध जागरूकता एवं विक्षिप्तता का समन्वय है।''

और शायद यह उतना ही सही विवरण है, जितना आप स्वयं सद्गुरु से प्राप्त कर सकते हैं।



‘ऊपर गिरना’

तीन जीवन

निम्नलिखित कहानी सद्‌गुरु ने कई बार सुनाई है।

लगभग 400 वर्ष पूर्व रायगढ़ जिला (अब मध्यप्रदेश) में बिल्वा नामक एक व्यक्ति रहता था। वह ऊँची कद-काठीवाला गठीले शरीर का व्यक्ति था। वह निर्भीक था एवं अपने जीवन से बहुत प्यार करता था। उसकी सपेरा जनजाति के लोग उसे विचित्र एवं अपरंपरावादी मानते थे। वह शिव का भक्त होने के साथ-साथ विद्रोही एवं नियमों को तोड़नेवाला था। जब वह चलता था तो इतना गर्व झलकता था मानो धरती उसे उत्तराधिकार में मिली हो। इससे कई लोगों को बहुत बुरा लगता था। इस उम्र में उसका यह रौब सभी को चिढ़ पैदा करनेवाला एवं अटपटा लगता था। अपने एक खास अंदाज में मस्त उसे ऐसा लगता था कि जिस दुनिया में वह रह रहा है, वह उसके अनुकूल नहीं है।

उसने शांभवी नामक एक ब्राह्मण लड़की से प्रेम कर जाति नियमों की धज्जियाँ उड़ा दीं। यह एक अपशकुनकारी स्थिति थी। तत्कालीन जाति व्यवस्था का कानून कठोर एवं अक्षम्य था। लेकिन बिल्वा में होश की अपेक्षा जोश अधिक था। प्रतिबंधित प्रेम के दुष्परिणाम से अपने वंश की रक्षा करने के लिए उसने उन्हें संबलपुर (आज उड़ीसा) ले जाना तय किया। सुरक्षा कारणों के अतिरिक्त उस कस्बे के निकट स्थित मुक्तेश्वर देवता के प्रति अगाध श्रद्‌धा भी इस निर्णय के पीछे एक कारण थी।

दोनों प्रेमी लुक-छिपकर बिल्वा की जानकारीवाले खेतों एवं जंगलों में मिला करते थे। किंतु उनके संबंध ज्यादा समय तक छिपे नहीं रह सके। शांभवी की बिरादरी वालों को शीघ्र ही इस बात का पता चल गया और पहाड़ टूट पड़ा। गाली-गलौज व धमकियों का बिल्वा पर कोई असर नहीं हुआ। वह अपनी प्रेयसी के साथ भाग जाने की साजिश रचने लगा। उसकी आयु मात्र 27 वर्ष की थी, जब व्यक्ति अपने जीवन के उत्साह काल में होता है, और उसे कोई भय नहीं व्यापता।

अंतत: शांभवी के परिजनों ने उसके क्रुद्‌ध चाचा के नेतृत्व में व स्थानीय शासक की मदद लेकर उस युवा को पकड़ने के लिए जाल बिछाया। पूर्णमासी की चाँदनी रात थी। दोनों प्रेमियों ने जंगल में चोरी-छिपे मुलाकात की योजना बना रखी थी। अनजाने में बिल्वा उनके जाल में फँस गया। इसके पहले कि कुछ समझ पाता, वह चारों ओर से घिर गया और उसे बंदी बना लिया गया।

उसे एक पेड़ से बाँधकर एक साँप को उस पर छोड़ दिया गया। साँप का जहर उसकी नसों में दौड़ा और उसका खून जमने लगा। दर्द बढ़ता गया। उसके फेफड़े सिकुड़ते गए। किंतु अपने प्रताड़कों को अपनी शर्मसार करनेवाली मौत का नजारा देखकर खुश न होने देने का निश्चय करके, बिल्वा ने अपनी साँसों पर नजर रखना शुरू कर दिया। साँसें भारी होने पर भी वह उन्हें आते-जाते देखता रहा और उसकी अंतिम साँस की बारी आ गई। किंतु जो मौत बर्बरतापूर्वक होनेवाली थी, वह एक सुखद निगमन हो गई। उसने पूरे होशो-हवास में अपना शरीर त्याग दिया था।

वही जागरूकता अगले जन्म में उसे एक आध्यात्मिक अभिलाषी के रूप में वापस ले आई। उसकी आध्यात्मिक साधना जहर के प्रभाव में आ गई थी। उस जहर से उसके आध्यात्मिक अभ्यास को पैनापन, लगभग-विक्षिप्त सी अन्यमनस्कता प्राप्त हुई जो उससे कभी भी अलग होनेवाली नहीं थी। शिवयोगी कठिन तप के माध्यम से उच्चस्तरीय यौगिक प्रवीणता हासिल करते थे। उसने एक तेलुगुभाषी परिवार से आकर, अपने जीवन में एक भ्रमणशील साधु के रूप में दूर-दूर तक यात्रा की। देश में कटिबद्‌ध साधकों की समयनिष्ठ परंपरा के अंतर्गत उन्होंने भयंकर भुखमरी और कठिनाई का जीवन जिया। उनका अधिकतर समय वेलियांगिरी पर्वत में बीता, जहाँ दक्षिण के अनेक ज्ञानी रहे। उनकी

यौगिक कलाओं के कारण उन्हें समर्पित अनुयायी मिले। बड़ी-बड़ी सिद्धियों पर उनका अधिकार था, किंतु उन्हें स्वयं की कमियों का अहसास था।

इस बात से वह शर्मिंदा थे कि जैसा लोगों ने उन्हें समझ रखा था, वह वैसे नहीं थे। वह जानते थे कि जब तक उन्हें अंतिम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक वह छद्मवेशी से ज्यादा कुछ नहीं थे। सद्गुरु इस दौर को कष्टदायी व हृदयविदारक तप बतलाते हैं।

एक दिन जब योगी पर्वत में अपनी धूनी रमाए थे, एक घूमता-फिरता साधु आकर उनके बगल में रुक गया। यह श्री पलानी स्वामी थे, कोयंबतूर की दक्षिण पहाड़ी में रहनेवाले महाज्ञानी संत। उनका यह नाम इसलिए था, क्योंकि उन्होंने पलाना कस्बे में ढाई साल समाधिस्थ अवस्था में बिताए थे। तभी से उन्होंने तमिल के ग्रामीण क्षेत्रों में भ्रमण कर बहुत से आध्यात्मिक साधकों को मार्गदर्शन देते हुए अपना समय बिताया था। पलानी स्वामी ने शीघ्र ही शिवयोगी की लालसा की प्रचंडता एवं व्यथा पहचान ली। अगले कदम पर गुरु द्वारा छेड़छाड़ किए जाने की ही आवश्यकता थी। वह जानते थे कि यह अगला कदम ही निष्कर्षकारी सिद्ध होगा; युक्ति के अंतहीन परिमंडल में सीधा गिरना।

किंतु शिवयोगी शिव के भक्त एवं स्वयं पर गर्व करनेवाले व्यक्ति थे। वह जानते थे कि शिव को छोड़ किसी और के हाथ से आध्यात्मिक छेड़छाड़ किए जाने को वह स्वीकार नहीं करेंगे, इसलिए पलानी स्वामी सहृदयतापूर्वक आदि योगी के रूप में उनके समक्ष प्रकट हुए। शिव योगी ने स्वयं को उन्हें समर्पित कर दिया, तदुपरांत पलानी स्वामी ने अपना सोंटा उठाया और साधक के माथे पर रख दिया। तत्क्षण शिवयोगी उस अवस्था को प्राप्त हो गए जिसकी जीवनभर उन्हें तलाश रही। आत्मज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ।

गुरु चुपचाप अपने रास्ते चल पड़े। गुरु और शिष्य के मध्य एक शब्द भी बातचीत नहीं हुई। कोई शपथ नहीं ली गई, जीवनभर वफादारी की कसमें नहीं खाई गईं। उस सक्षिप्त मुलाकात के बाद उन्हें कभी नहीं मिलना था। किंतु शिवयोगी उस मुलाकात की वसीयत को कभी नहीं भूले। पलानी स्वामी के सोंटे के स्पर्श से वह मुक्त हो गए थे। किंतु अपने स्वयं के विचित्र ढंग से, इस स्पर्श से वे बंधन में भी आ गए थे। इससे एक साधक के रूप में वे अपने अंतिम गंतव्य तक पहुँच गए थे। किंतु इसी क्षण उनमें एक बीज पड़ गया था, जो उन्हें बतौर गुरु उनकी यात्रा की शुरुआत को दर्शाता है। इससे उन्हें यह जिम्मेदारी मिल गई जिसे वह अपने जीवन काल में पूरी करते रहेंगे।

वह बीज उनके पूर्व के असंख्य योगियों का स्वप्न था। यह एक ऐसे पवित्र रूप के निर्माण का फॉर्मूला था जिससे न केवल ऊँचे स्तर के आध्यात्मिक बल्कि मानवता के बहुत बड़े वर्ग मुक्त होंगे। यह सभी को मुक्ति दिलाने का सूत्र था। ध्यानलिंग की कहानी यहीं से प्रारंभ होती है।

जहाँ एक ओर इस विशाल कार्य के लिए चुना जाना एक सम्मान था, वहीं दूसरी ओर यह एक साहसिक प्रत्याशा थी। कई अन्य लोग इस पर अपने हाथ आजमाकर असफल हो चुके थे। ध्यानलिंग एक यौगिक उपक्रम था जो ऐतिहासिक रूप से दु:खद परिणामवाला महसूस होता था। इसके निर्माण में आदमियों और औरतों द्वारा दीर्घ एवं घनीभूत आध्यात्मिक अभ्यास में भागीदारी करना शामिल था—एक ऐसी स्थिति जो सदा से इतनी अपारंपरिक है कि सामाजिक समझ या अनुमति के अनुकूल नहीं हो सकती। वे जिन्होंने जल्दबाजी में यह कार्य करने का प्रयास किया है, दु:खांत के शिकार हुए हैं। किंतु पलानी स्वामी के अनुग्रह के कारण शिवयोगी की असफलता का प्रश्न ही नहीं उठता था। वह जानते थे कि यदि वह असफल होते हैं तो उन्हें पुन: शुरुआत करनी पड़ेगी। इस मिशन को त्यागना इसका विकल्प नहीं था।

अपने जीवनकाल में अपने गुरु के स्वप्न को साकार करने का शिवयोगी का मिशन असफल हो गया। सत्तावन वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया। फिर भी वह मिशन टिका रहा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में शिवयोगी वापस आ गए। अब वह दक्षिण भारतीय रहस्यवादी सद्गुरु श्रीब्रह्मा थे। वह भी तेलुगुभाषी परिवार से थे और अपने चिढ़ानेवाले तौर-तरीके एवं अत्यधिक समवेदना के लिए विख्यात थे।

दक्षिणी भारत भर में अनेकानेक आश्रम आम आदमी की श्रद्धा के तौर पर इस उग्र स्वभाववाले किंतु आश्चर्यजनक रूप से प्रिय रहस्यवादी के लिए बने हुए हैं।

एक समय जब सद्गुरु कूनूर के आश्रम (आज भी प्रसिद्ध कॉरडाइट फैक्टरी के सामने) में रहते थे, तब उन्होंने ब्रिटिश शासन के उन प्रतिबंधों की खिलाफत की जिद की थी जिसके तहत नजदीक के रेलवे स्टेशन में रेलपटरी पार करना प्रतिबंधित था। यह नियम खासतौर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कठोर था। किंतु वे इससे डगमगाए नहीं। जब उन्हें इस अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया तो वे सीधे जेल के द्वार से बाहर आकर वापस अपने आश्रम लौट गए। उसके बाद कुछ खास नहीं किया जा सका। खबर फैल गई और नीलगिरिज क्षेत्र देखते-ही-देखते उनके सर्वाधिक निष्ठावान शिष्यों से भर गया।

एक अन्य अवसर पर, ऊटी लेक के पास उन्हें सुनने को जुटी भीड़ उनकी कुछ खरी टिप्पणी के कारण उग्र हो उठी। उनकी चिढ़ानेवाली खरी-खोटी बातों (जो कि उनके द्वारा उतने ही खुले दिल से देवताओं के लिए प्रयोग की जाती है जितनी उनके आसपास जुटे लोगों के लिए) के कारण सद्गुरु श्रीब्रह्मा को प्राय: धृष्ट एवं धर्म-विरुद्ध व्यक्ति के रूप में जाना जाता था। जब स्थिति हिंसा भड़कने के कगार पर जा पहुँची तो सद्गुरु ठहर गए और ग्यारह वर्ष के एक बालक को अपने पास बुलाया। उन्होंने लड़के के सिर पर हाथ रखा और उसे झील पर चलने के लिए कहा। बालक यह करने के लिए चल पड़ा। उग्र भीड़ अचानक शांत हो गई। सद्गुरु इस तरह तड़क-भड़क, ध्यानाकर्षणवाला चमत्कार करना जानते थे, किंतु केवल अत्यंत चरम स्थितियों में।

सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने ध्यानलिंग की स्थापना करने की पुरजोर कोशिश की। किंतु इस आध्यात्मिक प्रक्रिया हेतु सामाजिक विरोध बहुत अधिक था। ऐसा यह कौन-सा विचित्र यौगिक अभ्यास था जिसमें पुरुषों और स्त्रियों का अत्यधिक निकट दशाओं में सम्मिलित होना समाहित था। इस विचार से दक्षिण भारत के पुरातनपंथ के सर्वाधिक कठोरता से पालन किए जानेवाले नियम-कानून की भावना को चोट लगती थी। सद्गुरु को कोयंबतूर से बाहर निकाल दिया गया।

गुस्से से आगबबूला होकर यह योगी कई दिनों तक चलता रहा। उनके निष्ठावान शिष्य विभूति के लिए उनकी बराबरी से चलते रहना सरल नहीं था। जिन गाँवों से वे गुजरते, वहाँ के स्थानीय लोगों से रसद जुटाना, भोजन तैयार करना और गुरु के चल पड़ने से पहले उनके साथ हो लेनेवाली प्रक्रियाओं के कारण स्थिति और बदतर होती गई। इसका आशय था गुरु के गहरे ध्यान में रहने तक इंतजार करना, तत्पश्चात् चुपचाप उनके सामने भोजन रखना। शिष्य तब कहीं से छिपकर गुरु को भोजन करते हुए देखता रहता। ज्यादा खुलकर बाधा उत्पन्न करने से पहले से ही क्रोध की आग में जलते गुरु और भड़क उठते।

गुरु और शिष्य तेज चाल से चलते रहे। अंतत: वे कुडप्पा (आज आंध्रप्रदेश में) पहुँच गए। यहाँ वे सोमेश्वर के छोटे से मंदिर में ठहरे। वहाँ वे शिव के मदोन्मत्त करनेवाले रूप को समर्पित हुए। मंदिर का पुजारी एवं अन्य अधिकारी उनकी उपस्थिति की झुलसाकर रख देनेवाली तीव्रता को सहन न कर सकने के कारण पीछे हट गए। इस मंदिर को चुनने का कारण भी था। श्री पलानी स्वामी अपने जीवनकाल के दौरान यहाँ रहे थे।

कुडप्पा के इस धूलभरे कस्बे के एक सामान्य मंदिर में अगले छह माह के लिए गुरु और शिष्य ने एक योजना बनाई। यह ऐसी योजना थी जिसमें दो दर्जन से अधिक लोगों के भाग्य का फैसला किया गया, वह परिवार एवं गर्भ जहाँ उन्हें जन्म लेना था, वे कौशल जो उन्हें सीखने थे, और ऐसा जीवन जो उन्हें जीना था। यह भविष्य में एक ऐसा वातावरण निर्मित करने का प्रयास था जो ध्यानलिंग की रचना हेतु सौहार्द्रपूर्ण होता। इतिहास के दौरान ध्यानलिंग के पूर्णता प्राप्त करने में आए अवरोध का एक कारण सामाजिक था। गुणी सदाचारी योगियों के मार्ग में प्रचलित नियम-कायदों के कारण बाधाएँ खड़ी की जाती रहीं। सद्गुरु ने बड़ी सूझबूझ से काम लेते हुए अपने विश्वसनीय शिष्यों में से कुछ को ऐसे परिवारों में रखने का निर्णय लिया जहाँ से उन्हें सर्वाधिक विरोध की उम्मीद थी। इसके पीछे तर्क यह था कि संलिप्त होने के कारण, वे उनकी योजना को समाप्त करने में परेशानी महसूस करेंगे। लेकिन यह बात तय थी कि विरोध अवश्यंभावी

था। ध्यानलिंग के निर्माण में हमेशा कट्टर विरोधियों का सामना हुआ करता।

अंतिम मंचन के लिए अब मंच तैयार था। सावधानी पूर्वक आलेख लिखे जाने के पश्चात्, अगले कार्यक्रम के लिए सौदेबाजी होनी थी। किंतु इस विशाल कथानक के कार्यरूप में परिणत किए जाने के पूर्व, सद्‌गुरु ने अपना लक्ष्य पूरा करने का एक और प्रयास किया। उन्होंने पश्चिम भारत स्थित वज्रेश्वरी आश्रम के सदानंद नामक एक बालयोगी का शरीर प्रयोग किया। ग्यारह वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त कर सदानंद ने तीन वर्ष समाधिस्थ अवस्था में बिताए और 26 वर्ष की आयु में अपना शरीर त्याग दिया था। यद्यपि इसके अभाव में उनकी एक योजना थी, किंतु जब सद्‌गुरु ने सावधानी से सुसज्जित करके रखे गए शरीर के रूप में यह वैकल्पिक अवसर देखा, तो उन्होंने इसे हाथ से नहीं जाने दिया।

कुछ महीनों तक वह दो शरीरों में रहे। वह जानते थे कि उनका जीवनकाल सीमित है, इसलिए उन्होंने युद्धस्तर पर कुछ ऐसे शिष्य बनाने का कार्य किया जो उनके मिशन को पूरा कर सकते थे। किंतु उन्हें निराशा ही हाथ लगी। ध्यानलिंग के निर्माण की दिशा में जो स्थितियाँ उन्हें वज्रेश्वरी में मिलीं, वह कोयंबतूर की स्थितियों से किसी भी तरह कम नहीं थीं। वह बालयोगी के शरीर को छोड़ अपने शरीर में समा गए और अपने प्रस्थान की तैयारी कर ली। दूसरा जीवनकाल असफल हो चुका था। ऐसा लगने लगा कि पलानी स्वामी का स्वप्न इतने तक ही रह जाएगा। एक विशाल संभावना जिसका वरण करने को संसार तैयार ही नहीं था।

अब सद्‌गुरु वेलियागिरि पर्वत लौट गए। वह सातवीं पहाड़ी पर चढ़ गए। हवा के प्रवाह से स्वच्छ एक जंगली भू-भाग, जहाँ की नीरवता उस व्यक्ति के विषय में बहुत कुछ कहती है जिसने इसे अपने अंतिम प्रयाण के लिए चुना; यहाँ उन्होंने अपना शरीर सभी सातों चक्रों के माध्यम से त्याग दिया, यह कार्य इसके पूर्व स्वयं चक्रेश्वर ने किया था जो शिव ही थे। वह मानव इतिहास में दर्ज पहले योगी थे।

किंतु 42 वर्ष की उम्र में शरीर त्यागने से पूर्व सद्‌गुरु ब्रह्मा ने घोषणा की, 'मैं वापस आऊँगा।'



'यह मानवीय स्वभाव को चराएगा'

काली भेड़ से बना गड़रिया

'दूसरे चरवाहे भेड़ चराते हैं; यह चरवाहा मनुष्यों को चराएगा!' यह सांकेतिक टिप्पणी एक (भविष्यदर्शी) ने की थी जिससे वसुदेव परिवार में जन्मे नवजात शिशु की कुंडली बाँचने के लिए कहा गया था। उसने बच्चे की कुंडली पर लिखा, 'इसे भाग्यशाली जीवन का आशीष प्राप्त है।'

जगदीश का जन्म 3 सितंबर, 1957 को 11 बजकर 54 मिनट, आधी रात के 6 मिनट पूर्व सुशीला व उनके पति वसुदेव के पुत्र के रूप में हुआ था। वह मैसूर में जन्मे थे, जो ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का स्मारक शहर है, पूर्व की शाही राजधानी, महलों एवं सुसज्जित बगीचों की कल्पना का पर्याय। इस आगमन में विलंब रहा। चिंतातुर होकर जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी, उस बच्चे ने 23 दिन देर से अपनी उपस्थिति दी। शायद उसमें जन्म के पश्चात् की चुनौतियों का कोई विचार संग्रहीत था।

जगदीश परिवार में सबसे छोटे थे। उनके पहले एक भाई और दो बहनें थीं। वसुदेव के परिवार में बच्चों के नामकरण के समय एक सांस्कारिक तनाव हुआ करता था। दादा-दादी पारंपरिक नामों को प्राथमिकता देते थे जबकि माता-पिता की पसंद समकालीन विकल्पों में थी। हर बार अंतत: वे एक समझौते पर पहुँचते। जहाँ दादा-दादी ने एक नवजात बच्ची के लिए पपम्मा नाम सुझाया, वहीं माता-पिता पुष्पलता पर राजी हुए। जब पहले पुत्र के लिए परिवार में राघवेंद्र नाम उचित महसूस किया गया, माता-पिता ने रवींद्र नाम का विकल्प चुना।

किंतु इस मामले में आगंतुक भविष्यदर्शी ने बात ही खत्म कर दी। उन्होंने अपना स्वयं का नाम शिशु को प्रदान कर दिया। उसने निर्णय लिया कि जगदीश—या ब्रह्मांड का स्वामी—इसका नाम होगा। आगे चलकर उनका उपनाम जग्गी हो गया।

जग्गी के जन्म के एक वर्ष पहले, वसुदेव परिवार में एक शिशु का जन्म हुआ था जो अपनी शैशवास्था के दौरान ही चल बसा था। वह एक खूबसूरत बच्चा था, एवं भविष्य में उसकी महानता के सभी ज्योतिषीय चिह्न मौजूद थे। किंतु वह शिशु कुछ दिनों ही जी पाया। जैसा कि जग्गी—अब सद्गुरु— अपने अंदाज में बताते हैं, ''उसने (स्वयं को) 1956 में ही आने का प्रयास किया। किंतु पहली बार में जब उसे सफलता नहीं मिली तो एक वर्ष बाद उसने पुन: कोशिश की। दूसरी बार वह सफल हुआ।''

वसुदेव परिवार कर्नाटक का तेलुगु भाषी परिवार था। विख्यात नेत्र रोग विशेषज्ञ, डाक्टर वसुदेव बंगलोर के एक समृद्धशाली परिवार से थे। बचपन में ही उनकी माँ क्षय रोग से पीड़ित होकर चल बसीं और वह डॉक्टर बनने के अपनी मरणासन्न माँ के सपने को पूरा करने के निश्चय के साथ बड़े हुए। यद्यपि यह उनके पिता की इच्छा के खिलाफ था जो यह चाहते थे कि वह परिवार के व्यवसाय में हाथ बँटाएँ। अपने मामा का प्रोत्साहन पाकर युवक वसुदेव ने मैसूर मेडिकल कॉलेज से नेत्ररोग में विशेषज्ञता का अध्ययन किया। वह पक्के सिद्धांतवादी एवं स्वाभिमानी युवक थे। उन्होंने अपनी पढ़ाई का अधिकांश खर्च छात्रवृत्ति से पूरा किया। वह देर रात तक स्ट्रीटलैंप के नीचे बैठकर अध्ययन किया करते थे।

समय आने पर वसुदेव का विवाह एक धनी, संभ्रांत कुल, जो स्वयं को विजयनगर साम्राज्य के विख्यात शासक कृष्णदेव राय का वंशज मानते हैं, की बेटी सुशीला से कर दिया गया। सुशीला विनम्र और मृदुभाषी महिला थी, जिसे घर-गृहस्थी और परिवार की देखभाल करना पसंद था। किंतु वह उतनी सरल भी नहीं थी। उसके सभी बच्चों—खासकर आदतन शरारती जग्गी—को यह मालूम था कि समय आने पर वह कठोरता अपना सकती है।

जग्गी के जन्म के समय नाल (नाभि नाड़ी) उसके कंधे पर लिपटी हुई थी, जिसे पारंपरिक अंधविश्वास के अनुरूप परिवार के लिए अशुभकारी जाता है। वह कहते हैं, ''इसके प्रति ऐसी मान्यता थी कि इससे मामा का जीवन जोखिम में आ जाता है।'' इस खतरे को दूर करने की विविध सावधानियों में एक थी—बच्चे को पाँच साल की आयु तक नाई से दूर रखना। ''इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे बाल बड़े व घुँघराले हो गए, जिनकी दो चोटियाँ बाँध दी जाती थीं।'' वह कहते हैं, ''प्रतिदिन मैं स्कूल में किसी-न-किसी बच्चे को मेरे बालों को लेकर टिप्पणी करने पर पीट देता था।''

डॉक्टर वसुदेव भारतीय रेलवे में नेत्ररोग विशेषज्ञ थे, जिसकी वजह से बार-बार उनका स्थानांतरण होता रहता था। परिणामस्वरूप जग्गी को अनेक बार स्कूल बदलने पड़े। 1969 में मैसूर लौटने से पूर्व परिवार शिमोगा, चिक्का बालपुर और गुटकाल के बीच घूमता रहा।

सजीव कल्पना, अत्यधिक उत्सुकता, ऊँचे ऊर्जा स्रोत एवं उच्चाधिकारियों की खुशी-खुशी उपेक्षा जैसे गुणों से लब्ध जग्गी ऐसा बच्चा था, जिसे देखकर वयस्क उससे प्रभावित रहते। वह कहते हैं, ''मेरे लिए कक्षा में बैठे रहना असंभव था क्योंकि जब शिक्षक बोल रहे होते तो मैं जान जाता कि वे कुछ ऐसी बात कर रहे हैं, जिसका मेरे जीवन से कोई सरोकार नहीं। जो वे कर रहे थे वह उनका पेशा था, इसलिए मैं सुनना नहीं चाहता था। मैं जानता था कि वे जो कुछ भी कह रहे थे, मैं पुस्तक में पढ़कर बड़ी आसानी से समझ सकता था।''

यह बात साफ थी कि कुछ स्कूलों के बदले जाने की स्थिति आंशिक रूप में ही सही, इस कारण भी बनी कि वह नितांत अड़ियल था—जिसे दबाया जाना संभव नहीं, गैर जिम्मेदार, उच्छृंखल। वह कब, क्या कर बैठे, कोई नहीं जानता था। लगता था कि उसे किसी का डर नहीं था। वह रोंगटे खड़े कर देनेवाले कारनामे करने पर उतारू रहता, वह भी खुद की सुरक्षा की परवाह किए बगैर। उसके माता-पिता उससे परेशान होकर पूछा करते, ''क्या तुम्हें किसी से डर नहीं लगता?'' उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता।

जग्गी अल्पभाषी स्वभाव का था। इससे यह भाँप पाना मुश्किल हो जाता था कि अगली कौन सी शरारत उसकी योजना में है और जवाब अपने-आप में ही स्पष्ट था। यदि कोई उस पर कुछ अंकुश रख सकता तो कम-से-कम वह डर तो नहीं था।

कक्षा में ब्लैकबोर्ड पर कुछ शरारती बात लिख देने के कारण शिक्षक ने उन्हें कक्षा से निकल जाने को कहा। इस आदेश को मानने से इनकार करने पर भड़ककर उनके मुँह से निकला, ''या तो तुम देवता हो या शैतान।'' छात्र का पश्चातापहीन हावभाव देखकर शिक्षक ने क्रोध में लाल-पीला होते हुए कहा, ''और मैं जानता हूँ कि तुम शैतान ही हो।''

बालक जग्गी के दुर्व्यव्यवहार के असंख्य किस्से हैं। उसने स्कूल से भागने का मजा चखा था। उसे पेड़ की ऊपर की शाखाओं पर चढ़कर दिन बिताना गणित के पन्नों में खोए रहने की अपेक्षा अधिक समझदारी का काम लगता था। उसका कहना था कि शिक्षक को भी यह मालूम नहीं होता था कि वह क्या बोल रहा था।

वे ऑटो पायलट के डिक्टाफोन मात्र हैं। उनकी भिनभिनाहट तुम्हें परीक्षा पास करा सकती है या अनिद्रा से छुटकारा दिलाने की गारंटी दे सकती है, लेकिन और कुछ नहीं। उम्र के प्रारंभिक दौर में ही, जग्गी ने अपनी एक ऐसी आदत का साक्ष्य प्रस्तुत किया जो आगे बहुत समय तक बनी रहनेवाली थी। मूर्खों को खुशी-खुशी बर्दाश्त न करना। उसने कभी भी गंभीरता से परीक्षा नहीं दी बल्कि शिक्षकों की गंभीर भविष्यवाणी के बावजूद हमेशा मात्र उत्तीर्ण हो जाया करता था। अकाल परिपक्व आतंककारी होने की प्रसिद्धि उपयोगी थी। जब हर कोई आपको न सुधरने लायक समझकर छोड़ दे तो इसका तात्पर्य कम से कम यह है कि आपको अपने स्वयं के तौर तरीके पर छोड़ दिया गया है।

जब वह पेड़ पर चढ़कर बैठा होता तो उसे लंच बॉक्स व पानी की बोतल की ही बतौर साथी जरूरत पड़ती। वह दिन का अधिकतर समय हलकी बयार की लोरी सुनने, दिवास्वप्न में लीन रहकर गुजारता। बाद में उन्होंने इसे उनके ध्यान की अवस्था के पहले अनुभव के रूप में बताया। बालक के पास घड़ी नहीं थी। उसे बीतते समय का आभास नहीं रहता

था। जब वह दूसरे छात्रों को कक्षा से बाहर आते देखता तो वह समझ जाता कि स्कूल की छुट्टी हो गई। तब वह उतरता और साइकिल चलाते घर चला जाता। ''मैं पेड़ की सबसे ऊँची शाखा पर चढ़ जाया करता और वहाँ बैठा रहता। वह डोलती रहती। कुछ समय के बाद इसी स्थिति में अपने भीतर अलग तरह के अनुभव में चला जाता, एक मूर्च्छा की अवस्था, जहाँ मुझे समय का होश ही नहीं रहा करता। मैं सुबह नौ बजे से शाम साढ़े चार बजे छुट्टी के समय तक वहीं पेड़ पर बैठा रहता। बहुत बाद में जब मैंने ध्यान करना शुरू किया तो मैंने महसूस किया कि अनजाने में मैं ध्यानावस्था में ही रहता था। निस्संदेह मैंने पहले कभी इस शब्द को नहीं सुना था। पेड़ की चोटी पर बैठे रहने से जो आभास मुझे हुआ करता, वही मुझे अच्छा लगता था।''

किंतु स्कूल से भागना, वृक्ष की चोटियों तक पहुँचने तक ही सीमित नहीं था। जग्गी चुपके से पिकनिक के लिए सामान (जिसमें ज्यादातर उबले अंडे और रोटियाँ होती थी।) पैक करना भी पसंद करता था। वह अपने माता-पिता के लिए एक लिखित संदेश छोड़ देता और पूरे दिन के लिए नदारद। इस साहसिक अभियान में वह क्या करता था? जंगल में घूमता-फिरता, साँप, मछली पकड़ता और पेड़ों पर चढ़ जाता। उसे बाहर की जिंदगी पसंद थी और प्रकृति के नियम उसे घर या स्कूल की बनावटी जिंदगी से ज्यादा भाते थे। जब उसका भोजन समाप्त हो जाता तो वह घर लौट आता। उसका अनुमान था कि उसके माता-पिता को परेशान होने की आवश्यकता नहीं थी। वह अपने जाने की जानकारी हमेशा कागज पर लिखकर छोड़ जाता था (यद्यपि गंतव्य नहीं) और अंततः वह हमेशा लौट आता। खूब खाने की आदत के कारण, उसके भूखे रहने का प्रश्न ही न उठता। सुशीला की रसोई के आकर्षण से एक बात तय थी कि उसकी आवारागर्दी हमेशा नियंत्रण में रहती।

फिर भी स्कूल के कुछ यादगार क्षण थे। जग्गी को कक्षा एवं स्कूल की विभिन्न टीमों में लिए जाने की मजबूरी थी; हॉकी, कबड्डी, फुटबॉल, वालीबॉल, बॉक्सिंग, क्रिकेट एवं बैडमिंटन। जब कभी वह कक्षा में आने की दया करता तो उसे भूगोल के अध्याय काफी रोचक लगते थे। इसमें दी गईं अन्य देशों, जलवायु, संस्कृति की झलक पाकर वह आनंदित होता। वह स्कूल वाचनालय में नेशनल जिओग्राफिक के अध्ययन का उत्सुक पाठक था। उसे इसके खड़कते पृष्ठों की महक एवं इसके चिकने पृष्ठों पर दर्शाई गई सुदूर दुनिया बहुत भाती थी। उसे अपनी स्वयं की प्रति प्राप्त करने की इच्छा रहती थी, हालाँकि ऐसा तब तक संभव नहीं हो सका जब तक कि वह बिल अदा करने में सक्षम नहीं हो सके। वह हँसते हुए कहते हैं, ''इसकी एक प्रति प्राप्त करने में मुझे 25 साल लग गए। आज भी मैं नेशनल जिओग्राफिक की अपनी प्रति लेता हूँ।''

भूगोल के प्रति उनका लगाव, अपने आस-पास की भौतिक विशेषताओं को जानने की गहरी उत्सुकता से जुड़ा था। उनकी अवलोकन क्षमता बड़ी पैनी थी। ''दुनिया की सरंचना, भू-भाग और लोगों का जनजीवन मुझे काफी रोचक लगता था। मैं गाँवों की पगडंडियों पर साइकिल पर निकल पड़ता और प्रतिदिन कम-से-कम तीस-से-पैंतीस किलोमीटर साइकिल सवारी करता। घर लौटने तक मैं कीचड़, धूल से लथपथ हो जाता। घर में अकेले बैठकर, जो भी भू-भाग मैंने देखे थे, उन्हें पुनः पेपर पर उतारता। हर चट्टान, चट्टान शैल, वृक्ष। भिन्न-भिन्न ऋतुएँ, जुताई करने पर जमीन में परिवर्तन। फसलों के आने का समय मुझे बड़ा लुभावना लगता है। इसी कारण मैंने थॉमस हार्डी को पढ़ना शुरू किया, क्योंकि वह इंग्लिस्तानी भू-भाग का वर्णन कई पृष्ठों में करता है।

''मैं भी मन में वही कर रहा था। मन में भू-भाग घूम रहे थे। आज भी ये मेरे मनोमस्तिष्क में वीडियो की तरह अंकित हैं। यदि मैं चाहूँ तो मैं सभी कुछ पुनः बना सकता हूँ— वह सब जो उन वर्षों के दौरान मैंने देखा। मेरे उस जीवन के अंतिम तीन या चार साल उतने स्पष्ट नहीं हैं। लेकिन उसके पहले वह हर स्थान जहाँ मैं गया—खासकर भू-भाग, ढलान और प्राकृतिक रूपरेखा अभी भी मेरे दिमाग में ताजे हैं।''

उनकी अध्ययन रुचि सर्वहारी थी। एक मध्यमवर्गीय भारतीय बच्चे की तरह उन्होंने भी अपने हिस्से की 'इनिड ब्लाइटन' पढ़ी किंतु यह उन्हें बहुत रोमांचकारी नहीं लगी। उन्होंने रूसी साहित्य को खूब पढ़ा जो कि 1970 के दशक

के भारत में कौड़ियों के दाम उपलब्ध था। 12 वर्ष की उम्र के पश्चात् उत्तेजनात्मक सस्पेंस थ्रिलर की भूख रही। एलिस्टेयर मैकलीन, लुईस एल एयूर व फ्रेडरिक फॉरसाइड से लेकर लीयन यूरिस, विल्बर स्मिथ और जेम्स हेडली चेस तक। वह और उनके भाई कॉमिक्स का आनंद भी उठाते थे। फैंटम व टार्जन से आर्चि और मेनड्रेक तक। किंतु एस्टेरिक्स उनकी पसंदीदा थी, उनके भाई रवींद्र कहते हैं, ''जो मुझे कभी भी अच्छी नहीं लगी।''

दोनों भाइयों में मात्र एक साल का ही फर्क था, इसलिए वे प्राय: एक-दूसरे के कपड़े बदल-बदलकर पहनते थे। रवींद्र एक घटना का स्मरण करते हुए कहते हैं, ''एक बार मुझे याद है, एक चोर ने रात के समय, खिड़की से हमारी सभी कमीजें चुरा लीं। जब हम जागे तो हम बिना कमीज के रहने को मजबूर हो गए। क्योंकि हमारी अपनी कमीजें रही ही नहीं। अंतत: हमने पड़ोसियों से कमीजें उधार माँगीं और थाने पहुँचे।'' हालाँकि चोर कभी पकड़ा ही नहीं गया। दोनों भाइयों को अपने कपड़ों की आलमारी पुन: भरनी पड़ी।

शनिवार की शाम को फिल्में देखने जाना वसुदेव परिवार का साप्ताहिक समारोह हुआ करता था। माता-पिता तो हिंदी फिल्में देखा करते थे, किंतु बच्चों को अंग्रेजी फिल्में पसंद थीं। 'बेनहर', 'रोमन हॉलीडे', 'मैकेन्नाज गोल्ड' एवं 'कासाब्लांका' जग्गी की विशेष पसंदीदा फिल्में थीं। सात साल की उम्र में 'साइको' को देखने आना उन्हें अभी भी याद है। उसकी बहनें तो डरकर थिएटर छोड़कर भाग गईं, पर सात वर्षीय यह जिद्दी बालक फिल्म के खतरनाक अंत तक अपनी सीट पर चिपककर बैठा रहा। वह कहते हैं, ''मेरे पास टिकट थी तो मैं भला क्यों थिएटर छोड़कर जाता, मेरी बहनें बाहर इंतजार करती रहीं।''

मैसूर सिटी में अंग्रेजी फिल्मों के दो थिएटर थे और कुछ वर्षों तक जग्गी सप्ताह में दो फिल्में देखा करता। छुट्टियों में अपने दादा-दादी के घर वह और उसके चचेरे भाई-बहन कभी-कभी तेलुगु फिल्में देखने जाया करते। ''सिनेमाघर पूरी तरह हमारे अपने थे। हम जब चाहे अंदर-बाहर आ-जा सकते थे। टिकटों की जरूरत नहीं थी। उस समय हमने एन.टी. रामाराव की बहुत-सी फिल्में देखीं।''

जग्गी के सिनेमा के अनुभवों का उसकी जीवन गाथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ''फिल्में जिस तरह से बनाई जाती थीं मेरी उसी में ज्यादा रुचि थी। मैंने बहुत पहले ही महसूस कर लिया था कि दृश्य तो अभिनय मात्र हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी सराहना कर सकता था। फिल्में देखते वक्त किसी समय आँसू भी आ जाते थे, किंतु किसी दु:खभरी कहानी के लिए नहीं। यदि वास्तव में कुछ अच्छा होता—प्रेम के महान् क्षण या खुशी— तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते। अब भी मैं ऐसा कर सकता हूँ और करता हूँ। लेकिन यदि मेरी इच्छा होती तो मैं ढंग से संपूर्ण फिल्म समीक्षात्मक दृष्टि से देख सकता था। मैं दोनों तरीकों से फिल्मों का लुत्फ उठाने में सक्षम था।''

एक कक्षा सहपाठी था जो बाद के वर्षों में उनका पक्का मित्र रहा। उसका नाम सोमन्ना था, वह कुर्ग से था। ''हम दोनों में पढ़ने की आदतें समान थीं। दोनों संयोगवश स्कूल की हॉकी टीम में भी थे। सोमन्ना 'सेंटर फारवर्ड' और मैं 'लेफ्ट आउट' खेलता था।'' उनकी एक अन्य समीपता किसी झंझट में पड़ जाने और एक-दूसरे को बचा लेने में थी। एक बार एक सहपाठी को शिक्षक को दोबारा 'स्लीपिंग लेडी' (कक्षा के छात्र सामाजिक विज्ञान के ऊँघने की आदतवाले शिक्षक के लिए यह गुप्त नाम प्रयोग करते थे।) कहने पर शिक्षक ने पास बुलाया। गुस्से में शिक्षक ने कक्षा से उसके लिए उचित दंड पूछा। ''उसे माफ कर दो'', जग्गी ने जोर से कहा। इस पर जग्गी को तुरंत खींचकर हेडमास्टर तक ले जाया गया। शिक्षक ने जग्गी को कुछ धूर्त लड़कों के समूह का 'रिंग लीडर' बताया और प्रिंसिपल ने 15 दिनों के लिए कक्षा से निलंबित कर दिया।

कक्षा से निलंबित होना दु:ख की बात कभी नहीं रही। गाँव का और सैर-सपाटे का खुशहाली भरा पखवाड़ा था। ''स्कूल के सबसे अच्छे छात्र को अतिरिक्त अवकाश मिलता ही है।'' हँसते हुए वह कहते हैं, ''और मैंने कभी भी शिकायत नहीं की। ये अवकाश कभी-कभार वाले नहीं थे। कक्षा में सीलिंग पंखे की किसी एक ब्लेड पर मरे साँप या मेढक को रख देना, ऐसा कृत्य कदापि नहीं होता था जिससे शिक्षकों को खुशी होती। न ही शिक्षकों को यह बताना ही

उचित होता कि परीक्षा दो साल में दो बार आती है, किंतु आम की ऋतु केवल एक बार।'' उनकी बात सचमुच तर्कसंगत थी—आम चुनना पूरी तरह मौसमी क्रियाकलाप था जबकि परीक्षा उसी नीरसता के साथ पुन: आ खड़ी होती —''लेकिन शिक्षक अपने नीरस तर्क के सहारे रहना ही पसंद करते से लगते थे।''

हेडमास्टर जग्गी के माता-पिता को इन अवकाशों की सूचना पत्र द्वारा भेजा करते थे। यह मामला जरा पेचीदा था। लेकिन स्थानीय पोस्टमास्टर के पुत्र सोमन्ना जैसा मित्र उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। पत्र को वसुदेव परिवार में पहुँचने से पहले ही पोस्ट ऑफिस से ही रफा-दफा कर दिया जाता।

वह बताते हैं, ''स्कूल के चपरासी से मित्रवत व्यवहार रखकर हम यह पता कर लेते थे कि पत्र कब प्रेषित किया जानेवाला है। जैसे ही हमें मालूम पड़ जाता, मैं रात को सोमन्ना के घर पहुँचता, गुलमोहर के पेड़ से चढ़कर उसके सोने के कमरे में पहुँच जाता। सोमन्ना का भाई मुझे पसंद नहीं करता था, क्योंकि वह हमें चोर समझता था। इसलिए मुझे उसके सो जाने तक इंतजार करना पड़ता, और तब चुपके से मैं बेडरूम में पहुँचता। उसके बाद हम पत्रों को छाँटते-बीनते, रात बिताते और पोस्ट मास्टर की मदद करते। कुछ अवसरों पर जब ऐसे पत्र वस्तुत: जग्गी के पिता के हाथ लग जाते तो परेशानी में हाथ ऊपर उठाते वह कहते, ''वे तुम्हें धक्के मारकर निकाल दें।''

चूँकि शिक्षक उन्हें नापसंद करते थे, फिर भी कम-से-कम एक मौके पर जग्गी खुशी से आश्चर्य चकित रह गए। उन्हें नौंवी कक्षा में प्रवेश करते हुए एक शिक्षिका की याद है। वह अंग्रेजी की नई शिक्षिका थी। वह युवा होने के साथ-साथ अपने नए कार्य (शिक्षण) के प्रति काफी उत्साहित थी। वह कहते हैं, ''मुझे उसका कक्षा में घूमना याद है। उनका कद ऊँचा था। वह कल्फ की हुई सफेद साड़ी पहने हुए थी। वह आकर मेरी मेज के पास खड़ी हो गई। जब वह कहीं और देख रही थी, तभी मैंने अपने फाउंटेन पेन से उनकी साड़ी पर स्याही छिड़क दी। सोख्ता कागज की तरह स्याही साड़ी के कपड़े ने सोख ली। उस दिन भोजन अवकाश पर, मुझे उस शिक्षिका के ऑफिस में बुलाया गया। मेरे प्रवेश करने पर, उन्होंने मेरा पेन माँगा। मैंने उन्हें दे दिया। उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने एक दवात निकाली और पेन में स्याही भरकर मुझे वापस कर दिया। मैंने धन्यवाद कहा और चला आया। यह बड़ा जोरदार जवाब था, जिसे मैं कभी नहीं भूला। उसके बाद वह मेरी पसंदीदा की शिक्षिका बन गई। यह घटना हम दोनों के बीच एक बड़ा भाव बंधन सिद्ध हुई। बहुत बाद में वह स्कूल की प्रिंसिपल बन गई।''

हाल ही में मैसूर में एक सत्संग के बाद उनकी एक पुरानी अंग्रेजी शिक्षका से मुलाकात हुई। अपने पूर्व छात्र से हुई मुलाकात से रोमांचित होकर उसने उन्हें (सद्गुरु) गले से लगा लिया और बताया कि वह अपने इस शिष्य की राबर्ट फ्रॉस्ट के प्रति नापसंदी को नहीं भूली थीं। शिक्षिका ने उन्हें याद दिलाया, ''तुम्हें यह पंक्ति बिलकुल पसंद नहीं थी, 'वूड्स आर लवली डार्क ऐंड डीप' तुम कहा करते, 'लकड़ी ही क्यों? पेड़ में लकड़ी के अलावा और भी बहुत कुछ है।''' हँसते हुए सद्गुरु अब यह कहते हैं, ''यह सच है। पेड़ को देखकर मैंने हमेशा यही सोचा है कि वह कुछ फूहड़ सा लगता है। बिलकुल उसी तरह जैसे जानवर को देखकर मात्र उसके मांस के बारे में सोचना। या औरत को देखकर मात्र कामुकतापूर्ण विचार लाना।''

पहियों के प्रति आकर्षण, जग्गी में बहुत पहले से था। रवींद्र को याद है कि कैसे दोनों (रवींद्र और जग्गी) को 'रॉबिन हुड' साइकिल, जो उनके पिता को इनाम में मिली थी, की चाहत थी। वह बताते हैं, ''उसके बाद वेस्पा पीजो स्कूटर आया जिससे हर कोई हमसे जलता था। हम बारी-बारी से स्कूटर पर सवारी किया करते थे। मेरे पिता इसमें ताला लगाकर चाबी छुपा दिया करते थे। वह स्पीडोमीटर पर दर्शाई हुई किलोमीटर दूरी को लिख लिया करते थे। किंतु मैंने उनसे छुपाकर एक डुप्लीकेट चाबी बनवा रखी थी। और जब वह गुसलखाने में होते या सो रहे होते, तब मैं इस पर सवारी किया करता। हम स्पीडोमीटर के तार को अलग करके सवारी किया करते थे। इस तरह उन्हें इसके चलाए जाने की जानकारी नहीं हो पाती थी। जब उन्हें इस चोरी-छिपे स्कूटर चलाने की बात पता चली तो वह यदा-कदा इसके इंजन को छूकर देखते कि कहीं यह हमारे चलाने से गरम तो नहीं है। लेकिन सावधानी बरतने के लिए उनके आने से पूर्व हम

इस पर ठंडा पानी उड़ेल देते थे। इसमें हमें बहुत मजा आता था।''

योग ने जग्गी के जीवन में चुपके से प्रवेश किया। गरमियों की छुट्टियों की बात है। तब वह तेरह वर्ष का था। वह करीब उन 35 पोते-पोतियों में एक थे, जो उनके दादा-दादी के घर छुट्टियाँ मनाने के लिए एकत्र हुए थे। घर के पिछवाड़े में एक कुआँ था, जिसकी गहराई 150 फुट थी। यह विशेषकर लड़कों के आकर्षण का केंद्र था। लड़कियाँ तो लुका-छिपी का खेल खेलती थीं किंतु लड़के कुएँ में कूदकर इसकी खड़ी-सीधी दीवार पर लगे फुट होल्ड (पैर रखने का आश्रय) का प्रयोग करते हुए हाँफते हुए बाहर आने का खेल खेलते थे। यही उनका समय बिताने का पसंदीदा माध्यम था। ऊपर आने पर फिर से कूदकर उसी प्रक्रिया को दुहराने का विचार बन जाता। वह कहते हैं, ''सामान्यत: हम गरमियों के समय ही वहाँ रहते थे इसलिए कुएँ का जलस्तर जमीन स्तर से लगभग 60-70 फुट नीचे रहा करता था। कुएँ में कूदना और चढ़कर ऊपर आना चुनौती भरा कारनामा था। यदि आप सही तरीके से नहीं कूदे तो आपका सिर कुएँ से टकराकर चकनाचूर हो सकता था और चढ़ते समय न तो कोई सीढ़ी थी, न नसेनी। कुछ भी नहीं। आपको दीवार पर लगी चट्टानों के सहारे ऊपर आना होता। आपके ऊपर आने तक तो आपकी उँगलियों के नाखूनों से उन पर दबाव पड़ने से खून निकलने लगता। कुछ ही लड़के यह कारनामा कर पाते थे, उनमें मैं भी एक था और बहुत अच्छी तरह मैं यह कर दिखाता।

''एक दिन लगभग 70 साल की उम्र का एक वृद्‍ध वहाँ पहुँचा। वह सीधा-सादा व्यक्ति लगता था। लड़कों ने उसकी उपस्थिति को नजर अंदाज कर दिया। वे उस वृद्‍ध व्यक्ति की ओर से बिलकुल बेखबर अपने काम में लगे थे। किंतु जब वह वृद्‍ध चुपचाप आसानी से कुएँ में कूदा और उनमें सबसे पहले चढ़कर बाहर आ गया तो हम सभी भौचक्के रह गए। मेरे मन में यह प्रश्न उभरा, 'कैसे?' उस आदमी ने उत्तर दिया, 'आओ, और योग सीखो।'

''ज्यादा सोचने की बात ही नहीं थी। शारीरिक तंदुरुस्ती और चंचलता मेरी सबसे बड़ी प्राथमिकता थी। यदि योग से इस स्तर की शक्ति और पुष्टता मिलती है तो मैं इसके लिए इच्छुक छात्र था। इस तरह मैंने मल्लादिहाली स्वामी (यह श्री राघवेंद्र राव का लोकप्रिय नाम था जो पर्वतारोहण में कुशल थे) से योग सीखने की शुरुआत की।

''मैं पिल्ले की तरह इस आदमी के पीछे-पीछे घूमता। मैं यह सब आपको इसलिए बता रहा हूँ कि आप जान सकें—भले ही आप गलत कारण से शुरू करें, किंतु फिर भी योग जीवन में कारगर होता है।''

वह कुछ साधारण योगासन सीखकर प्रतिदिन अभ्यास करते थे। योग में उनकी नियमितता से वह स्वयं आश्चर्यचकित थे क्योंकि अनुशासन उनके गुणों में कभी भी शामिल नहीं था। फिर भी योगाभ्यास वर्षों अनवरत जारी रहा। ''जब मैं प्रतिदिन सुबह जागता, योग साधारण तौर पर हो ही जाता, चाहे मैं जहाँ भी, जिस भी स्थिति में होता। अगले बारह या तेरह वर्ष बिला-नागा यह जारी रहा। मुझे साधारण योग सिखाया गया था। इससे बाद मुझे अपेक्षाकृत बहुत अधिक गहराई का अनुभव हुआ। उस अनुभव से पहले मुझे यह पता ही नहीं था कि मैं आध्यात्मिक प्रक्रिया में रत था। मुझे केवल इतना भान था कि इस योग से निश्चय ही मैं शारीरिक और मानसिक रूप से कई लोगों से अलग हो गया हूँ। केवल इतना ही मैंने सोचा।''

लंबे अंतराल के बाद उन्होंने जाना कि उनके गुरु वस्तुत: योग अभ्यास के महारथी थे। मल्लादिहाली स्वामी की उपलब्धियों के वर्णन से तो शायद कई पृष्ठ भर जाएँगे। यद्यपि वह मल्लादिहाली गाँव (कर्नाटक का चित्रदुर्गा जिला) से और कहीं नहीं गए, किंतु वह योग और आयुर्वेद के महान् शिक्षक और चिकित्सक थे एवं अपने जीवनकाल में यह हुनर उन्होंने हजारों छात्रों को सिखाया। वह एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय, वर्ल्ड योगा ट्रस्ट एवं गैर-लाभ आधार पर कई संस्थाएँ चलाते थे। उन्होंने बहुत से राज्यों व केंद्र सरकारों के पुरस्कारों को ग्रहण करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि उनका उद्‍देश्य पुरस्कार एकत्र करने की अपेक्षा जरूरतमंद व पिछड़े कमजोर लोगों के लिए वित्त जुटाना है।

वह अपनी यौगिक क्षमताओं की कमी चर्चा नहीं करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि योग प्रदर्शन के लिए या प्रतियोगी खेल में परिवर्तित करने के लिए कतई नहीं है। लेकिन जग्गी ने यह जानकारी हासिल की कि उनके अद्‍भुत शिक्षक एक

दिन में चार हजार आठ सूर्य नमस्कार करते थे। वह शरीर-सौष्ठव एवं परंपरागत मार्शल आर्ट में कुशल थे। कई वर्ष पश्चात्, आठ साल जिम्नेजियम में बिता देने के बाद भी जग्गी अपने गुरु को कुश्ती में पराजित नहीं कर पाते थे।

''वह एक महान् पहलवान थे। उस समय मैं इस कला में प्रवीण एवं अत्यधिक फुर्तीला था। और भी लड़के थे जो मुझसे भी ज्यादा ताकतवर थे। यदि हम अखाड़े में उनके साथ उतरते तो वह हमेशा अकेले और हम तीन हुआ करते थे। लेकिन हम उनके सामने एक मिनट भी नहीं ठहरते थे। तिरासी साल की वृद्धावस्था में भी वह मिनट भर में हम तीनों को पछाड़ देते थे।''

एक कहानी वह हमेशा सुनाया करते थे कि किसी तरह एक बार उनके गुरु अपने कुछ मित्रों के साथ एक स्टेशन पर इंतजार कर रहे थे। रविवार के दिन शाम के समय स्वामी को अपने आश्रम लौटने की जल्दी थी, जहाँ अगली सुबह उन्हें कई मरीजों की जाँच करनी थी। कुछ देर के बाद, वे यह खबर पाकर हताश हो गए कि वहाँ रेलवे की हड़ताल चल रही थी। इंतजार करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। स्वामी ने इस बेचारगी से दो-दो हाथ करने का फैसला लिया। उनके मित्रों ने देखा कि वह रेलवे पटरी पर कूदे और घर की ओर दौड़ पड़े।

उन्होंने रात भर में 70 कि.मी. की दूरी दौड़कर तय की और पौ फटते ही वह अपने क्लिनिक में अपने प्रथम मरीज की जाँच करने के लिए हाजिर थे। आश्रम में उनकी रात्रिकालीन यात्रा की जानकारी किसी को भी नहीं थी। काफी देर के बाद जब उनके दो साथी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने जो कुछ हुआ था, आश्रम के लोगों को उसकी जानकारी दी।

सद्गुरु कहते हैं, ''वह तकरीबन महामानव ही थे। आप विश्वास नहीं कर सकेंगे कि कोई इंसान ऐसा हो सकता है। जब वह अपनी आयु के नौंवे दशक में थे हम उनसे मिलने जाते और उन्हें छेड़ दिया करते थे। हम मजाक करते और कहते, 'तो आप प्रस्थान कब करेंगे वृद्धवर! लगता तो ऐसा है कि आप से पहले हम ही विदा ले लेंगे।' वह जवाब दिया करते, 'मेरे सामने अगले चालीस वर्षों की कार्ययोजना है। मैं उन्हें पूरा करके चला जाऊँगा।' जिस ढंग से वह चल रहे थे, उससे तो यही लगता था कि वह आसानी से अपना वादा पूरा करेंगे।''

सद्गुरु कहते हैं कि मल्लादिहाली स्वामी अपने जीवन के अंतिम दिनों तक योग सिखाते रहे। एक सौ छह वर्ष की आयु में मैसूर शहर में व्याख्यान देते हुए वे गिर पड़े। उन्हें अस्पताल में भरती किया गया जहाँ पता चला कि उन्हें मामूली हृदयाघात हुआ था। रात में जब उन्हें होश आया तो उन्होंने स्वयं को आइ.सी.यू. में पाया, जहाँ उनके शरीर में कई सुइयाँ और ट्यूब लगे हुए थे। अधीर गुरु ने उन्हें स्वयं खींच-खींचकर हटाया और पहली मंजिल से कूदकर घर लौट गए। अपने आश्रम में ही तीन महीने के बाद शांतिपूर्वक उनकी मृत्यु हो गई। इस तरह अपने जीवन काल के अंतिम समय तक उन्होंने सक्रिय जीवन जिया।

काफी समय के पश्चात् सद्गुरु ने बताया कि मल्लादिहाली स्वामी कोई और नहीं बल्कि उनके पहले जीवन के गुरु श्री पलानी स्वामी के एक शिष्य थे। जब पहली बार मैंने यह सुना तो यह उलझन मुझे बड़ी मनोहारी लगी। मैंने उनसे पूछा कि क्या इसका तात्पर्य यह है कि इस जीवनकाल में आपके गुरु ने ही आपको योग शिक्षक से मिलवाया। सद्गुरु ने असमंजस सा जाहिर किया। वह बहके से लगे जैसाकि प्राय: अपने गुरु की बात करने पर उनका हावभाव प्रकट होता है। उन्होंने धीरे से कहा, ''गुरु की करुणा और गुरु की कार्यशैली कई तरह से प्रकट होती है। गुरु तो दो लोगों के बीच कोई भेद भी नहीं जानता। उसकी जो भी धुन होती है, वह संसार में प्रकट होती है। शायद मैं भी उनकी योजना का एक छोटा सा भाग था। इसके प्रति मेरा ऐसा ही नजरिया है।''

इस बात के बहुत कम साक्ष्य हैं कि निरंतर अत्यधिक ऊर्जाशील होने की दशा में जग्गी किसी अन्य स्कूली बच्चे से भिन्न था। वह शायद अधिकतर लोगों की अपेक्षा जिद्दी किंतु मूलरूप से अत्यधिक शैतान बच्चा था। कुछ अन्य संकेत भी थे, जो उसके निकटवर्ती लोगों से छुपे नहीं रह सके। जब वह मात्र कुछ ही दिनों या महीनों के थे, उस दौरान घर में हुई घटनाएँ और बातचीत स्मरण करने की उनकी क्षमता से उनकी माँ हक्की-बक्की रह जाती थी। उनके द्वारा याद की जानेवाली बातें इतनी सामान्य हुआ करतीं—जैसे उनकी माँ की साड़ी का रंग या किसी खास मौके पर किसी ने क्या

कहा—कि लोग भौचक्के रह जाते। इसके अलावा किसी व्यक्ति को एक ही नजर में पहचान लेने की उनकी क्षमता, किसी नवागंतुक व्यक्तित्व, उसकी आम जिंदगी की बातों का मूल्यांकन करने की उनकी क्षमता।

इन निहित योग्यताओं से उन्हें अपनी उम्र से कहीं अधिक परिपक्वता हासिल हुई। ''शायद यही वह बात है कि अन्य बच्चों की तरह परिवार में कोई भी मुझे लाड़-दुलार नहीं करता था।'' वह कहते हैं, ''मेरी उपस्थिति ही ऐसी थी। अपनी इस क्षमता के कारण मैं एक सामान्य बच्चे की तरह नहीं रह पाता था। अत: इसी कारण कोई भी मुझे गोद नहीं ले सकता था, कोई भी मुझे पुचकार नहीं सकता था, कोई भी मुझे लेकर चल नहीं सकता था।'' लड़खड़ाकर चलने की अवस्था के दौरान भी उसे यह नहीं आता कि कोई उसे उठाकर यहाँ-वहाँ ले गया हो। जब वह अपने परिवार के साथ बाहर जाता, तो वह स्वयं चलना पसंद करता, जबकि उनके बड़े भाई को हमेशा माता-पिता में से कोई एक लेकर चलता था। वह हँसते हुए कहते हैं, ''मुझे पकड़ना या गले लगाना कठिन था। अभी भी वही बात है...''

एक ऐसी क्षमता, जिसके विषय में किसी को जानकारी नहीं थी, वह थी पाँच वर्ष की उम्र में लोगों को नग्नावस्था में देख पाने की क्षमता। यह दृष्टिकोण कामुकता से कोसों दूर था। सामान्य रूप से यह क्षमता उन लोगों को दो बजे तक सीमित की थी जो उसके आस-पास उपस्थित रहते थे। कुछ समय बाद वह उन्हें वायु के झकोरे के रूप में पहचानने लगे (जिसके बारे में काफी बाद में उन्हें मालूम हुआ कि इसे योग की भाषा में 'प्राणमय कोष' ऊर्जा या कार्मिक शरीर कहा जाता है। जहाँ तक उनकी बात है, विचित्र बातें उनके लिए असामान्य नहीं थीं)। वह साधारण रूप से यही मानते थे कि हर किसी को दुनिया ऐसी ही नजर आती थी। प्रौढ़ावस्था आने पर उन्हें मालूम हुआ कि रूपांतरित बोध की ये बातें क्या थीं।

वह कहते हैं, ''यह तब होता था जब मैं पाँच-छह वर्ष या उससे अधिक उम्र का था। यह मेरे लिए आम बात थी। यदि मैं घर की बैठक में बैठे हुए लोगों—मेरी माँ, पिता, भाई, बहन—की ओर देखता तो वे मुझे धुँधले से नजर आते थे। वे बिलकुल प्रेतों की तरह यहाँ-वहाँ मँडराते से नजर आया करते। मुझे हमेशा बड़ा आश्चर्य होता कि आखिर वे कर क्या रहे हैं। जब मैं इधर-उधर घूमता या बातें करता तभी वे मुझे व्यक्ति नजर आते थे। किंतु यदि मैं बैठ जाता तो वे मुझे धुएँ जैसे इधर-उधर मँडराते से नजर आते। एक बार आप उन्हें अद्र्ध-ठोस, धुर्मवत व्यक्तियों के रूप में देखते हैं तो पूरा खेल (सांसारिक) अर्थहीन हो जाता है। अचानक मेरे पिताजी आते और पूछते, 'तुम्हारी गणित की तैयारी का क्या हुआ? तुम्हारी तिमाही परीक्षा कब है?' यह सब बड़ा विचित्र लगा करता। मुझे समझ ही नहीं आता था कि वे क्या बात कर रहे होते थे। यह सबकुछ ऐसा ही होता मानो मूक (म्यूट) बटन दबाकर आप टेलीविजन देख रहे हैं। अचानक सारा नाटक बड़ा हास्यपद सा हो जाता।''

उस समय उनके शून्य भाव को गूढ़ बुद्‌धि नहीं समझा जाता था बल्कि इससे उनके परिवार के लोग खीझ उठते। वह बताते हैं, ''बात इस हद तक पहुँच गई कि मेरे पिता ने यह सोचना शुरू कर दिया कि मुझे मनोवैज्ञानिक मदद की आवश्यकता है। बहुत पहले ही मैंने महसूस कर लिया था कि मुझे कुछ मालूम नहीं था। इसी कारण आसपास की हर चीज पर मुझे बहुत ध्यान देना पड़ता था। किसी पत्ती या एक गिलास पानी को ही मैं अंतहीन रूप से देखता रहता। सारी रात मैं अँधेरे में घूरता रहता। यदि एक कंकड़ भी मुझे दिख जाता तो वह बहुत देर तक मेरे मन में घूमता रहता। ऐसा नहीं था कि मैं इसके बारे में ही सोच रहा होता। बल्कि ऐसा होता कि वह छवि लाखों बार मेरे दिमाग में छाई रहती। मुझे इसके हर कण, हर कोण की जानकारी हो जाती। यदि कोई बोलता तो मुझे महसूस होता कि वे मात्र ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे और मैं उनके अर्थ निकाल रहा था। इसलिए मैंने अर्थ निकालना छोड़ दिया और ध्वनि बड़ी हास्यापद बन गई। मुझे उनके मुँह से साँचे निकलते दिख रहे होते। यदि मैं घूरता रहता तो व्यक्ति विघटित होकर प्रेतवत हो जाया करता। तत्पश्चात् जो कुछ भी बचता वह मात्र साँचे ही हुआ करते।''

चीजों को देख लेने की उनकी क्षमता से कभी-कभी बड़े बेढंगे किंतु मजेदार क्षण उपस्थित हो जाते। जब वह कक्षा एक में थे तो उन्होंने बड़े भोलेपन से अपनी शिक्षिका से पूछा कि वह लाल रंग की अंडरवियर क्यों पहने हुए थीं। उन्हें

याद है कि वह बुरी तरह भड़क उठीं। निस्संदेह यह न्यूनोक्ति ही है।

आगे चलकर उनकी किशोरावस्था के दौरान बोध के प्रति उनके इस उच्च भाव की वजह से, एक बार जब वह अपने मित्र के कमरे में प्रवेश कर रहे थे तभी वह पूछ बैठे, ''अरे भई अंदर कौन लड़की है?'' प्रश्न बहुत स्वाभाविक था। वस्तुत: इस तथ्य के बावजूद कि कमरे में किसी के होने के कुछ स्पष्ट संकेत थे, उन्होंने किसी महिला की उपस्थिति को भाँप लिया था। वातावरण में इत्र की महक भी नहीं थी। उसने कुछ परेशानी सी महसूस करते हुए बताया कि उसकी बहन आई हुई थी जो कि तब गुसल खाने में थी।

''वह एकदम उठ खड़ा हुआ, क्योंकि मैंने उसकी बहन को भाँप लिया था'', हँसते हुए सद्गुरु ने बताया। वह आगे बताते हैं कि उनकी भाँप लेने की क्षमता से कई बार जंगल में खतरा आने से पूर्व उसे जानकर सावधान हो जाने के कारण उनके जीवन की रक्षा हुई है। ''और इससे कई तरह से मेरे जीवन के अनुभव में वृद्धि भी हुई है। मुझे दुनिया का अनुभव अपेक्षाकृत ज्यादा पूर्णता से हो जाता है, क्योंकि मैं गंधों को पहचान लेता हूँ।'' उनकी कल्पना करने की प्रारंभिक क्षमता भी विचित्र थी। जब दस साल की आयु में उनसे मिलने रिश्ते का एक भाई आया तो उन्होंने उस लड़के को अपने घर की छत पर अपनी निजी कल्पनातीत दुनिया से परिचित कराया। यह एक ऐसी दुनिया थी; जो बड़ी सूझबूझ से तैयार की गई थी। ''मैं प्राय: तीसरी मंजिल की छत पर जहाँ सीढ़ियाँ नहीं थीं, चढ़ जाया करता था, ताकि कोई मुझ तक पहुँच न सके। उस स्थान तक मात्र मेरी ही पहुँच थी। वहाँ और कोई चढ़ नहीं सकता था। मैंने एक घर बनाया, मेरी अपनी दुनिया, बड़ी सूक्ष्मता धारण किए हुए एक दूसरी दुनिया। इसे समझना लोगों के लिए बड़ा कठिन है। मान लो, मैं एक पुष्प की रचना करना चाहता हूँ, तो मैं इसकी कोशिका-दर-कोशिका आगे बढ़ता। तो आप सोच सकते हैं कि एक पुष्प की रचना करने में मानसिक तौर पर कितना समय लगता। मैं इसी तरह पाँच-छह घंटे बिना हिले-डुले बैठकर इसके एक भाग के बाद दूसरा भाग बनाता रहता। कभी-कभी मैं अपने रिश्तेदार को घुमाने ले जाया करता। और वह लड़का इतना उन्मत्त हो जाता कि वह प्रतिदिन वहाँ जाना चाहता। यदि मैं उसे नहीं ले जाता तो वह रोना शुरू कर देता!''

वस्तुत: यह दुनिया थी क्या? बिना महलों का एक जनाडु। वह कहते हैं, ''जंगली जानवरों से भरा हुआ एक वनस्थल। वहाँ बाघ और एक गैंडा था। गैंडा मेरा पसंदीदा जानवर था।''

इस आख्यान से उनके युगद्रष्टा होने की प्रारंभिक क्षमता प्रतीत होती है। विशाल एवं तुच्छ दोनों को एक समय ही सोच लेने की क्षमता। सद्गुरु कहते हैं, ''हर मनुष्य में यह क्षमता होती है। यदि हम ऐसे सपने देखना सीख लेते हैं जिसके हम प्रधान पात्र होने की मजबूरी को महसूस नहीं करते। आप जो कुछ कर रहे हैं यदि उनमें से स्वयं को हटा देने का आवश्यक स्थायित्व आप में है, जो कुछ भी आप करें यदि उसमें से स्वयं को पूरी तरह मिटा देने की क्षमता आप में है, तो अचानक आप अपने क्रियाकलाप की ऊँचाई एक अलग ही आयाम में ले जाएँगे। लेकिन सामान्यतया लोगों को यह पता ही नहीं होता कि कुछ ऐसा किस तरह से करें जो उनसे संबंधित नहीं है या कुछ जिससे स्वयं वे ही पहचान नहीं रखते और यही सीमा है। यही वह भयंकर बाध्यकारी सीमा है जो मनुष्य ने स्वयं पर लाद रखी है। वह कार्य जिसमें वह या उसका अपना कुछ नहीं है, उसे करना वह पसंद नहीं करता।''

वह छत जग्गी की निजी एवं उसकी विलक्षण योजनाओं की जगह थी। वहाँ वही पहुँच सकता था जो खेलकूद में निपुण या मेहनती हो। जो पाइप, पेड़ या खिड़की की छड़ के सहारे भी ऊपर चढ़ सके। इसलिए परिवार का कोई सदस्य वहाँ नहीं पहुँचता था। इसकी एक वजह जग्गी की एक दूसरी भयंकर सनक थी जिसके लिए छत ही जरूरी जगह थी। वह थी साँपों के प्रति उसकी धुन। इसी धुन की वजह से वसुदेव परिवार एकजुट होकर उनका विरोध करता था। पक्षी व सरीसृपों के प्रति उसका ज्ञान स्वभावगत था। चार वर्ष की उम्र से ही वह अपनी कक्षा में स्वास्थ्यकर निर्जीवता की अपेक्षा स्कूल के बाहर के गटर की गंदगी पसंद करता था। ''मेरी नौकरानी प्रतिदिन सुबह मुझे स्कूल ले जाकर छोड़ देती और फिर दोपहर को आकर मुझे ले जाया करती। मैं हमेशा उससे यह सौदा तय कर लेता कि वह स्कूल में अंदर

आने के बजाए मुझे स्कूल के गेट तक छोड़ दे। उसके वापस जाते ही, मैं बाहर आ जाता और गटर के बगल में बैठ जाता। मुझे कक्षा कभी भी अच्छी नहीं लगी।''

उसे मालूम था कि गटर में कभी भी ठहराव सा नहीं रहता। उसकी उम्र के हिसाब से तो यह अपने आप में ही विशाल घाटी से कम नहीं था—नई-नई संभावनाओं से युक्त चकाचौंध कर देनेवाली सर्पों की प्रजातियाँ इसमें थीं—पानी साँप, बगीचे में पाए जानेवाले साँप, छोटे साँप, बड़े साँप, जहरीले साँप एवं बिना जहरवाले साँप। ''मुझे कभी भी साँप से डर महसूस नहीं हुआ। मुझे नहीं मालूम, क्यों। शायद इसलिए कि मैं अन्य लोगों को झक्की सा लगता था। लेकिन जितना सहज मैं दूसरी चीजों से था उतना ही मैं सर्पों से सहज था। उनसे मुझे कभी विस्मय नहीं हुआ।''

वह अपने पिता से मिली खाली दवाई की बोतलों में मेढक व उनके बच्चे एकत्र कर लिया करता। दुर्भाग्यवश सर्प उतनी आसानी से इन बोतलों में नहीं रखे जा सकते थे। फिर भी बहुत समय तक असुविधा उसे नहीं रोक सकी। परिवार में सबसे पहले रवींद्र ने छत पर एक छोटे सरीसृप फार्म की खोज की। ''मैंने देखा कि जग्गी ने काँच के जार में साँपों को भरकर रखा है। यह मुझे बड़ा विचित्र लगा किंतु मैंने माता-पिता को इस विषय में नहीं बताया। मैं जानता था कि पिताजी पहाड़ सिर पर उठा लेंगे।''

कुछ आने के बाद जग्गी का आसपास के इलाके में साँप पकड़नेवाले के रूप में काफी नाम हो गया। इस सेवा के लिए उसे अच्छे पैसे भी दिए जाते थे। ''सामान्यत: लोगों को साँपों से उनकी तेज चाल के कारण डर लगता है। लेकिन मेरे साथ यह बात कभी नहीं रही क्योंकि मैं जान चुका था कि मनुष्य अपेक्षाकृत ज्यादा तेजी से चल सकता है। जब मैं सर्प पकड़ने जाया करता तो मैं बिना डंडे के जाता, उनके रुक जाने तक इंतजार करता। तब उन्हें पकड़ने से पहले उन्हें रुका रहने देता। यही तो सर्प पकड़नेवाले करते हैं। मैं तो गुस्से से फुफकारते कोबरा के निकट जाकर उसे सीधे पकड़ लेता था। यह कारनामा मैं कई वर्षों तक करता रहा। मैं नहीं कह सकता कि आज ऐसा करने की मुझमें गति व समन्वय है। लेकिन तब इसे मैं बड़े विश्वास के साथ किया करता था।''

वह अंतर्ज्ञान से साँपों की उपस्थिति भी भाँप लिया करते थे। ''मुझमें बहुत ही तीव्र भाव उत्पन्न हो गया था जो अभ्यास के अभाव में अब मुझसे दूर हो गया है।''

''मैं जंगल में बड़ी आसानी से साँप का पीछा कर लेता था। मैं सूँघकर उसका पता लगाता था और उसे पकड़ लेता। यदि 'चामुंडी हिल' पर किसी स्थल में मैं जाता, तो तत्क्षण मैं यह जान जाता कि किस पत्थर के नीचे साँप होगा। अब वह इंद्रिय ज्ञान मुझमें खत्म हो गया है। चूँकि मैं बहुत से लोगों एवं बहुत सी शहरी चीजों से घिरा रहता हूँ।''

यह बड़ा लाभदायी हुनर सिद्ध हुआ। बचपन से ही मैंने अपने माता-पिता से एक रुपया भी बतौर जेब खर्च नहीं लिया। छठवीं-सातवीं कक्षा में पढ़ने के दौरान भी मैं अपने खर्चभर को कमा लिया करता था। नजदीक ही एक 'सेंट्रल इंस्टीट्यूट' था जिसके विशाल परिसर में बहुत-से साँप थे। वहाँ एक नियम था कि यदि कोई वहाँ एक छोटा साँप पकड़ता तो उसे 25 रुपए का भुगतान किया जाता। बड़ा साँप—लगभग साढ़े तीन फुट लंबा—पकड़ने पर पचास रुपए दिए जाते थे। उन दिनों पचास रुपए एक बड़ी रकम कहलाती थी। इसलिए यदि शनिवार की दोपहर मैं वहाँ पहुँच जाता तो दोपहर भर में मैं तीन या चार साँप पकड़ लिया करता था, जिससे मुझे डेढ़-दो सौ रुपए मिल जाते थे। अपना जेब खर्च कमाने का मेरा यह भी एक तरीका था।''

एक दिन उन्होंने एक स्थानीय ट्यूब लाइट कारखाने में घुसे साँप को पकड़ा। इससे कारखाने के कर्मचारियों ने बड़ी राहत की साँस ली। वे यह बहुमूल्य पुरस्कार (सर्प) किसी और को न देकर या कहीं और न छोड़कर चुपके से अपने घर ले आए और उसे अपने बिस्तर के नीचे छिपा दिया। जल्द ही वह इनका घनिष्ट साथी हो गया।

कुछ समय बाद पिता ने उनके हम बिस्तर मित्र को खोज निकाला। ऐसा उन्होंने भयंकर फुफकार का कारण पता लगाने के लिए किया था। ''जब मेरे पिता ने यह विचित्र आवाज सुनी तो घुटनों के बल चलते हुए वे नीचे आए और देखा कि यह है क्या? मैंने उस साँप को एक बड़े काँच के डिब्बे में रखा हुआ था। उस ट्यूबलाइट फैक्टरी ने मुझे एक

भारी-सा लेबोरेटरी जार मुफ्त दिया था, जिसे मैं आंशिक रूप से बंद कर सकता था। इसमें मैं साँप को रख सकता था। मैं दिनभर उसे जार में रखता और शाम को जब मैं स्कूल से लौटता तो उसे बाहर कहीं ले जाता और कुछ व्यायाम कराकर (घुमा-फिराकर) वापस उसमें डाल देता। मेरे पिता ने साँप की ओर देखा और दंग रह गए। जब मैं घर लौटा तो वह गुस्से से पागल हो गए थे। बेशक वह भी डरे हुए थे। घर में हर कोई कुरसी या सोफे पर खड़ा हुआ था।''

जग्गी यह नहीं समझ पाया कि यह किस बात का हो-हल्ला था। यह सच था कि उसका साँप बारह फुट लंबा कोबरा था। कहना न होगा कि यह खूबसूरत प्राणी उसका मित्र था। उसने दु:खी होकर साँप का स्थान बदल दिया। उसे बाहर फेंक दिए जाने के परिवार के कठोर आदेश का उल्लंघन करते हुए, उसने एक बड़ा पिंजरा बनाया और उसमें रखकर उसे अपनी छत पर ले गया। यह साँप तीन साल तक उसके साथ रहा। सौभाग्यवश इस बीच परिवार का कोई सदस्य पर नहीं गया।

आगे चलकर उसे साँपों के साथ इस गहरे संबंध की जानकारी हुई। उसने महसूस किया कि यह उसके पूर्व जीवन काल की विरासत थी। लेकिन बात इतनी ही नहीं थी। वह प्राय: कहते हैं कि भारत में साँप और गाय के प्रति परंपरागत आदरभाव अंधविश्वास मात्र नहीं है। सद्गुरु का कहना है कि हर मनुष्य अपने आस्तित्विक विकासवाद की यात्रा के दौरान सर्पों और गायों का जीवन जी चुका है। ''इसका एक पहलू कुंडलिनी ऊर्जा और इसकी प्रकृति का प्रतीक है—गति एवं निस्तब्धता मापने में सर्प के साथ इसकी समानता। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि किसी अस्तित्व के विकास में सर्प एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण कदम है। जैसा कि शरीर की विकासवाद प्रक्रिया में बंदर एक आवश्यक चरण है, वैसे ही किसी जीव की विकासवाद प्रक्रिया में सर्प एक आवश्यक कदम है। यही बात गाय के मामले में भी है। इसीलिए इस संस्कृति में यह माना जाता है कि आप दोनों में से किसी की हत्या नहीं कर सकते। यदि भारत में आपको एक मृत साँप मिल जाए या आपको इसे मारना पड़े तो आप उसका उचित अंतिम संस्कार कर दें। सर्प हमेशा उचित अंतिम संस्कार प्राप्त करता है, क्योंकि अस्तित्व के मामले में यह मनुष्य के काफी निकट है। सर्प मारने को हमेशा से हत्या माना गया है।''

सरीसृपों से जग्गी की मुठभेड़ हमेशा ही इतनी सौहार्दपूर्ण नहीं रही। एक बार पहाड़ी पर जाते हुए उसने जब धीरे से चट्टान की दरार से एक कोबरा को खींचा तो एक की जगह दो लिपटे हुए सर्पों को देखकर वह दंग रह गया। इसके पहले कि वह कुछ समझ पाता, दूसरे कोबरा ने आक्रमण कर दिया। इसके जहरीले दाँत तीन बार उसके पैर में चुभ गए। अंतिम बार तो खतरनाक ढंग से, क्योंकि इस बार पैर की उँगलियों के मध्य मांसल स्थान पर दाँत चुभे थे। वह कहते हैं, ''जब जहर आप में प्रवेश करता है तो आपको अलग तरह का दर्द महसूस होता है। यह इंजेक्शन सरीखा होता है। मैं जान गया था कि यह मेरे शरीर में प्रवेश कर गया है। लेकिन कितना, यह मुझे पता नहीं था। कोबरा के काटने से संबंधित जो जानकारी मुझे थी वह यह थी कि इससे आपका खून जमने लगता है, हृदय की खून पंप करने की योग्यता कठिन होने लगती है और आमतौर पर गुदा निष्कासन इस कठिनाई की वजह से फट जाता है। इस प्रक्रिया को धीमा करने की मेरी जानकारी में जो तरकीब थी वह है काली चाय।''

वह और विलंब नहीं कर सकता था, उसने परिवार में किसी को सूचित नहीं किया। ''पहले मैंने सोचा कि मैं अपने पिता को इसकी जानकारी दे दूँ। बतौर डॉक्टर वह मुझे अस्पताल ले जा सकते थे या कुछ कर सकते थे। तभी मैंने सोचा छोड़ो। मेरी पलकें कुछ भारी और झुकी हुई थीं। मैंने सोचा मैं जरा देखूँ होता क्या है।'' जग्गी ने कुछ योगासन किए, जल्दी से खाना खाया और सो गया। बारह घंटे बाद जागा। काली चाय उनके लिए काफी कारगर सिद्ध हुई थी।

परिवार में एक ऐसा व्यक्ति था जिससे लगता था कि जग्गी ने ऐसे खतरनाक एवं मनमौजी तरीके विरासत में प्राप्त किए थे। पारिवारिक छुट्टियाँ माँ की नानीजी के घर बिताई जाती थीं। औरत के रूप में उसे शैतान माना जाता था। वह परिवार की असली विद्रोही थी। एक ऐसी महिला जो अपने समय के रीतिरिवाज को बिना आत्मग्लानि के तिरस्कृत करती थी। उनके धनवान पति के पास कई एकड़ जमीन थी किंतु मंदिर बनाने के लिए उसने हठ करके दूसरे की जमीन

चुनी। सद्गुरु कहते हैं, ''वह मानती थी कि कोई भी जमीन का मालिक नहीं हो सकता। तेलुगु में एक कहावत है कि— मात्र 3 फुट चौड़ी और 6 फुट लंबी जमीन पर ही आपका अधिकार है। जहाँ आपका अंतिम संस्कार किया जाता है या दफनाया जाता है।''

उसका व्यवहार परिवार के लिए गंभीर चिंता का विषय था किंतु वह खुश रहकर इसके प्रति तटस्थ रहा करती थी। ''वह परिवार के लिए कलंक थी। सबके लिए परेशानी का विषय'', वह कहते हैं, ''आप उसे न तो भूल सकते थे न टाल सकते थे, क्योंकि उसके चारों ओर लोग इकट्‌ठे रहते थे। यदि वह कहीं दूर चली जाती तो लोग उसे भूल सकते थे और हम यह कह सकते थे कि वह मर गई। लेकिन वह तो वहीं रहकर अपना शासन चलाती थी।''

उसके जिद्दीपन के चर्चे दूसरे क्षेत्रों में भी फैल गए। वह एक सौ तेरह साल की आयु तक जीवित रही, उसने अपने बच्चों और नाती-पोतों की मौतें देखीं। यदि उसकी मौत पहले ही हो जाती तो यह स्वयं उसके एवं उसके परिवार के लिए राहत की बात होती। किंतु अपने जीवन के प्रति अत्यधिक प्रेम के चलते उसके रवैये से छुटकारा नहीं पाया जा सका। सद्गुरु कहते हैं, ''निन्यान्वे साल की उम्र तक उसके पूरे दाँत थे, वह चबाकर खा सकती थी। और एक सौ ग्यारह वर्ष की आयु में वह गले के कैंसर से पीड़ित हो गई। इलाज के लिए उसने सख्त मना कर दिया इसलिए दो वर्ष बाद बिना किसी इलाज के उसकी मौत हो गई। बहुत-से लोग तो उसका नाम ही नहीं जानते थे। बूढ़ी होने पर वह शाइटिका से पीड़ित हो गई, जिसके कारण वह लँगड़ा कर चला करती थी। इसीलिए लोग उसे 'कुंटम्मा' अर्थात् 'लँगड़ी औरत' कहा करते थे। किसी को उसका नाम मालूम नहीं था क्योंकि एक सौ तेरह सालों के बाद आपका नाम भला कौन याद रखेगा?''

सद्गुरु के अपने विचित्र और प्रसन्न परिवार के लोगों से जुड़े संस्मरण बड़े सजीव हैं। ''मैंने अपने परदादा को देखा ही नहीं, वह बहुत पहले ही स्वर्ग सिधार गए थे। किंतु मेरे दादाजी शहर के सबसे धनाढ्य व्यक्ति थे। किसी ने उन्हें बता दिया होगा, 'यदि आप गरीबों को भोजन कराएँगे तो आप सीधे स्वर्ग जाएँगे।' इसलिए प्रतिदिन सुबह वह उपस्थिति रजिस्टर निकालते। शहर के सभी भिखारी, लगभग दो सौ— वहाँ आकर एक समय का भोजन करके संतृप्त हो सकते थे। उन्हें रजिस्टर में अपना नाम लिखवाना पड़ता था अन्यथा उन्हें भोजन नहीं दिया जाता था। प्रतिदिन सुबह मेरे दादा घर के सामने बैठकर यह सब देखा करते थे, क्योंकि वह भोजन कर चुके लोगों की संख्या की जानकारी चाहते थे। यह सबकुछ बतौर रिकॉर्ड रखा जाता था। और लोग भी उनके पास आते रहते थे क्योंकि शहर में लगभग सभी लोग उनके कर्जदार थे। वे ब्याज चुकाने या कर्ज का निबटारा करने आया करते थे। मुझे पूरा यकीन है कि यदि उनके पास पैसा नहीं होता तो लोग उसके पास नहीं आते।

''वे स्वत: उनके पास आया करते थे क्योंकि परदादा के पास पैसा और ताकत थी। यह सबकुछ सामनेवाले दरवाजे पर हुआ करता था। अपना काम निबटाने के बाद वे सामान्यत: पिछले दरवाजे की ओर चले जाते थे। वहाँ मेरी परदादी का शासन चलता था। वह अपने खास अंदाज में बैठने के चलते लोगों को कुछ घमंडी लगती थीं। हालाँकि उन्होंने कभी किसी से अक्खड़पन से बात नहीं की पर वे बैठना उसी ढंग से पसंद करती थीं।

''जहाँ सामने के दरवाजे पर जात-पाँत अपनी अहमियत रखते थे, वहीं पिछले दरवाजे पर सदस्यता के नियम बिलकुल भिन्न थे। सामने के दरवाजे पर यदि आप सही जाति के हैं तो आपको बड़े उदार हावभाव के साथ पैसा दिया जाता और यदि आप निम्न या ओछी जाति के हैं तो आपको फेंककर पैसा दिया जाता। लेकिन जो भी लोग पिछले दरवाजे पर पहुँचते थे उन्हें वह बूढ़ी महिला बिना कोई भेद-भाव किए गले लगाती।''

सद्गुरु को याद है कि परदादी की भयंकर हँसी किस तरह समूची गली में गूँजती थी। ''तत्कालीन समय में, जब औरतों का हँसना तो बहुत बड़ी बात है, बोलने की भी आजादी नहीं थी, यह किसी कलंक से कम नहीं था। और वह जीवन को इतनी गहराई से देखती थीं जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, इसलिए वह इस तरह से हँस सकती थीं। उनके आसपास मौजूद हर कोई मूर्ख सा नजर आता था।''

जग्गी के लिए उस जगह (दादा-दादी के घर) छुट्टी बिताना बड़ा रोमांचकारी होता था। वह अपनी परदादी को एक महान् कहानी सुनानेवाली के रूप में याद करते हैं। ''जब हम गरमियों की छुट्टियों में वहाँ जाते और यदि हम तीस या चालीस दिनों के लिए वहाँ रहते तो वह एक ही कहानी को इस पूरी अवधि के लिए खींच-तान दिया करतीं। हर दिन सुबह हम कहानी सुनने के लिए एकत्र हुआ करते। वह कहा करतीं, 'एक दिन एक राजकुमारी आई...' और धीरे-धीरे अपने बालों पर कंघी फेरते शुरू हो जातीं। वह एक कहानी पूरे महीने या उससे ज्यादा खिंच जाती थी।

''उनका पूजा का तरीका रीतिरिवाज के एकदम विरुद्ध था। अपने पूजाकक्ष में वह कर्मकांड के बिना मस्त होकर पूजा में लगी रहतीं जो कि परंपरागत रूप से अधार्मिक या धर्मविरोधी समझा जाता था। कभी-कभी जग्गी उनके पूजा कक्ष में उनके पास बैठ जाया करता था किंतु इस सीमा को पार करने के बदले उसे कभी भी डाँट नहीं खानी पड़ी। वह प्रायः उन्हें रोते-हँसते, नाचते-गाते, देवताओं को मित्रवत् संबोधित करते और उनकी ओर पैरों से फूल उछालते देखते रहते।

वह कहते हैं, ''मैंने उन्हें पूर्ण उन्मत्त एवं तल्लीन स्थितियों में देखा है। वह पूजा कक्ष में चली जातीं, जहाँ भारतीय परिवारों की समृद्धि के साथ-साथ देवी-देवताओं की संख्या बढ़ती जाती है। यह काफी समृद्ध परिवार था इसलिए हमारे पास दर्जनों देवी-देवता थे— चाँदी के, सोने के, हर तरह के। उनके केश काफी लंबे ठीक नितंबों के नीचे तक थे और वह अपने बालों को खुला छोड़ दिया करती थीं। वे गाती-नाचती रहतीं, उनकी आँखों से आँसू बहकर चेहरे पर लुढ़कते रहते। वे विक्षिप्त की तरह हँसते हुए पैरों के अंगूठों से फूलों को उठाकर देवी-देवताओं की ओर उछालतीं। मैं नहीं जानता था कि वह यह सब क्यों किया करती थीं लेकिन हर कोई उनके आसपास रहना पसंद करता था, क्योंकि वह जोश दिलाती थीं। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह खूब हँसती थीं।''

सद्गुरु ने परदादी का स्मरण करते हुए आगे विश्लेषण किया कि वह कितनी विचित्र महिला थीं। ''वह बहुत असह्य या अनुचित लगती थीं कि आप नहीं चाहेंगे कि उनके जैसा कोई आपके परिवार में हो। वह एक मुसीबत थीं। चूँकि वह अंतर्मुखी थीं इसलिए वह ऐसी बातें जानती थीं जिनका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था। न ही वह इन बातों को किसी को बता सकती थीं, क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति था ही नहीं जिसे वे कुछ बता पातीं। इसलिए वे हँसकर रह जातीं। सभी उन्हें निरे मूर्ख नजर आते थे क्योंकि जो वह देख सकती थीं, वे नहीं देख पाते थे।'' एक बार मैंने उनसे पूछा, 'भला आप कर क्या रही हैं?' तब उस बुढ़िया ने कहा, 'छोड़ो भी, एक दिन तुम समझ जाओगे।''

सद्गुरु ने लंबे अंतराल के बाद यह जाना। इस अल्पायु में तो उन्हें उनके रवैये से दंग रह जाने की अपेक्षा आनंद मिलता था। उन्होंने पहले भी अपनी परंपरा विरोधी भावना की चर्चा हमसे की है। समारोह के प्रति सद्गुरु में काफी व्यग्रता रहती थी। वह पक्के संशयवादी थे। वह परिवार के साथ स्थानीय मंदिर में जाने से इनकार कर देते थे और बाहर जूते-चप्पल की देखरेख करनेवाले के साथ खड़े रहते। इन बातों से उन्हें यह भरोसा हो गया कि पारंपरिक पूजा-पाठ के काम में कोई बड़ा खोट है। ''मैं ऐसी किसी बात पर यकीन नहीं करता जो मुझे नजर नहीं आती। यह किशोरावस्था की समस्या नहीं थी। यह बचपन की समस्या थी। अपनी शैशवास्था से ही अपने आसपास होनेवाली बातों पर मैं तब तक विश्वास नहीं करता था जब तक मैं उन्हें देख और समझ न लेता। इसलिए चार या पाँच वर्ष की उम्र में भी मैं अपने माता-पिता के साथ मंदिर जाने से मना कर देता था। वे बहुत धार्मिक प्रवृत्ति के नहीं थे। वे साल में एक या दो बार ही मंदिर जाते थे। इस पर भी मैं मना कर देता था। मेरे मन में सवाल थे। वे मेरे उन सवालों का जवाब देने के लिए कभी तैयार नहीं हुए, इसलिए मैंने कभी मंदिर में प्रवेश नहीं किया। मुझे हमेशा चप्पलवाले की सुरक्षा में छोड़ दिया जाता था। वे अपने जूते-चप्पल सौंपने के साथ ही मुझे भी उसकी निगरानी में छोड़ देते। वे कहा करते, 'इसका ध्यान रखना, वरना यह कहीं भाग जाएगा।' इसलिए चप्पलवाला एक हाथ में मुझे उठाए रहता और दूसरे हाथ से अपना काम करता था। वह जानता था कि यदि उसने कहीं और देखा तो मैं चंपत हो जाऊँगा। उसकी संगति में मैंने भारतीय चरण पादुका की समस्या के विषय में बहुत कुछ जाना। वर्षों बाद इशा सेंटर पर सबसे पहले मैंने जिस काम की सुचारु व्यवस्था की वह यही था कि हर कोई अपने जूते-चप्पल कैसे रखे।''

खिलखिलाते हुए वह आगे कहते हैं, ''आज बड़े गर्व से हम कह सकते हैं कि आठ से दस लाख लोग हमारे समारोहों में आते हैं लेकिन एक स्लीपर भी कभी गुम नहीं होता। मैं हमेशा कहता हूँ, 'यह एक ऐसा काम है जिसे मैंने बचपन में सीखा।' मुझे बहुत पहले से ही जूते-चप्पलों की समस्या के विषय में पता है।''

जूते-चप्पल के स्टॉल पर बैठकर जग्गी ने दूसरी बातों पर गौर करना शुरू किया। ''जब मैं आठ-नौ साल का हो गया, मुझे आभास हुआ कि लोग ईश्वर से बात करने के लिए मंदिर में जाते थे। मैं यह जानना चाहता था कि उससे मिलने के बाद वे कैसे हो जाते हैं। इसलिए उन्होंने एक प्रमुख मंदिर के बाहर बैठकर उनका बारीकी से अवलोकन करने की ठानी। ''जब वे बाहर आते तो मैंने प्राय: यही पाया कि सामान्यत: वे किसी ऐसी चीज के विषय में बात कर रहे होते थे जो उन्होंने मंदिर में देखी थी। जब उन्हें यह पता लगता था कि उनके जूते-चप्पल कोई और पहनकर चला गया है तो वे सृष्टिकर्ता और उसकी सृष्टि को कोसने लगते। कोई भी कभी ऐसा नहीं सोचता था कि उसके जूते-चप्पल कोई इसलिए ले गया होगा चूँकि उसे वे जरूरी रहे होंगे। नहीं, लोग पूरी दुनिया को कोसते। मैंने प्राय: देखा कि रेस्टोरेंट से बाहर आते हुए लोग, मंदिरों से बाहर आनेवाले लोगों की अपेक्षा ज्यादा शांत और खुश नजर आते थे। देवी-देवता बनाम दोसा प्रतियोगिता में दोसा निर्विवाद विजेता था।''

जग्गी को जातिगत भेदभाव से नफरत थी। इसी वजह से जब कोई पंडित पारिवारिक पूजा-अनुष्ठान संपन्न कराने आता तो वह खासतौर पर भड़क उठता। बाद में वह मनन करता कि क्या उसकी कुछ भर्त्सनाएँ अनावश्यक रूप से दु:ख पहुँचाने वाली थीं। फिर भी वह स्वयं को रोक भी नहीं पाता था। ऊँच-नीच का खुला या दबा-ढका आचरण देखते ही उनका खून खौलने लगता। वह यह भी साफ-साफ जानता था कि ये कर्मकांड आध्यात्मिक उत्कंठा से ज्यादा मानव सुरक्षा से जुड़े हुए हैं। ''मैंने देखा कि जो कुछ हो रहा था वह भय या लालच पर आधारित था। मैं तब भी जानता था कि उसे आध्यात्मिकता नहीं कहा जा सकता। यह स्वर्ग में जीवन का रास्ता दिखलाता था, और वह भी कारगर नहीं था। यह एक ऐसा देश है जो यह दर्शाता है कि यह कारगर नहीं हुआ है। हमारे पास लगभग तैंतीस करोड़ देवता, हर प्रकार के कर्मकांड और हर तरह की प्रार्थनाएँ हैं जिसकी जानकारी इस धरती पर किसी और को नहीं है लेकिन फिर भी यहाँ के तकरीबन आधे लोग भरपेट भोजन नहीं पाते। केवल वही लोग जिन्होंने समझदारी से अपने जीवन को सँभाला है, जिंदा बचे हैं। इसलिए मैंने पाया कि अस्तित्वान रहने के लिए तुम्हें अपने हाथ-पैरों और कुछ दिमागी कोशिकाओं के प्रयोग सीखने की जरूरत है। जीवित रहने के लिए तुम्हें ईश्वर की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें अपने जीवन में भगवान् की जरूरत अपने काम या पैसा या बच्चों को सँभालने के लिए नहीं है।''

एक अन्य प्रारंभिक लक्षण विराग का एक स्तर था जिसका असर उनके निकटतम संबंधों पर पड़ा। जग्गी तीव्र पारिवारिक भावनाओं एवं किसी भारी लगाव से असाधारण रूप से अछूता रहता था। वह अपने परिवार के प्रति प्रेम तो रखता था किंतु ऐसे संबंधों की प्रकृति के विषय में ऐसी स्पष्टता थी जिससे एक बार तो उसकी माँ भी आश्चर्यचकित रह गईं। ''मेरी माँ एक बहुत ही समर्पित प्रकृति की महिला थीं। उनके लिए उनके पति और चार बच्चे ही उनका संपूर्ण जीवन थे। उन्होंने स्वयं के विषय में कभी नहीं सोचा; उन्होंने अपना जीवन हम पर ही न्योछावर कर दिया। इसलिए उन्हें कभी यह कहने की जरूरत नहीं हुई, 'मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।' या कुछ और ऐसी बातों की कोई प्रत्याशा नहीं थी। मैंने उनके साथ ऐसा संबंध बना लिया कि यद्यपि मैं परिवार में सबसे छोटा था किंतु कई मायनों में मैं उनका बड़ा भाई था। वह मुझसे ऐसी बातें करती थीं जो वह किसी और से नहीं करतीं। और जब मैं इनका फायदा उठाकर उनसे मजाक करता तो वह हमेशा कहतीं, 'मैं इन बातों को तुम्हें क्यों बता रही हूँ।' इस तरह एक दिन, कुछ आपसी बातचीत के कारण वह कुछ भावुक हो गईं और मेरे प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया। वह वस्तुत: यह नहीं कह रही थीं, 'मैं तुम से प्रेम करती हूँ।' बल्कि उन्होंने किसी तरह अपनी गहनतम भावनाएँ व्यक्त कीं। मेरे लिए यह बड़े महत्त्व की बात थी। मैंने उनसे पूछा, 'यदि मेरा जन्म किसी और घर में हुआ होता तो क्या तब भी तुम्हारी भावना मेरे लिए ऐसी ही होती?' इससे वह बहुत दु:खी हो गईं। वह रोते हुए वहाँ से चली गईं। मेरा मकसद उन्हें दु:खी करने का नहीं था। मैंने तो एक

साधारण-सा प्रश्न ही पूछा था। ऐसे प्रश्न हर किसी चीज के विषय में निरंतर मेरे दिमाग में मँडराते रहते थे।''

जग्गी का इरादा जीतने का नहीं था। किंतु सुशीला के चौदह वर्षीय बेटे के प्रश्न ने उनके लिए अंतर्ज्ञान का एक अहम क्षण उत्पन्न कर दिया था। कुछ देर बाद वह लौट आईं। वह बताते हैं, ''वह आ गईं, अब भी उनकी आँखों में आँसू थे। उन्होंने मेरे चरण छुए और चली गईं। उनके भीतर एक तरह का आत्म अनुभव हुआ। और यह उनके लिए अच्छा था। हम जिन चीजों से जुड़े हुए होते हैं—हमारा शरीर, हमारे माता-पिता, हमारे बच्चे, हमारी पत्नियाँ, हमारे पति, हमारा घर इत्यादि—उनके प्रति हमारे विचार और भावनाएँ काफी गहराई से अपनी पहचान बना लेती हैं।''

जग्गी के विषय में सबसे आश्चर्यजनक बात—जो उसके परिवार और मित्रों को अभी भी नहीं मालूम है— शायद मृत्यु से उसकी तन्मयता थी। आधी रात को वह चुपके से अपने घर से निकलकर मैसूर के स्थानीय श्मशान में पहुँच जाता। अन्य समय वह अपने कुत्तों (रूबी, वाटर स्पेनियल और बाद में सीजार, एक जर्मन शेफर्ड) को घुमाने के बहाने चुपके से श्मशान पहुँच जाता। भूत-प्रेतों को लेकर उनमें स्कूली छात्र जैसा रोमांच या उत्साह रहा करता। किंतु उससे भी ज्यादा गहराई में मृत्यु की प्रक्रिया के प्रति एक आकर्षण, खिंचाव था। वह जली हुई लाशों, खोपड़ियों, अलग-अलग हो गए अंग-प्रत्यंगों, अंतिम संस्कार के कर्मकांडों के भयावह अनुष्ठानों को घंटों निहारता रहता था। कभी-कभी वह अलग हो गए लाश के हिस्से को उठाकर सुलगती चिता पर फेंक दिया करता। शवयात्रा में दु:ख प्रकट करने आए लोगों के चले जाने के बहुत देर बाद तक, जग्गी वहीं आसपास बना रहता और निर्भाव से सभी बातों का अवलोकन करता।

जब वह नौंवी कक्षा में थे, तब छुट्टियों के दिनों में सुचरिता नाम की एक सहपाठी की मौत निमोनिया से हो गई। शुरू में तो, जो हुआ उसके बारे में सहपाठियों को पता ही नहीं चला। सुचरिता दशहरे की छुट्टियों के बाद नहीं लौटी थी। जग्गी और उसके मित्र उसका नाम पुकारे जाने पर उसकी आवाज की नकल करते हुए उपस्थिति दर्ज करा दिया करते थे। बीस दिनों बाद उन्हें पता चला कि वह मर तो चुकी है। तब जग्गी ने जो महसूस किया वह दु:ख कतई नहीं था क्योंकि उनके उस लड़की के साथ निकट संबंध नहीं थे (हालाँकि कभी जग्गी ने उसके लंच-बॉक्स पर छापा मारा था।) किंतु उसमें यह जानने की उत्सुकता जग्गी कि कई वर्षों की सहपाठी सुचरिता को ऐसा क्या हुआ कि अब वह नहीं है, न हो सकती है। सुचरिता के भाई से उसे मालूम हुआ कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में मूर्च्छा के दौरान वह प्राय: जग्गी नाम लेती रहती थी। इससे उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। सुचरिता को आखिर हुआ क्या था? वह कहाँ विलुप्त हो गई? अब वह कहाँ है?

पता लगाने का मात्र एक ही तरीका था। एक दिन उसने अपने पिताजी के दवाघर से गार्डिनल सोडियम की ९८ गोलियाँ चुरा लीं। फिर सावधानी से एक योजना बनाई, उसने कोई लिखित नोट (लेख) नहीं छोड़ा। ऐसे भावुक दिखावों की कोई आवश्यकता नहीं समझी। अपनी सभी चीजें अपने मित्रों में, कुछ सहपाठियों की नजर में बाँट दीं। वह बहुत साधन संपन्न था। उनमें में कइयों में उसकी बराबरी करने की और उसकी संपत्ति की लालसा रहा रहती थी। जग्गी के लिए यह उसके त्याग का शानदार क्षण था। उसने अपना मूल्यवान गुलेल और साँप पकड़ने से मिली रकम (एक सौ बारह रुपए की बड़ी रकम) बाँट दी। उसके पालतू कोबरा और दूसरे साँप चामुंडी हिल्स पर छोड़ दिए गए और पालतू कछुआ कुम्कहल्ली वाटर टैंक में। समस्त भौतिक संपत्ति से छुटकारा पाने के बाद शाम के भोजन का त्यागकर दिया। इसके बाद बोतल की दवाई पी ली, लेट गया और इस प्रतीक्षा में बना रहा कि आगे क्या होगा।

तीन दिनों के बाद उसकी नींद उनके पिता के अस्पताल में खुली। वह सामूहिक दौड़धूप, अस्पताल पहुँचने की आपातकालीन आपा-धापी, पेट की धुलाई के दौरान सोया रहा। जब माता-पिता ने पूछा कि वह क्या सोच रहा था, उसने बड़बड़ाते हुए गलती से नागफनी (कैक्टस) का फल खाए होने की बात कही। किसी को कभी भी सच का पता नहीं चला। जग्गी के लिए खीझनेवाली बात यह थी कि उसे भी मृत्यु के विषय में कुछ मालूम नहीं हो पाया था। एक मात्र ध्यानाकर्षित करनेवाली बात यह पता लगी कि अगले तीन महीने तक जब कभी भी वह हँसता तो उसकी खुशी अनियंत्रित होती थी। उसने सोचा कि यह बोतल भर जहरीली दवा पीने के बाद का प्रभाव होगा। एक अन्य बात का

प्रभाव यह था कि वह पहले की अपेक्षा काफी विपन्न था। अपनी उदारता की भावना में बहकर जो कुछ मित्रों को सौंप दिया था, वह सब उसे लौटाने में वे आनाकानी कर रहे थे। उसने कुछ धमकियाँ देकर और उनमें से कुछ को क्रियान्वित करके आधी रकम तो वसूल ही ली थी।

इस घटना की तीन दशाब्दियों से भी अधिक समयावधि के बाद, जब उनके जीवन में कई नाटकीय मोड़ आ चुके हैं, सद्‌गुरु पुन: अपनी स्कूली मित्र से मिले। वह कहते हैं, ''वह बिलकुल वैसी ही दिखती है। वही ऊँचाई, वही बनावट। वह आश्रम भी आई है। वह उनमें से कुछ शब्दों का प्रयोग भी करती है जो आरंभिक जीवनकाल में प्रयोग में लाती थी।'' नई सुचरिता अब उनकी उम्र से आधी उम्र की है। उन्होंने उसे पहचाना कैसे? स्पष्ट है, उसके कार्मिक शरीर से। वह कहते हैं, ''कार्मिक शरीर को पहचानना इतना सरल है जितना एयरपोर्ट के बैगेज क्लेम से हम अपना सामान पहचान लेते हैं। प्रत्येक इतना स्वाभाविक होता है कि हम किसी और के होने की उलझन में नहीं पड़ सकते।''

जब जग्गी चौदह साल का किशोर था तो एक नया खिंचाव शुरू हुआ। जग्गी राजनीतिज्ञ हो गया। ऐसा होते ही उसके अतींद्रिय बोध घटने लगे। उनका पुनरागमन हुआ उम्र के पच्चीसवें साल में। तब बाहरी दुनिया से ही सरोकार हुआ करता था। सामाजिक न्याय सबसे बड़ी चिंता का विषय हो गया। क्रांति उसका सिद्‌धांत हो गया। इसने उसकी समग्र विरोध की भावना को आकृष्ट किया और इससे उत्पन्न प्रचंड विचार प्रक्रिया की पुकार पर गरीबी और भेदभाव जैसे मुद्‌दों पर संबोधन की प्रतिबद्‌धता पनपी।

प्रारंभिक रूप से, यह सहानुभूति अपने से एक वर्ष वरिष्ठ स्कूल सहपाठी के पिता प्रोफेसर रामलिंग के भाषणों से प्रेरित थी। उसके कुछ मित्र उनके रुझान से प्रेरित हुए। यह समूह आगे चलकर देवानुर महादेव की प्रेरणास्पद उपस्थिति से प्रभावित हुआ। वह मैसूर विश्वविद्यालय के यशस्वी बौद्‌धिक व्यक्ति, लेखक एवं क्रांतिकारी थे। महादेव ने एक लघु किंतु प्रभावशाली उग्रवादी पत्रिका बंदाया (क्रांति) की शुरुआत की थी। बाद में इसका नाम नारा बंदाया (मानव क्रांति) कर दिया गया।

दो साल तक जग्गी नक्सली समूहों को अपना समर्थन देते रहे। वह विभिन्न आंदोलनकारी पत्रिकाओं के ग्राहक बन गए और उन्हें आद्योपांत पढ़ने लगे। जब विश्वविद्यालय परिसर में, एक लड़की के साथ किसी प्रोफेसर के दुर्व्यवहार के कारण आंदोलन फूट पड़ा तो वह उसमें कूद पड़े। छात्र हिंसा भड़क उठी, पुलिस को बुलाया गया। जग्गी ने व्यवस्था विरोधी तीखे पोस्टर पूरे शहर में लगवाए, यहाँ तक कि कुछ पुलिस वैन में भी लगाने का दुस्साहस किया। इसमें हिम्मत की जरूरत थी जिसकी जग्गी को कभी कमी महसूस नहीं हुई। इसके चलते वह अपने साथियों से बाजी भी जीत गए। एक पोस्टर चिपकाने का मतलब 20 रुपए की कमाई और जग्गी ने पूरे 100 रुपए कमाए। ''ऊँघते बात करते, धूम्रपान करते हुए पुलिसवाले वैन के अंदर थे। ''शाम के आठ से दस बजे के बीच का समय रहा होगा। चाल यह अपनानी थी कि चुपके से जाकर एक पोस्टर चिपकाओ और चलते बनो, कहीं ठहरकर कुछ देर इंतजार करो। बाद में दूसरी दिशा से पुन: आओ, दूसरा पोस्टर चिपकाओ और चलते बनो। मैं वैन पर पाँच पोस्टर चिपकाने में कामयाब रहा। उनमें से आधे विंडशील्ड (सामने के काँच) और आधे बोनट पर। मैं तो सब के सब विंडशील्ड पर चिपकाना चाहता था पर ऊपर तक पहुँच नहीं सका। खैर, मैंने पाँच पोस्टर चिपकाए और सौ रुपए कमा लिए।''

सोलह वर्ष की आयु तक उनका इससे मोहभंग हो गया। उन्हें अपने साथियों के बीच स्वयं का छलावा खलने लगा। उनमें से अनेक उनकी क्रांतिक्रारी राजनीति एवं उनकी व्यक्तिगत सुरक्षा की स्थिति के बीच की खाई के प्रति जान-बूझकर आँखें मूँदे हुए लगते थे। जग्गी लगातार मार्क्स को पढ़ते रहे और चे गुएवारा की प्रशंसा करते रहे, किंतु स्वयं को वामपंथ से पूरी तरह अलग करने का निर्णय ले लिया। वह महसूस करते थे कि किसी रचनात्मक विकल्प की गैर मौजूदगी के चलते इसमें काफी रोष और घृणा थी। कई वर्षों बाद उनके लिए एक महत्त्वपूर्ण क्षण तब आया जब उनके क्रांतिकारी समय के हीरो और सद्‌गुरु से उम्र में बड़े देवातुर महादेव ने सपरिवार उनके (सद्‌गुरु) एक ध्यान शिविर में हिस्सा लिया।

अपने जीवन के राजनीतिक चरण का स्मरण करते हुए वह कहते हैं, ''मैं कमियों को नजरअंदाज नहीं कर सका। जीवन के इस चरण से मुझे कुछ मूल्यवान चीजें तो प्राप्त हुईं, किंतु इससे मुझे बहुत समय तक प्रेरणा नहीं मिल सकी। मुझमें हर चीज में सक्रिय एवं गतिशील बने रहने के लिए पर्याप्त उत्साह एवं जीवंतता थी। लेकिन कुछ प्रेरणास्पद सिद्ध न हो सका— कोई व्यक्ति, कोई खास घटना (ऐतिहासिक या अन्य)। शायद मैं बहुत धृष्ट था। मुझे नहीं मालूम।''

मनन करने पर वे इसकी वजह किसी बात पर अपने नजरिए के खरेपन को देते हैं, जिसमें निहित स्वार्थों का समावेश नहीं है। ''संदेह कभी भी मेरा गुण नहीं रहा। मैं सोचता हूँ कि मेरा सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू स्पष्टता है, सभी बातों में पूर्ण स्पष्टता। इसलिए मैंने कमियाँ देखीं, क्योंकि कमियाँ उसमें थीं। मैं उन्हें खोजकर निकाल नहीं रहा था। मैंने अपने जीवन में कभी भी किसी चीज की खोज नहीं की है। मैं तो मात्र देखता हूँ। और यही मैं लोगों को सिखा रहा हूँ। यदि तुम सचमुच आध्यात्मिकता का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो, तो कुछ भी मत खोजो। लोग सोचते हैं कि यह ईश्वर की खोज करने जैसा है। मैं उन्हें बताता हूँ कि कुछ भी मत खोजो। मात्र पूर्वधारणा रहित ढंग से देखना सीख लो, तभी तुम्हें मालूम होगा कि वास्तविकता क्या है। एक साधक किसी चीज की खोज नहीं करता, वह मात्र देखता है। यदि साधारण देखने का यह गुण आपमें विकसित नहीं होता है तो आपको वास्तविकता के अलावा, बाकी सबकुछ नजर आ जाएगा।''

लगभग इसी समय एक घुमंतू ज्योतिषी उनके घर के पास से गुजरा। अपनी पहली बेटी के विवाह की संभावना को जानने की उत्सुकता के चलते, जग्गी की माँ ने उसे घर बुलाया। किंतु किसी अजनबी से लड़कियों को सीधे बात करने देने के प्रति सावधानी बरतते हुए माँ ने अपने बेटे, जग्गी को उससे मिलने के लिए कहा। विरोध सहित वह तैयार हो गया, हालाँकि इस तरह की बातों में उसे बिलकुल दिलचस्पी नहीं थी। उस व्यक्ति ने परिवार से जुड़ी बड़ी खास बातों को धाराप्रवाह बताते हुए उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। उसने जग्गी की बड़ी बहन के विषय में कुछ भी कहने से इनकार कर दिया किंतु दूसरी बहन के बारे में उसने बताया कि उसका विवाह अगली मई तक होगा। जब जग्गी के विषय में पूछा गया तो विशेषज्ञ की नजर से ऊपर से नीचे तक देखने के बाद उसने बताया कि यह लड़का सैंतीस वर्ष की आयु तक मंदिर का निर्माण शुरू कर देगा।

खानदान का नास्तिक और मंदिर? जाहिर था कि उस व्यक्ति की भविष्य ज्ञान की क्षमता आधी-अधूरी थी। परिवारवालों ने इसे हँसकर उड़ा दिया। जग्गी ने तो सबसे बड़ा ठहाका लगाया। फिर भी उनकी बहन का विवाह अगले वर्ष की 25 मई को संपन्न हुआ। दूसरी बहन आध्यात्मिक रास्ता अख्तियार कर रामकृष्ण मिशन के शारदा मठ से जुड़ गयी। किंतु जग्गी मंदिरों से लगातार दूर ही रहे।

उनकी सबसे बड़ी बहन द्वारा मठ का आश्रमवासी जीवन अपनाने का निर्णय परिवार के गले नहीं उतरा। मंजू सदा से खुले विचार की, कुछ फैशन परस्त युवती थी। उसके सांसरिक जीवन के प्रति झुकाव को कम करने के प्रयास में डॉक्टर वसुदेव उसे अपने साथ स्थानीय रामकृष्ण मठ ले जाया करते थे। स्थिति बड़ी तेजी से बदलती गई। देखते ही देखते मंजू के कपड़ों की आलमारी में ठसाठस भरी आधुनिक पोशाकों की जगह सलीके से पहनी जानेवाली साड़ियों ने ले ली। वह बार-बार रामकृष्ण मिशन जाने लगी। घटनाक्रम के इस अप्रत्याशित मोड़ से चिंतित होकर डॉ. वसुदेव और उनकी पत्नी ने अपनी सबसे बड़ी बेटी के लिए विवाह संबंध तलाशने शुरू कर दिए। किंतु मंजू इस बात पर डटी हुई थी कि शादी से उसका कोई सरोकार नहीं है। उसकी प्राथमिकताएँ कहीं और हैं।

एक बार, जब जग्गी के माता-पिता बंगलोर जा रहे थे, तो जग्गी ने मंजू को चुपके से घर की आलमारी से अपना स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र और अंक सूचियों को निकालते देखा। वह तुरंत भाँप गया कि कुछ चल रहा है। जग्गी, जो प्राय: घर से भागने की योजना बनाता रहता था, तुरंत समझ गया कि घर छोड़ने वाले के पास ये पहचान के महत्त्वपूर्ण प्रलेख होने ही चाहिए। उस दिन सुबह जब मंजू दिखावे के तौर पर टाईपिंग क्लास जाने के लिए घर से निकली तो जग्गी ने उसकी आलमारी देखी। उसकी चारों साड़ियाँ उसमें नहीं थीं। उसने मंजू के निमित्त कोई खास लगाव महसूस नहीं किया। उसका मानना था कि रामकृष्ण के बदले उसका बदलाव की मुहिम से जुड़ना बेहतर होता। लेकिन घर से भागने

की इच्छा रखनेवालों से उसकी सहानुभूति हो गई। उसने भागने की प्रक्रिया में उसे सहयोग दिया। तत्पश्चात् उसी दिन शाम को पाँच बजे उसने अपने माता-पिता को बंगलोर में फोन पर सबकुछ बताया। वसुदेव परिवार उलटे पाँव लौट आया। जोर-शोर से की गई खोजबीन के पश्चात् मंजू के त्रिचूर के शारदा मठ में होने की जानकारी मिली। अब यह परिवार की प्रतिष्ठा बचाने और पथभ्रष्ट लड़की की समय रहते सुरक्षा करने की बात थी। उन्हें उस भवन (मठ) में प्रवेश नहीं करने दिया गया सो वे लौट आए। वे भयंकर क्रोधित किंतु पराजित थे। जग्गी को याद है कि उनके पिता उस घटना से टूटकर तीन दिनों तक रोते रहे।

एक महीने बाद क्रोध शांत हुआ और उसका स्थान मौन स्वीकृति ने ले लिया। तब वसुदेव परिवार मंजू से मिला। वह अब अपनी नई जिंदगी से संतुष्ट, ब्रह्मचारिणी थी, माता-पिता के सामने इस स्थिति से समझौता करने के अलावा कोई विकल्प न था।

आखिरकार परिवार में हमेशा से आध्यात्मिक असर रहा है, उन्होंने इसके पूर्व परदादी के बारे में सोचते हुए इसे तर्कसंगत पाया। इसके अलावा परिवार में तीन अन्य बच्चे तो थे ही जिनसे उन्हें सांसारिक क्षेत्र में गौरगन्वित होने की उम्मीद थी। लेकिन उनके भाग्य में क्या लिखा था इसकी उन्हें बिलकुल जानकारी नहीं थी।

एक नए चरण का प्रारंभ हुआ। घर पर जग्गी के करियर के विकल्पों पर चर्चा होने लगी। तभी एक सुबह जग्गी ने सेना में शामिल होने की योजना बनाई। जब उसने नेशनल डिफेंस एकेडमी की परीक्षा दी, उस समय उसे बारहवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण करनी थी। इसका अतिरिक्त लाभ स्पष्ट था। उसे लगा कि इससे जीवन में वह सब मिल जाएगा, जो वह चाहता था, हैंग ग्लाइडिंग, पर्वतारोहण, ट्रेकिंग, हॉकी। जैसा कि उसने बाद में कहा, ''मैंने तो बस यही सोचा कि मेरे साहसिक कारनामों के लिए पैसा मिल जाएगा।''

शारीरिक एवं अभिक्षमता परीक्षण में वे आसानी से उत्तीर्ण हो गए और इसके उपरांत उन्हें साक्षात्कार के लिए भोपाल बुलाया गया। साक्षात्कारवाले कमरे में प्रवेश करने पर उन्होंने तीन ब्रिगेडयर को बैठे हुए देखा। सभी चमकते हुए तमगे लगाए थे, और उन सभी की बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। बैठते ही उन्हें याद दिलाया गया कि उन्हें बैठने की अनुमति तो दी ही नहीं गई थी। साक्षात्कार की शुरुआत ही बिगड़ गई थी। आगे बात और तेजी से बिगड़ती गई। यह जानकर कि भूगोल उन्हें अच्छा लगता है, एक ने स्काटलैंड का वह स्थान पूछा जो मछली पकड़ने के लिए विख्यात है। जग्गी ने नकारात्मक उत्तर दिया, किंतु अपनी वाक्चपलता से यह कह दिया कि तीन महीने के अंदर वह उन्हें भूगोल की कुछ चीजें पढ़ाने लायक हो जाएगा। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं कि यह जवाब उनके साक्षात्कारकर्ताओं के गले नहीं उतरा। जग्गी ने ज्यादा खेद महसूस किए बिना अपने सैन्य सेवा के सपनों को त्याग दिया।

डॉक्टर वसुदेव जग्गी के ढुलमुल रवैये से निराश रहने लगे थे। अपने बेटे को वह डॉक्टर बनाना चाहते थे। सद्गुरु कहते हैं, ''इसके लिए वह इतने उत्सुक थे कि जब कभी भी संभव होता तो हमसे बातचीत के दौरान वह अपने सभी पुराने नोट्स, निकाल लेते। अपने समय में वह कॉलेज में प्रथम आए थे। उन्होंने न केवल अपनी पाठ्य पुस्तकें सँभालकर रखी थीं बल्कि, उन्होंने अपने सभी व्यक्तिगत नोट्स अपने सभी मरीजों की केस हिस्ट्री भी रखी थी। सबकुछ उनकी छोटी-छोटी साफ लिखावट में लिखा हुआ था। वह हमें बताया करते थे, ''मैंने यह सब इसलिए रखा है कि तुममें से कोई एक डॉक्टरी पढ़ेगा।''

जब डॉक्टरी की बात ही समाप्त हो गई तो इंजीनियरिंग अगला सर्वोत्तम विकल्प महसूस हुआ। पर जग्गी को उससे भी अरुचि थी। जब विज्ञान और कॉमर्स की बात रखनेवाली डिग्रियाँ भी अमान्य कर दी गईं तो उसके पिता को कुछ भी नहीं सूझा। क्या यह लड़का कभी भी समझदार नहीं होगा, कभी भी अपना रवैया नहीं सुधारेगा?

जग्गी का अगला निर्णय माता-पिता की चिंताओं को कम करनेवाला नहीं था। उसने औपचारिक शिक्षा को त्यागकर मैसूर यूनिवर्सिटी लायब्रेरी में स्वाध्याय प्रारंभ करने का निर्णय लिया। वह सुबह नौ बजे घर से निकल जाता और पक्का इरादा कर लेता कि वह शाम 8 बजे तक नहीं लौटेगा। ऐसे घर में समय बिताना उसे बेवजह ही लगता था जहाँ उसे

नाकारा समझा जाता था। भोजन के प्रति अतिरिक्त रुचि और अपने घायल स्वाभिमान के कारण, उसे उस साल अधिकतर समय भूखा रहना पड़ा। नाश्ते और रात के भोजन के बीच पुस्तकें ही उसका एकमात्र सहारा हुआ करतीं। वह विषद अध्ययन किया करता था जिसमें होमर, थॉमस मूट, पश्चिमी दर्शन और लोकप्रिय यंत्रविद्या भी सम्मिलित थे। यंत्रविद्या के अध्ययन से उसे हैंग ग्लाइडर बनाने की प्रेरणा मिली। ''मैंने इसे बाँस और कहीं से हाथ लगे पैराशूट सिल्क से निर्मित किया। इसके बाद नंदी हिल्स से उड़ान भरने की कोशिश की।'' उड़ान तो भरी लेकिन जितनी उम्मीद थी उससे काफी पहले उतरना पड़ा। इस प्रक्रिया में दोनों टखने टूट गए। वर्षों बाद एक ब्रिटिश पायलट से हैंग ग्लाइडिंग का प्रशिक्षण लिया और उड़ान भरने में सफलता पाई।

पैसा कोई समस्या नहीं थी। जग्गी हमेशा ही साधन संपन्न था। उसने अपनी धुन के किसी भी काम पर खर्च करने के लिए अपने माता-पिता का आश्रय नहीं लिया। उसके विविधतापूर्ण गैरपुरातनवादी कौशलों—कबूतर पालना, पिछवाड़े से पानी की टंकियों पर चढ़ना, ऊटी से लाई हुई गायों को बेचना—से काफी कमाई हो जाया करती थी। एक ऐसा भी समय था जब उसके पास नकद पैंसठ रुपए रहा करते थे—एक किशोर के लिए एक अच्छी रकम। उसके पैसे बहुधा सामूहिक साइकिल अभियान एवं अपनी साइकिल को साफ-सुथरा व आकर्षक बनाए रखने में खर्च होते थे। अतिरिक्त पैसे एक अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वाकांक्षी भविष्य की योजना के लिए रख लिये जाते थे (साइकिल से मास्को यात्रा)।

एक साल के सुखद स्वाध्याय के बाद जग्गी कॉलेज जाने को सहमत हो गया अंतत: उसकी माँ की आँखों के आँसुओं ने उसे हरा दिया था न कि घर में हर किसी के स्नातक होने की माता-पिता की चाह ने। लेकिन जो करना था उसके बारे में वह अडिग ही रहा। और यह जिद थी अंग्रेजी साहित्य की। ''भला कविताएँ पढ़कर तुम अपनी आजीविका कैसे जुटा पाओगे?'' सदा अड़ंगा डालने की आदत से मजबूर पिता ने पूछा। लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जिसके पास पैसा कमाने की योजनाओं की कभी कमी न रही हो, आजीविका के सवाल उसके दिमाग में फटकते ही न थे। जग्गी ने कहा, ''या तो साहित्य या लायब्रेरी को वापसी।'' यह सुनते ही उसके पिता को साहित्य में कम बुराई नजर आई।

जग्गी ने अगले तीन वर्ष दिखावे के तौर पर एक छात्र की हैसियत से मैसूर विश्वविद्यालय में बिताए। उन्होंने यह साफ कर दिया था कि वह संध्याकालीन कक्षाओं में जाएँगे। ''प्रतिदिन मैं शाम छह बजे से छह बजकर तीस मिनट तक व्यस्त रहता। मैंने दिन का समय अपने स्वयं के लिए और शाम का समय माता-पिता के लिए तय कर लिया था।'' एक बार पुन: उनका ज्यादातर समय कक्षाओं में होने की अपेक्षा बाहर रहने में बीतने लगा। उन्होंने अपने व्याख्याताओं में से एक को तब नाराज कर दिया जब कक्षा में खड़े होकर उन्होंने उसके नोट्स फोटोकॉपी करा लेने के लिए माँगे। इससे व्याख्याता का डिक्टेशन देने का कष्ट कम हो जाता और जग्गी का कक्षा में रहने का कष्ट कम हो जाता। उन्होंने कहा, ''मैंने यह पाया कि कक्षा में केवल डिक्टेशन ही तो चल रहा था। और मेरा इरादा स्टेनोग्राफर बनने का कतई नहीं था। मेरे दिमाग में हर समय लाखों प्रश्न हुआ करते थे। मैं हमेशा उनकी तलाश में रहता था जो इन प्रश्नों का उत्तर दे सकें। इसलिए मैंने कहा, 'मेरी इच्छा नोट्स लिखने की नहीं है। बल्कि मेरे पास तो प्रश्न हैं, क्या आप उनका उत्तर दे सकते हैं?'''

इसमें अचरज की बात नहीं है, उनके प्रोफेसरों ने खुशी से अगले तीन सालों के लिए स्वतंत्र उपस्थिति की अनुमति दे दी। कक्षा में उनकी उपस्थिति से वातावरण प्रतिकूल हो जाया करता था। ''इसलिए मैंने सभी शिक्षकों से एक समझौता किया। महीने के प्रत्येक दिन वे मुझे देखते। महीने के अंतिम दिन उपस्थिति दर्ज हो जाया करती। उस दिन मैं कक्षा में प्रवेश करता और यह सुनिश्चित करता कि वे अपने समझौते का पालन कर रहे थे।''

इसकी आवश्यकता उन्हें परीक्षा में शामिल होने के लिए पड़ती थी। जब कभी संभव होता तो वह यह सुनिश्चित कर लेते। किंतु कभी-कभी ऐसा जाहिर तौर पर संभव न होता। ''मैं स्नातक के द्वितीय वर्ष में था। अंतरविश्वविद्यालयीन फुटबॉल मैच चल रहे थे। मैंने सोचा कि तकरीबन आधे घंटे मैं मैच देख लूँ, फिर परीक्षा देने चला जाऊँगा। मैं इसके लिए पूरी तरह तैयार था। वहाँ बैठकर मैं मैच देखने लगा। और देखते-देखते मैं इतना खो गया कि मैच के खत्म होने

तक मैं रुका रहा। तभी मुझे मालूम हुआ कि परीक्षा का समय भी समाप्त हो चुका था।''

कुछ शिक्षक ऐसे थे, जिनकी कक्षाएँ उन्हें प्रेरणास्पद लगती थीं। वह उनके व्याख्यान सुनते और बाकियों को टाल जाते। ''जब मैंने अंग्रेजी साहित्य चुना तो इसका कारण मैंने यह सोचा कि यह सबसे कम बाध्यकारी होगा'', वह हँसते हैं, ''मैंने सोचा कोई अन्य विषय मेरे जीवन में बहुत ही बाध्यकारी होता। मैं सोचता था कि साहित्य का अभिप्राय यह है कि मैं बहुत-सी कहानियाँ और कविताएँ पढ़ सकता था। किंतु साहित्य के साथ मुझे भूगोल और समाजशास्त्र भी पढ़ने पड़े। भूगोल मुझे पसंद था— यह उस ग्रह के विषय में था जहाँ हम चलते हैं। किंतु समाजशास्त्र तो पूरी तरह लोगों के मतों से जुड़ा था और मुझे इतना तुच्छ लगता था कि मैं कक्षा में उपस्थित रहने से ही इनकार कर दिया करता। आप तो जानते हैं कि उपस्थिति कैसे दर्ज की जाती है? चूँकि मेरा नाम 'जे' से शुरू होता है तो यह पहले तीन मिनट के दौरान ही पुकार लिया जाता। वे तीन मिनट भी बहुत भारी पड़ते थे। उसके बाद मैं खिड़की से निकलकर चला जाया करता। खिड़कियाँ काफी बड़ी, दरवाजे से भी बड़ी हुआ करती थीं। समाज शास्त्र के शिक्षक ने मुझे बताया कि यह बड़ा अटपटा तरीका है। मेरे लिए तो खिड़की अटपटा नहीं बल्कि सुविधाजनक थी। लेकिन उस दिन से मैंने दरवाजे का प्रयोग करना शुरू कर दिया।''

जग्गी खुशी से बगीचे में चले जाते। इसी दौरान समस्या के समाधानकर्ता, एक अनौपचारिक मनोचिकित्सक के रूप में उनकी माँग होने लगी। उन्हें यह काफी सहज लगता। वह एक अच्छे श्रोता थे और दृष्टिकोण की सुबोधता से विभिन्न मसलों पर वह सटीक सलाह दिया करते। वह स्मरण करते हुए कहते हैं, ''मेरे सहपाठी छात्र मेरे पास हर तरह के मुद्दे लेकर पहुँचते। शिक्षा समस्याएँ, संगठन समस्याएँ, ब्वायफ्रेंड/गर्लफ्रेंड से जुड़ी समस्याएँ एवं पारिवारिक समस्याएँ। युवक-युवतियाँ इतनी ज्यादा समस्याओं से घिरे रहते हैं, अविश्वसनीय है। ऐसा नहीं कि बड़े लोगों को ही समस्याग्रस्त होने का अधिकार है, बल्कि जब आप छोटे होते हैं आप यह अपेक्षा करते हैं कि बड़े मूर्ख रहें और छोटे जीवन के प्रति सजग रहें। वे अपनी समस्याएँ लेकर आते रहे तो वहाँ बैठकर मैं इन धुएँ से लहराते लोगों को आकर अपनी समस्याएँ बताते देखता रहता। मैं ही एक ऐसा झक्की था, जिसके पास कोई समस्या नहीं थी। मैं हर समस्या के लिये उच्छृंखल सुझाव अपने तरीके से देता।''

और फिर भी, उन उच्छृंखल सुझावों में से कुछ के स्पष्टत: मानवीय पक्ष भी हुआ करते थे। उस समय तक, मैं लोगों की मूर्खता से क्रोधित हो उठता था। लेकिन जब इन धुँधले से नजर आनेवाले लोगों, इन प्रेतों द्वारा प्रस्तुत की गई लोगों की विविध समस्याओं को जब मैं सुनता तो धीरे-धीरे मैं उनसे सहृदय होता गया। मैं उन तक पहुँचने लगा। मैं जानता था कि यह मूर्खतापूर्ण है। जो मुझे करना था, उनके दिमागों में दस्तक देना और उन्हें बताना कि आप मूर्ख हैं, किंतु किसी कारणवश मेरा गुस्सा सहानुभूति में परिवर्तित होने लगा।''

इसी समय जग्गी ने अपने जैसे मोटर साइकिल के साथियों का समूह खोज लिया। ''हम अपनी मोटरसाइकिलों पर रहा करते थे। हम इनके लिए पागल हो गए थे। हम हर समय इससे चिपटे रहते थे। हम अपना सारा समय इंजिन से छेड़छाड़ करने में यह सोचते हुए बिताते थे कि इस मशीन को कुछ और तेज कैसे किया जा सकता था। कैंपस ग्राउंड में एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे एक स्वाभाविक फोरम तैयार हो गया। किसी ने इसका नाम बनयन ट्री क्लब दे दिया और एक लेबल चिपका दिया। किसी और ने एक जर्नल के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा और देखते ही देखते यह मासिक प्रकाशन हो गया। क्लब का एक सामान्य सिद्धांत था; हम यह मौज-मस्ती के लिए करते हैं। इसने उन सभी को आकर्षित किया जो विविध तर्क-वितर्क में हिस्सा लेना चाहते थे; जावा मोटर साइकिल से शुरू होकर, दुनिया को एक बेहतर स्थान कैसे बनाएँ। 'हम सब इस वृक्ष के नीचे अपनी मोटर साइकिल पर बैठे हुए एकत्र हो जाया करते।' सद्गुरु कहते हैं ''और घंटों बात किया करते। बेशक हम अपनी मोटर साइकिल से कभी भी अलग नहीं होते थे। यह धर्म-विरुद्ध रहा होगा।''

यह अनौपचारिक सभा किसी कक्षा से ज्यादा सार्थक लगी। वह कहते हैं, ''मैं सचमुच धृष्ट नहीं था। शायद मैं अपने

व्यवहार की अपेक्षा अपने दृष्टिकोण में था। यह किसी और से मुझे प्रमाणित कराने जैसा है, क्योंकि जीवन का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं था। मैं जानता था कि अपनी मोटर साइकिल चलाने या पैसा कमाने के लिए मुझे किसी प्रमाणपत्र की जरुरत नहीं है। यदि कुछ और कारगर नहीं हुआ होता, तो मैंने एक मोटरसाइकिल गैरेज शुरू कर दिया होता।'' हाल ही में उन्होंने इस बात को पुन: किसी सत्संग में उठाया। ''मैंने हमेशा यही माना है कि दरवाजे आपके लिए आपकी योग्यताओं के कारण नहीं बल्कि आप क्या हैं, इसके लिए खुलने चाहिए।''

जग्गी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण इतना रूखा बिलकुल नहीं था, जितना बनयन ट्री क्लब का चपलतापूर्ण सिद्धांत बताता है। एक बार कोई मित्र किसी ट्रक से टकरा गया और बुरी तरह घायल हो गया। उसका भेजा फटकर बाहर आ गया और उसकी खोपड़ी के टुकड़े रास्ते में बिखरे पड़े थे। जग्गी ने सभी टुकड़ों को उठाया और अपने मित्र को लेकर अस्पताल पहुँचे। ''उसका सिर फटकर बाहर आ गया था और उसकी खोपड़ी के टुकड़े उस जगह पर बिखरे पड़े थे। मैंने उन सबको उठाकर अपनी जेब में रखा, इस आदमी को उठाया और आकस्मिक वार्ड में ले गया। वहाँ बहुत शोर-शराबा था।'' जग्गी ने पाया कि उन्हें इस दुर्घटना में कई अनिवार्य प्रशासनिक औपचारिकताओं का सामना करना पड़ा। उन्हें नियम-कानून से जुड़े कई प्रश्नों के झूठे उत्तर देते हुए आगे बढ़ना पड़ा, ताकि प्रक्रिया को गति दे सकें। तत्पश्चात् आपातकालीन ऑपरेशन हेतु खून की व्यवस्था करने में उन्होंने जमीन-आसमान एक कर दिया। उनका मित्र उस रात तो जीवित किंतु गंभीर हालत में था। ''अगली सुबह मैं बुरी तरह थका हुआ घर पहुँचा और नहाने ही जा रहा था तभी मैंने अपना पॉकेट छुआ और मैंने पाया कि उसके खोपड़ी के सभी टुकड़े मेरे पॉकेट में थे। मैं उन्हें डॉक्टर को देना भूल गया था। मैंने वापस लौटकर डॉक्टर को बताया, उसकी खोपड़ी के टुकड़े मेरे पास हैं। उसने कहा, कोई बात नहीं, उसने उसकी पट्टी कर दी है। उसे सामान्य होने दो, हम देखेंगे? खैर, जो मेरे पास था वह उसने ले लिया, मेरे पॉकेट में तीन टुकड़े थे। उन्होंने उस लड़के को बंगलोर के एक अस्पताल में भेजने की कोशिश की, किंतु रास्ते में उसकी मौत हो गई।''

इस अनुभव से जग्गी और उनके युवा मित्रों के समूह को आपातकालीन वार्ड प्रबंधन दल बनाने की प्रेरणा मिली। इसके तहत शहर के प्रमुख अस्पताल के आपातकालीन वार्ड में कम-से-कम एक स्वयंसेवी के लगातार उपस्थित रहने की व्यवस्था की गई। ज्यों ही किसी दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को अस्पताल में दाखिल किया जाता, तो वह स्वयंसेवी उस मरीज के प्रति उससे परिचित होने और किसी भी प्राप्त सूचना के आधार पर उसके परिवार से संपर्क साधने की भूमिका निभाता। यह दल लगभग डेढ़ साल तक सक्रिय रहा। जग्गी को स्वयं पाँच दुर्घटना के शिकार लोगों को अस्पताल में दाखिल करना याद है। जिनमें से दो की मौत हो गई और तीन की जानें बच गईं।

और ऐसे ही उनके महाविद्यालयीन वर्षों में भी अराजकता और सामाजिक जिम्मेदारियों में लगे रहने का अनोखा समन्वय है। जग्गी के दृष्टिकोण से दोनों के मध्य कोई वास्तविक भेद नहीं है। (आज भी वह सहृदयता या दया के लिए किसी आचार संहिता की जरूरत पर विश्वास नहीं करते।)

उनके दिन व्यस्त रहा करते थे। उन्हें मित्रों की कभी कमी नहीं रही। उनके ट्रेकिंग वाले मित्र थे, कॉलेज के मित्र थे, मोटरसाइकिल पर सवारी करनेवाले मित्र थे। ''भिन्न-भिन्न क्रिया-कलापों के लिए मेरे भिन्न-भिन्न तरह के मित्र थे। जब मैं शहर में मोटर साइकिल पर सवारी करने निकलता तो मेरे मित्र अलग तरह के हुआ करते थे। इनमें प्रत्येक समूह में मैं एक अलग किस्म का व्यक्ति था। सामान्यत: कई स्थानों में लोग मुझे बहुत ही अल्पभाषी किस्म का व्यक्ति समझते थे। किंतु कुछ समूहों में, ऐसा ऊधमी व्यक्ति जो बहुत कुछ बोलता है और बहुत कुछ करता है। कुछ जगहों पर लोग मुझे अपने आप में बहुत ही सिमटे व्यक्ति के रूप में जानते थे तो कुछ स्थानों पर लोग मुझे खुले तौर पर सक्रिय रहनेवाले व्यक्ति के रूप मे जानते थे। जिस तरह के समूह के साथ मैं होता, यह उस पर निर्भर करता।''

लेकिन उन्हें अहसास था कि यह मित्रता किसी गहरी भावनात्मक आवश्यकता के बदले मौज-मस्ती के लिए ही थी। उन्हें स्मरण आता है कि एकान्तता व संगति दोनों उनके लिए अच्छी थी। वह जानते थे कि उनके कुछ मित्र बौद्धिक

स्तर पर उनसे ज्यादा तेज थे। किंतु उन्होंने काफी पहले ही यह महसूस कर लिया था कि सुबोधता या स्पष्टता की दृष्टि से वह उनमें किसी से भी बढ़कर थे। इसमें श्रेष्ठता का भाव कतई नहीं था और वह यह इंगित करते हैं कि उनमें विरक्त वेदांती जैसी कोई बात कभी नहीं रही। केवल इतना ही होता कि जब वह अपने आस-पास के लोगों के साथ होते तो उन्हें उनसे कोई विशेष उम्मीदें नहीं होती थीं। यही बात उनके परिवार के लोगों से वार्त्तालाप करने के दौरान भी लागू होती है। ''मेरे आसपास बहुत-से लोग हुआ करते थे। उनमें से बहुत-से लोग मुझे प्रिय थे, किंतु भावनात्मक सहारे के लिए मैंने उनमें से किसी से मित्रता नहीं की। ऐसी जरूरत मुझे कभी महसूस भी नहीं हुई। मेरे जीवन में शायद हमेशा दो स्तर रहे हैं। एक स्तर पर मैं अपनी उम्र के अनुरूप रहना चाहता था। दूसरे स्तर पर मैं इतना बूढ़ा था, इतना बूढ़ा...'' वह लीक से हट जाते हैं, जाहिर तौर पर, स्वयं को बहुत ज्यादा आँकने के प्रति अनिच्छुक होने के कारण। कुछ देर रुकने के बाद वह कहते हैं, ''अधिकतर समय मैं उन्हें छाया सा, अद्र्ध प्रकाशयुक्त, अद्र्ध परछाई की आकृतियों की तरह यहाँ वहाँ आते-जाते देखा करता। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मेरा उनसे कोई लगाव ही नहीं था, क्योंकि ऐसा होना आध्यात्मिक प्रतीत होता है, किंतु मैं किसी भी तरह आध्यात्मिक नहीं था। वे मुझसे संबंधित थे, किंतु मैं उनसे संबंधित नहीं था। उस स्थिति को समझाने के लिए यही निकटतम भाव मैं व्यक्त कर सकता हूँ।''

शायद इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पाठक के तौर पर वह यूरोपीय साहित्य के प्रति आकर्षित हुए। ''मुझे चौदह वर्ष की आयु में 'कैमस दि आउटसाइडर' पढ़ना याद है, और यह काफी अंतरंग लगी। जिस तरह से इसका नायक उदाहरण के लिए, अपनी माँ की मृत्यु पर प्रतिक्रिया जाहिर करता है, उससे वह बहुत जल्दी समझ में आ गया। यदि माँ मर ही जाती हैं, जैसाकि होता भी है—तो इससे दुनिया तो खत्म हो नहीं जाती। अधिकतर लोग दु:ख की अपेक्षा अत्यधिक अपराध बोध से पीड़ित होते हैं। स्थिति को सँभालने की दृष्टि से हिंदू पद्धति में शोक संतप्तों को मृत्यु के तुरंत बाद बहुत से क्रियाकलापों में लगा देने का तरीका मुझे इसी कारण हमेशा काफी चतुराई भरा लगा।''

सात वर्ष की आयु में भी अपने दादाजी की मृत्यु पर अंतिम संस्कार के दौरान सभी क्रियाकलापों का प्रसन्नचित्त रहकर अवलोकन करने से उन्होंने शोकाकुल लोगों को अचंभे में डाल दिया था; ''लेकिन वह एक वृद्ध व्यक्ति है, उसे मरना ही है।'' क्या यह एक असंवेदनशील या अपवादस्वरूप बुद्धिमानीपूर्ण टिप्पणी थी? यह कोई भी तय नहीं कर सका। एक बैचेनी भरा सन्नाटा छा गया।

अपनी स्वाभाविक संवेदनशीलता के अतिरिक्त जग्गी के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में कुछ भी कायरतापूर्ण नहीं था। जहाँ एक ओर वह शांतिप्रिय स्वभाव के थे वहीं दूसरी ओर निष्क्रियता उन्हें पसंद नहीं थी। एक बार शाम के समय जब वह अपने पुराने मरफी रेडियो पर रेडियो ऑस्ट्रेलिया स्टेशन में पश्चिमी संगीत सुनने का प्रयास कर रहे थे, उन्हें कुछ परदे के छल्ले गिरने से उत्पन्न खनकने की ध्वनि सुनाई पड़ी। एक चोर जो चुपके से घर में घुस आया था, उनसे बारह फुट से भी कम दूरी पर खड़ा हुआ था। परदे धोने के लिए निकाल लिए गए थे और जब चोर ने दरवाजे की चौखट को पकड़ा तो कॉइल वायरों से ध्वनि उत्पन्न हुई। ''मुझे याद है, वह कद में बड़ा था, उसके पतलून घुटने तक मुड़े हुए थे।'' जग्गी की प्रतिक्रियाएँ उस चोर से भी त्वरित थीं।

वह स्टील का एक गमला उठाकर उसके पास पहुँचे और जोर से उसके सिर पर दे मारा। चोर एक क्षण के लिए जमीन पर बैठा और खड़ा हुआ। फर्श पर उसके जाने के बाद, बहुत-सा खून पड़ा हुआ था। जग्गी ने पड़ोसी के मकान से अपनी माँ को पुकारा और धीरे-से उसे उनके अप्रत्याशित आगंतुक के विषय में बताया। जहाँ एक ओर इस समाचार से उनकी माँ स्तब्ध रह गईं वहीं दूसरी ओर ग्यारह वर्षीय बालक अपने काम से संतुष्ट ऐसा नजर आ रहा था मानो कुछ हुआ ही न हो। ''मेरे क्रिकेट के अभ्यास का यह कमाल था।''

जीवन से जो भी सीख उन्होंने ली सभी व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित हैं, न कि किसी से उधार ली हुईं। उन्हें 17 वर्ष की उम्र में अपनी छत पर खाली हाथों से एक बंदर को मार डालने का कारनामा याद आता है। छेड़खानी? वस्तुत: बंदर ने उन पर आक्रमण कर दिया था। ''यह घटना मेरी माँ के मायके, चिक्काबल्लापुर की है। मैं छत पर था और यह

बंदर एक बिजली के खंभे पर बैठा हुआ था। वह मेरी ओर देखकर मुँह बिरा रहा था। मैंने भी उसे प्रत्युत्तर में मुँह बिरा दिया। अगले ही क्षण वह जानवर हवा में उछलकर सीधा मेरी ओर झपटा। यह सीधा आक्रमण था। मैंने उसका गला पकड़ लिया और कसकर तब तक पकड़े रहा जब तक मेरा अंगूठा वहाँ धँस नहीं गया। मैं उसी स्थिति में तब तक उसे पकड़े रहा जब तक वह पूरी तरह ढीला नहीं पड़ गया। बाद में मैंने उसे बगीचे में दफन कर दिया।'' परिवार में एक लड़के द्वारा हनुमान को मार डालने की चर्चा चल रही थी। लेकिन जग्गी के लिए इसमें कोई भी नैतिक उलझन नहीं थी। उसने वही किया था जो किया जाना था।

आठ साल की छोटी आयु में भी उनके दादा के घर में जब उन्हें दोपहर के भोजन के लिए एक मुर्गा मारने के लिए कहा गया तो इस आदेश का पालन करने में उन्हें जरा भी झिझक नहीं हुई। ''मेरे पिता के घर में चिकन बाजार से खरीदा जाता था। लेकिन मेरे दादाजी के घर में परिवार के छोकरों से मुर्गे को मार डालने की अपेक्षा की जाती थी। इसलिए मुझे एक मुर्गा मारने के लिए बाहर भेजा गया था। यह कार्य सरल था। आप जानवर के निश्चिंत होने का इंतजार करते हैं और फिर अचानक उसकी गरदन मरोड़ देते हैं। आप यह इतनी फुरती से करते हैं कि मुर्गे को अहसास ही नहीं होता कि वह मर गया। यह प्रक्रिया आशा से अधिक दुष्कर थी। इस हत्या के समय अचानक उत्पन्न होनेवाली ऊर्जा से भर जाना उन्हें याद है। इसके बाद जाकर वह कुछ देर के लिए अस्वस्थ से बैठे हैं। अब यह स्पष्ट हो गया कि किसी की जान लेने के काम में जैसा वह सोचते थे उससे भी अधिक की आवश्यकता होती है। ''यह कोई नैतिक प्रत्युत्तर नहीं था।'' वह कहते हैं, ''यह मात्र इतनी सी बात थी कि जीवन के इतने बड़े विस्फोट के लिए मैं तैयार नहीं था। इससे मेरा सिर चकराने लगा। यदि आपको किसी जानवर को मारकर खाना है तो मुझे लगता है कि बहुत कम मांसाहारी लोग रह जाएँगे।''

उनके असंवेदनशील दृष्टिकोण के साथ ही जानवरों के प्रति वास्तविक संवेदना भी उनमें विद्यमान थी, क्योंकि जिन्होंने उन्हें उनके पालतू कुत्तों के साथ देखा है, वे इस बात को सत्यापित करेंगे। जब उनके बचपन के समय का कुत्ता, रूबी (जो कि उनका था, न कि नैंसी जिसके साथ वे चारों हिले-मिले थे।) एक दर्दनाक चमड़ी के रोग से ग्रसित हो गया, तो जग्गी पिता की इस राय से सहमत नहीं हुए कि उससे छुटकारा पा लिया जाए। उन्होंने एक संभावित जड़ी-बूटी की चिकित्सा सीख ली। प्रतिदिन वह नजदीक की एक पहाड़ी से जड़ी-बूटियाँ तोड़ लाते, पीसकर उसका पेस्ट तैयार कर लेते और उसके शरीर पर लगा देते। वह कुत्ता अंतत: मर गया, किंतु उसकी मौत आवश्यक देख-रेख और इलाज के बगैर नहीं हुई। कई वर्षों बाद जब वह एक खेत के मालिक हुए, तो उनके पास एक जोड़ी बैल थे जो खेत जोतने में उनके मददगार थे।

''मैंने बैलों के पैरों में नाल न ठोकने का निर्णय लिया। मैं इस रूखे रवैये से घृणा करता था, उन्हें गिराकर, उलटा करके, पैरों में नाल ठोकना।'' लेकिन यह संवेदना उन्हें महँगी पड़ी। उन्होंने पाया की बैलों की एड़ियाँ घिस गई थीं और वे काफी कष्ट में थे। ''मेरे पास दो लँगड़े बैल थे जो काम नहीं कर पाते थे, किंतु मैंने उनके पैरों पर नाल ठोककर उन्हें रख लिया। अंतत: मैंने बैल और खेत बेच दिए। मैंने अपने बैलों को कसाईघर कभी नहीं भेजा। उनके बूढ़े और अयोग्य हो जाने पर भी मैंने उन्हें अपने पास रखा।''

बढ़ती उम्र में वह रोमांस में भी संलिप्त रहे। उन्नीस वर्ष की उम्र में उन्हें पड़ोस की एक मुसलिम लड़की से प्रेम हो गया। वे चोरी-छिपे अपने जादुई क्षण कविताएँ सुनाकर एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले बिताते थे। यह संबंध और तेजी से बढ़ता गया और कुछ वर्ष टिका रहा। किंतु यह गुप्त ही रहा और अन्य कई किशोर वय के संबंधों की तरह यह भी नहीं टिका। जब उसकी शादी कहीं और तय कर दी गई तो यह भी एकदम से समाप्त हो गया।

इससे उनके जीवन में जितना वह जानते थे, उससे कहीं बड़ा मोड़ आया। जहाँ इस घटना से उनकी अंदर की यात्रा में गति आई, वहीं उस समय यह एक दिल टूटने वाली बात थी जिसमें निराशा और खोने का भयंकर अहसास था। ''मैं मात्र दु:खी नहीं हुआ था, मैं तो बरबाद हो गया था। सबकुछ खत्म हो गया था। इससे मैं अपने भीतर एकदम नए

आयाम में पहुँच गया था। यदि आप आंशिक रूप से टूट जाते हैं तो इससे आपको दु:ख पहुँचता है। अवशेषों से दु:ख पहुँचता है। किंतु यदि आपको पूरी तरह धराशायी कर दिया जाए, तो आप स्वयं को एक खालीपन या शून्य में पाते हैं। तभी तुम्हें आभास होता है कि यह खालीपन नहीं है; यह तो तुम्हारे ही विचार हैं, तुम्हारी ही कल्पना है, जो कि टूट चुकी है।''

इस अलगाव के बाद उन्होंने स्वयं को संकुचित कर लिया। सप्ताह भर घर में चुपचाप रहे। किसी से बातचीत तक नहीं की, माँ के लिए उनका यह व्यवहार एक बड़ी चिंता का विषय बन गया। बाद में उन्होंने एक के बाद दूसरी कई अन्य युवतियों से रोमांस किया (जिनमें से कई उनकी प्रेयसी की मित्र रहीं)। मैंने कहा कि यह तो कुछ बदले की भावना सरीखा है। वह इस बात से सहमत नहीं हुए। ''कोई बदले की भावना नहीं थी। मैंने तुच्छताओं में लिप्त हो जाने को चुन लिया था। मैंने सोचा कि स्वयं को हर तरीके से क्यों नकार रहा हूँ? मैं स्वयं को उस चीज के लिए क्यों नकार रहा था जो अब रही ही नहीं? यदि मेरा यह रिश्ता नहीं चल रहा होता तो मैं ऐसा ही तो रहा होता। मैं बहुत घनीभूत हो गया था और यह शीघ्र ही गुजर गया। जब यह समाप्त हो गया तो मैं संवेदनहीन व गतिहीन-सा रह गया। सबकुछ ढह गया। शायद मैं कहीं यह महसूस करने लगा कि अपना जीवन किसी के या स्वयं के इर्द-गिर्द जीना व्यर्थ है। आप और दूसरा दोनों ही आपकी कल्पना की बातें हैं। मैं हमेशा सोचता था कि अपने स्वयं के इर्द-गिर्द जीवन खड़ा करना व्यर्थ था। और किसी और के चारों ओर जीवन खड़ा करना कुछ समय तक काफी सुखद लगा। किंतु अब मैंने देखा कि जीवन को जैसा होना चाहिए, यह ऐसा नहीं है। जीवन जीने के लिए है, न कि बनाने के लिए। इस अनुभूति से कोई निराशा या कुंठा नहीं हुई। मैंने पाया कि जीवन तो जारी है; आप जितना हो सकता है, उतना इसमें भाग लीजिए। किंतु 'मेरा जीवन' और 'तुम्हारा जीवन' की हमारी धारणा आपसे सभी चीजों के चारों ओर ऐसी संरचनाएँ तैयार करवाती है जिनका अस्तित्व ही नहीं होता।''

जब जग्गी अपने प्रेमप्रसंग की बाढ़ से बाहर आ गए, तो उनमें प्रेम की कहीं ज्यादा गहरी एवं ज्यादा परिपक्व समझ थी—ऐसा बोध जो कि न तो असंभव था, न पुरातनवादी। अब उनका अपना असफल प्रेम भी उनके लिए छिपे रूप में वरदान सिद्ध हुआ। ''जितना जल्दी उसने (प्रेयसी) यह संबंध तोड़ दिया उसके लिए मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। नहीं तो मैंने अपना संपूर्ण जीवन इसी तरह बिताया होता। बाद में मैंने अपने संबंधों में प्रेम, जुड़ाव और प्रतिबद्धता बनाए रखी किंतु उनके इर्दगिर्द अपना जीवन कभी भी नहीं बनाया।''

एक बार देर रात तक आराम से चलनेवाली बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे बताया कि उनकी पहली महिला मित्र (गर्लफ्रेंड) का रूपरंग किसी एक ऐसी औरत से बिलकुल मिलता-जुलता था जिसे वह तीन जन्मों पूर्व काफी करीब से जानते थे। काफी बाद में उन्हें महसूस हुआ कि उसकी ऊँचाई और बनावट बिलकुल शांभवी जैसी थी, जो सपेरा बिल्वा के जीवन में आई थी। मैंने उनसे पूछा कि क्या, किसी स्तर पर, इस संयोग ने किसी ऊर्जा स्तर पर उन्हें उलझन में डाल दिया था? क्या यही वजह थी कि इस जीवनकाल में भी वह उसके प्रति खिंचाव रखते थे? एक क्षण के लिए वह रुके और इसे पुनर्जन्म का रसभरा रोमांस न समझने के लिए सचेत किया। ''उस समय यह संबंध ही मेरे लिए सबकुछ था'', उन्होंने धीरे से कहा, ''मैं इससे दूर नहीं जाना चाहता। आइए पिछले जीवनकाल की बातें न करें।''

वह स्वीकारते हैं कि अब उन्हें मैसूर के कॉलेज के समय के पुराने मित्रों से मिलकर बड़ा अटपटा लगता है। कुछ लोग अपने कैरियर में सफल रहे हैं, जबकि कुछ उतने सफल नहीं हो सके। लेकिन जो बात उन्हें खटकती है वह यह है कि वे सभी दुनियादारी से कितने थकित और कितने निर्जीव से जान पड़ते हैं।

वह उन सभी को काफी फुर्तीले युवक के रूप में याद करते हैं। कुछ की तो खूबसूरत लड़कियों पर नजर रहती थी। किंतु अब काम के बोध से, पारिवारिक जिम्मेदारियों से व वयस्कता के साज-सामान के कारण ऐसा लगता है जैसे जीवन के प्रति उनका उत्साह ही समाप्त हो गया हो। जहाँ तक उनकी (मित्रों) बात है, वे उनके (जग्गी) सम्मान के प्रति काफी सजग हैं। मित्र से आध्यात्मिक स्वामी बने व्यक्ति से मिलकर, बात करके वे उनकी (जग्गी) जीवन के प्रति मस्ती

को देखकर विचलित हो जाते हैं। यह किसी भी तरह उनकी गुरु के प्रति धारणा से मेल खाता महसूस नहीं होता। इस प्रक्रिया में वे बीते समय की सहज मित्रता को पुनर्जीवित करने में अक्षमता महसूस करते हैं। सद्गुरु कहते हैं, ''मजे की बात यह कि इसमें मैं तो नहीं बदला लेकिन वे बदल गए।''

वह कहते हैं, ''जब हमारी मुलाकात होती है तो वे काफी असहज हो जाते हैं। मैं तो बिलकुल ठीक हूँ, पहले से भी ज्यादा जीवंत हूँ। लेकिन वे सामान्यत: बहुत गंभीर हो गए हैं। उनके पास परिवार, बच्चे, काम-धंधे और आप समझ लीजिए, वह सब है जिसे वे खुशी का साधन समझते थे, किंतु वही सब आज बोझ बन गए हैं।'' वह हँसते हुए आगे कहते हैं, ''और उन्हें विश्वास नहीं होता कि मैं अब भी हँसता हूँ और मजाक करता हूँ और बातें करता हूँ। ऐसे समय वे अपनी सिगटेर निकाल लेते हैं और पूछते हैं—क्या तुम सिगरेट पीते हो?''

''मैं कहता हूँ, 'नहीं।'

'अरे, तो तुम सिगरेट नहीं पीते। ठीक है।'

''तब उन्हें थोड़ा झिझक-सी होती है कि वे सिगरेट पीएँ या न पीएँ। और मैं कहता हूँ, 'आप लोग शुरू कीजिए। इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता।'

'तुम सिगरेट नहीं पीते और शराब भी नहीं लेते।'

'नहीं, मुझे कभी इनकी आवश्यकता महसूस हुई ही नहीं।'

'ओह तो तुमने सबकुछ छोड़ दिया है।'''

वह पुन: हँसते हैं। ''जरा इस बोध को देखिए; लोग वास्तव में यही मानते हैं कि यदि आप सिगरेट नहीं पीते, यदि आप शराब नहीं पीते, तो आपने सबकुछ छोड़ दिया है।''

अपनी अनियमित उपस्थिति व शिक्षा के प्रति असंगत दृष्टिकोण के बावजूद जग्गी स्नातक हो गए। उन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य में दूसरा स्थान भी हासिल कर लिया। यह कुछ ऐसा था कि जो उन्हें जानते थे वे हतप्रभ रह गए, वह स्वयं हतप्रभ थे। अनिवार्य रूप से अब 'आगे क्या' वाली बात परिवार में उठी। इसमें मास्टर डिग्री लेने की चर्चा हो रही थी। लेकिन जग्गी ऐसा नहीं चाहते थे। उन्होंने अपने माता-पिता को बता दिया कि पाठ्यक्रम में सम्मिलित सभी पुस्तकें वह पहले ही पढ़ चुके थे। अब वह अपनी आजीविका कमाएँगे और मोटरसाइकिल पर विश्वभ्रमण का लंबे समय से सँजोया सपना पूरा करेंगे। ''लेकिन आजीविका कमाने की क्या योजना है?'' उनके माता-पिता ने सावधानी से पूछा। वे जग्गी के विस्फोटक जवाबों के लंबे समय से आदी हो गए थे। लेकिन इस विस्फोटक जवाब के लिए वे बिलकुल तैयार नहीं थे। ''मुर्गी पालन'', उनके बेटे ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

और उनका अभिप्राय भी यही था। ''तब तक मैंने पूरे देश में भ्रमण कर लिया था। जब मैं नेपाल सीमा पर पहुँचा तो मुझे मालूम हुआ कि आगे जाने के लिए मुझे कागजातों (दस्तावेजों) की जरूरत थी। तब तक मुझे यही लगता था कि अपनी मोटर साइकिल से मैं कहीं भी पहुँच सकता था। लेकिन सीमा पर तैनात व्यक्तियों ने कहा, 'नहीं, जब तक आपके पास ये कागजात नहीं हैं, आप नहीं जा सकते।' वे कौन-से कागजात की माँग कर रहे थे, मुझे मालूम नहीं था। मेरे पास मेरी मोटरसाइकिल का पंजीयन और मेरा लाइसेंस था, लेकिन उतना पर्याप्त नहीं था। तभी मैंने सोचा, ठीक है, जहाँ मुझे जाना है वहाँ पहुँचने के लिये मुझे किसी और चीज की आवश्यकता है। तभी से मैं इसका ख्वाब देखता रहा। मैंने कहा, एक बार यदि मेरे पास पर्याप्त पैसा हो जाए तो मैं ऐसी जगह सवारी करूँगा जहाँ लोग मुझे रोक न सकें। मुझे जल्दी में कुछ पैसे कमाकर जाना था। उस समय पोल्ट्री कार्मिक का बड़ा बोलबाला था इसलिए मैं इसमें कूद पड़ा। मेरे पिता ने कहा, 'मैं लोगों को क्या बताऊँगा कि मेरा बेटा मुर्गी पाल रहा है?' मैंने कहा, 'यह आपकी समस्या है।' मैंने स्वयं अपना पोल्ट्री फार्म तैयार किया, बड़ी मेहनत से।''

यह ढाई एकड़ का फार्म मैसूर के सुदूर भाग में 12 किलोमीटर की दूरी पर था। जग्गी के काम की शुरुआत पौ फटते हुआ करती और देर रात तक खत्म होती। कई ऐसे भी मौके आए कि देर हो जाने के कारण उन्हें मजबूरन रात घर से

बाहर बितानी पड़ी, क्योंकि वह घरवालों को परेशान नहीं करना चाहता था। प्रथम छह महीने कठिन परिश्रम के थे और वह इसके लिए तैयार था। उन्होंने बड़ी मेहनत से 3,200 मुर्गियों के लिए पिंजरे बनाए। इस काम के दौरान उसके हाथों से खून भी बहने लगता था। पैसा बचाने के लिए वह दिनभर केले खाकर ही रह जाते। उन्होंने पूरक आमदनी के लिए एक चतुराई की जुगत भिड़ाई। वह सुबह-सुबह शहर में सड़क के किनारे लगे पेड़ों की गिरी लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेते और ईंट बनाना शुरू कर देते। इससे वे उस दौर में मैसूर शहर के काफी सफल ईंट निर्माता बन गए थे। यह पैसा कमाने का सहज तरीका लगा। उन्हें काफी विस्मय हुआ कि यह योजना किसी और के दिमाग में क्यों नहीं आई। इससे उनके दिमाग में बहुत समय से चली आ रही अटकल पूरी हुई कि जनसमूह यदि पूरी तरह मूर्ख नहीं है तो कुंद तो है ही।

शीघ्र ही यह व्यवसाय चल पड़ा। मुनाफा बढ़ने लगा। वसुदेव परिवार को विश्वास ही नहीं हुआ कि उनका बिगड़ैल बच्चा रातो-रात सफल व्यवसायी बन गया है। जीवन बड़े सरल तरीके से चल रहा था। जग्गी प्रतिदिन सुबह के चार घंटे पोल्ट्री व्यवसाय में बिताते थे। शेष दिन कविताएँ लिखने और पढ़ने, कुएँ में तैरने, पेड़ों पर चढ़कर दिवास्वप्न देखने, अपने खेत में निर्मित किए ग्रामीण परिवेश का मजा लेने में बीत जाता। ''तेरह वर्ष की उम्र से मैं आसन और प्राणायाम कर रहा था। अब मेरे जीवन में ध्यान भी समाहित हो गया था। इसलिए मैं या तो ध्यानमग्न रहता था या पढ़ाई-लिखाई किया करता था। पोल्ट्री फार्म में अंडों का उत्पादन होता जा रहा था, पैसे आते जा रहे थे। सुबह के काम से निबटने के बाद मैं जाकर बरगद के पेड़ पर सबसे ऊपर चढ़कर बैठ जाया करता था। आँख बंद करके यदि मैं वहाँ बैठ जाता, तो मुझे पता ही न रहता कि क्या हुआ। मैं घंटों उस पेड़ के आसपास ही रहा करता था। पोल्ट्री फार्म व्यवसाय के दिन बड़े खूबसूरत थे। मैं जी भरकर पढ़ सकता था। मैं बहुत-सी कविताएँ लिख रहा था। कोई भी मेरे पास आकर मुझे परेशान नहीं करता था। कई दिनों तक मैंने एक या दो श्रमिकों के अलावा किसी आदमी का चेहरा नहीं देखा। यह एक अच्छी जिंदगी थी।''

उनका ठिकाना दूर था इसलिए कुछ ही लोग उनसे मिलने आते थे। इस वजह से यह सरीसृपों के रख-रखाव हेतु एक आदर्श स्थान था। बहुत जल्द ही उन्होंने एक फूलती-फलती सर्प कॉलोनी तैयार कर ली। हर सुबह उठना एक धीमी प्रक्रिया हो गई। उन्हें इस बात के प्रति सावधान रहना पड़ता था कि उनके बिस्तर पर या आसपास होनेवाले लगभग दो दर्जन कोबरा और वाइपरों को कोई परेशानी न हो। वह कहते हैं कि सर्पों के साथ रहकर उन्होंने योग की बहुत-सी जानकारियाँ हासिल कीं। उनकी उपस्थिति का मतलब यह सीखना होता था कि बिल्कुल स्थिर एवं पूर्ण सचेत कैसे रहें।

''मेरे सोने के कमरे में लगभग बीस से पच्चीस सर्प थे।'' वह कहते हैं, ''जहाँ मैं सोता था, भोजन बनाता था और अपनी कुछ पुस्तकें रखता था, वह काफी बड़ा कमरा था। खेत में वही एकमात्र कमरा मेरे रहने की जगह थी। और ये सर्प वहाँ हर जगह रहा करते थे। सबके सब जहरीले सर्प थे, सामान्यत: कोबरा। कभी-कभी वाइपरों से मैं कोबरा की अपेक्षा ज्यादा सतर्क रहता था क्योंकि कोबरा के काटने के बाद आपके पास पर्याप्त समय रहता है। यह लगभग छह घंटे का समय आपको देता है। जबकि वाइपर के काटने पर आपके पास मात्र ढाई से तीन घंटे का समय होता है। कोबरा के काटने पर तो आपका शरीर कुछ देर काम कर सकता है, किंतु वाइपर के काटने पर आप देखते ही देखते लकवाग्रस्त-से हो जाते हैं। मेरे पास दोनों थे, किंतु ज्यादातर कोबरा ही थे, क्योंकि कोबरा अपेक्षाकृत ज्यादा खूबसूरत सर्प होता है। यह कुछ गर्वीला, कुछ अपने आप में शानदार होता है। तो जब आपके कमरे में कई सर्प हैं तो आपको यह पता ही नहीं होता कि वे कहाँ होंगे। साँप सर्वाधिक असंभव लगनेवाली छोटी-सी दरार में भी प्रवेश कर सकता है। प्राय: जब मैं सो जाता तो वे मेरे कंबल के नीचे भी घुस जाते थे। और यदि मैं सुबह जल्दी या आधी रात को सोकर उठता तो अपने कंबल पर एक-न-एक साँप चलते हुए पाता था। इसका तात्पर्य यह था कि मुझे काफी सावधान रहना पड़ता था, एक भी गलत कदम उठता कि वह काट लेता। आप यह नहीं जान पाते कि उसका सिर कहाँ है और उसकी पूँछ कहाँ है। वह कपड़े में ढका रहता। तो मेरे जागरूक बने रहने के संदर्भ में यह बड़ा व्यायाम था। मुझे पूर्ण जागरूकता या सतर्कता में हिलना-डुलना सीखना पड़ा। सावधान रहना पड़ता था कि यदि मुझसे हलका सा झटका भी लग गया तो वह मेरे लिए

घातक हो सकता था।''

यह जंगलीपन चलता रहा। यह, जैसा कि वह हमेशा कहते हैं, ''नीली जींस और 'बीटल्स' का युग था।'' अब जग्गी अपनी स्वयं की मोटरसाइकिल के मालिक थे। जिस पर सवारी करने के दौरान उनके द्वारा किए जानेवाले करिश्मे लगभग रोंगटे खड़े कर देनेवाले होते थे। चुनौती स्वीकारने में सदा आगे रहनेवाले जग्गी मैसूर-हंसूर हाइवे पर टिंबर ट्रकों के पहियों के बीच खतरनाक ढंग से सवारी करते थे। इन टिंबर ट्रकों की साइड बॉडी नहीं होती है, मात्र टिंबर ही होता है और घूमते हुए सामने और पीछे के दो पहियों के बीच रिक्त स्थान होता है। ''तो मैं दोनों के बीच अपनी मोटर साइकिल ले जाता था और बाहर आ जाता था। यदि आपसे थोड़ी भी चूक हुई तो आप सड़क पर ही पलस्तर की तरह चिपके रह जाएँगे। किंतु मैं और मेरे मित्र बिना प्रयास के अनेकों बार इसके अंदर जाकर बाहर आ जाते थे।''

नजदीक की चामुंडी हिल इनकी पसंद की जगह थी जहाँ ये बार-बार जाया करते थे। ''चामुंडी पर मोटरसाइकिल चलाना मानो हमारा धर्म था। रात को हम मोटरसाइकिल पर ऊपर चले जाते और रातभर पहाड़ी पर ऊपर-नीचे मोटर-साइकिल पर सवारी किया करते थे। एक दिन मैंने सोचा कि सड़क पर सवारी ही क्यों? मैं पर्वत की सड़क से हटकर भी सवारी करूँगा।'' उन्होंने तय किया कि चामुंडी हिल से नीचे का रास्ता सबसे तेज और सर्वाधिक मजेदार होगा। इसका तात्पर्य रास्ते से दूर रहना था। और इसका तात्पर्य पूरी गति से पेड़, झाड़ियों और वृक्षों के नीचे उगी हुई बहुत सी झाड़ियों के बीच से सवारी करना था। एक बार तो उनकी इस यात्रा में भयंकर और अचानक अवरोध तब खड़ा हो गया जब उनकी मोटरसाइकिल एक शाखा से जा टकराई, किंतु उन्होंने स्वयं को सँभाला और अपने मिशन को, पूरा किया। जब वह बाहर आए तो खून से लथपथ किंतु विजेता थे। टूटी हुई अनामिका (अँगुली) इस उल्लासोन्माद का एक तुच्छ पुरस्कार प्रतीत हुई।

किसी समय उनके मोटरसाइकिल सवार मित्रों को हो-हुल्लड़ में ही एक कम्यून स्थापित करने की सूझी। इस प्रोजेक्ट के सपने को पूरा करने के लिए उन्होंने सौ एकड़ क्षेत्रफल का एक भू-खंड तलाशना शुरू कर दिया। ''हमने इमारती लकड़ी का व्यापार करनेवाले अपने एक मित्र की जमीन देखी, जो जंगली क्षेत्र था। यह दो या तीन सौ रुपए प्रति एकड़ की दर से मिल रही थी। हमने एक समुदाय शुरू करने की योजना बनाई—जहाँ सभी युवा लोग जाकर साथ रहेंगे।''

इसकी कार्य योजना जान-बूझकर कुछ अराजकतापूर्ण बनाई गई। कोई नियम-कानून नहीं होंगे, बाहरी तौर पर कोई भी बलात् अनुशासन नहीं होगा। यह अपने आप में एक संभ्रांत और ऊँची सोचवाला कदम था। किंतु ऊँचे इरादों और व्यावहारिक दृष्टि से शून्य रहनेवाली सभी अन्य योजनाओं की तरह यह योजना भी मूर्त रूप नहीं ले सकी। इसके अनेक सदस्यों में से—बाद के जीवन के मद्देनजर कुछ का जीवन विभिन्न तरह के दुरुपयोगों के कारण नष्ट हो गया। सद्गुरु निराशा के भाव से कहते हैं, ''कुछ सपनों का साकार न होना भी वरदान ही है।''

उन्हें स्मरण आता है, ''दस में से लगभग एक तो हर समय शराब के नशे में रहता था। अन्य पाँच से दस प्रतिशत गाँजा या कुछ और पिया करते थे। वे अच्छे लोग थे, किंतु किसी तरह उन्हें इस तरह की लतें लग चुकी थीं। मैं उनकी संगति में बहुत रहा लेकिन मुझे इस तरह के कृत्य में शामिल होने की कभी इच्छा भी नहीं हुई। न तो मैंने इन्हें नजरअंदाज किया, न ही कभी इनके पीछे गया। ऐसा भी नहीं है कि किसी नैतिक भय से मैंने अपने आपको रोके रखा। न ही मैंने यह सब करने की कभी सोची। इसकी वजह शायद यह थी कि मैं अपने आप में ही इतना खोया हुआ था कि इनमें से कुछ करने की मुझे जरूरत ही महसूस नहीं हुई। यदि मैंने इन सभी लोगों का एक समुदाय बना दिया होता तो मैं कल्पना कर सकता हूँ कि वे इसे कहाँ ले जाकर खड़ा कर देते।''

अपने क्षेत्र में मिली सफलता से जग्गी और ज्यादा साहसी बन गए। उन्होंने इसके विस्तार का निर्णय लिया। वह स्वीकार करते हैं कि लगभग इस समय उन्होंने अपने जीवन की पसंद को कुछ सामाजिक अपेक्षा के अनुरूप निर्धारित करना चाहा। ''मात्र यही समय था जब मैंने सामाजिक स्थिति के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दी और थोड़ा जीवन के साथ जुड़ गया। मेरे पिता हमेशा इसी बात का रोना रोते थे कि हर किसी के बेटे, कुछ न कुछ बन गए—कोई इंजीनियर, कोई

उद्योगपति, कोई आई.ए.एस., कोई अमेरिका चला गया। और हर कहीं, जिस किसी से भी मेरे मित्र, सगे-संबंधी, स्कूल व कॉलेज के मेरे पुराने शिक्षक—मैं मिलता, वे कहते, 'अरे हम तो सोचते थे कि तुम अपने जीवन में कुछ बनोगे, करोगे, लेकिन तुम तो इसे यों ही नष्ट कर रहे हो।' धीरे-धीरे यह बात मुझे चुभने लगी। मैंने तय किया—ठीक है, मैं कुछ करता हूँ।''

अपने एक सिविल इंजीनियर मित्र के साथ साझेदारी में उन्होंने भवन निर्माण व्यवसाय में प्रवेश किया। परिवार ने इस पर अपना अविश्वास व्यक्त किया। अब क्या? क्या यह नई योजना कारगर होगी? यह सफल हुई। ''पाँच वर्ष में ही हम मैसूर के अग्रणी निजी ठेकेदारों के बीच एक बड़ी निर्माण कंपनी के रूप में उभरे। हम एक छोटे पैमाने का उद्योग चला रहे थे। हम मात्र दो युवक थे, और हर कोई हमसे रोमांचित था। अब, हम अच्छा पैसा कमा रहे थे। मेरे पिता बहुत खुश थे। आप डॉक्टर हैं या नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप अच्छा कर रहे हैं, इसी की कीमत है। और, अच्छा कर रहे हैं का तात्पर्य है आप अच्छी कमाई कर रहे हैं।''

अब लगा कि मोटरसाइकिल पर विश्वभ्रमण का जग्गी का सपना साकार होने को है। जीवन इतने आराम से चल रहा था, वह प्राय: बड़े उत्साह से कहते हैं कि कभी-कभी तो उन्हें लगता कि धरती सूर्य के बदले उन्हीं के चारों ओर परिक्रमा कर रही है। ऐसा महसूस होता था कि कुछ भी गलत नहीं होगा।

और तभी, कुछ हुआ। एक दिन जग्गी की योजनाएँ खिड़की से उड़कर बाहर चली गईं।



'जो कभी निचले पायदान की ओर नहीं लौटा'

फटफटिया चालक से रहस्वादी तक

वह दिन भी अन्य किसी दिन की तरह था, कोई शकुन सूचक अद्‌भुत घटना नहीं हुई, देवदूत या फरिश्तोंवाले कोई स्वप्न नहीं आए। 23 सितंबर, 1982 का दिन जग्गी के जीवन का एक व्यस्त दिन था। उन्होंने अपना उपमा का नियमित नाश्ता (उन्होंने मेरे यह पूछने पर स्मरण किया कि ऐसे महत्त्वपूर्ण दिन की छुट-पुट बातें उन्हें याद हैं या नहीं।) किया और कामकाज की मीटिंग के लिए निकल पड़े। कुछ ही दिन पहले एक बड़े ठेके पर हस्ताक्षर किए गए थे। उन्हें एवं उनके व्यावसायिक साझीदार को बहुत कुछ विचार विमर्श करना था। दोपहर को अपने साझेदार को आराम करने के लिए छोड़कर, जग्गी भोजन करने घर चले गए। उस दिन के प्रमुख व्यंजन उन्हें अभी भी याद हैं; बसीदा-सारू, कर्नाटक का विशेष व्यंजन, जिसका एक प्रकार आंध्र में भी है (जिसे तैयार करने में उनकी माँ को महारत हासिल थी।)। अभी दो बजकर तीस मिनट ही हुए थे। अगली मीटिंग होने काफी देर बाद होनी थी।

मोटरसाइकिल की सवारी जग्गी की अनिवार्य पसंद थी। उन्होंने अपनी पहली मोटरसाइकिल कुछ वर्ष पहले ही ली थी। स्कूल के दिनों में साइकिल चलाने, चोरी-छिपे जब-तब अपने पिता का स्कूटर चलाने और अपने स्कूल व कॉलेज के दिनों में भाई की मोटर साइकिल चलाने के बाद, यजदी मोटरसाइकिल उनकी पसंदीदा चीज थी। वह इसका रख-रखाव बड़े उत्साह से करके इसे अच्छी स्थिति में रखते थे। अब उनके बहुत से मित्र हुआ करते थे जो मोटरसाइकिल के शैतान थे और उनमें भी उनके (जग्गी) उन्मत्त साहसिक कार्यों का जोश था। लेकिन उनमें से कोई और अपने साहसिक कारनामों को अंत तक ले जाने का इतना निश्चयी नजर नहीं आता था। यदि किसी रात जग्गी गोवा जाना तय कर लेते तो वह तुरंत निकल पड़ते। अपने साथ जानेवालों की राह देखने का सवाल ही नहीं था। जग्गी जानते थे कि योजना बनाने का अर्थ अंतहीन हील-हवाला ही होता, और इसके लिए उनमें धैर्य नहीं था। ''लोग आपके साथ केवल उतनी दूर चलने को राजी होते हैं जितना उनके लिए सुविधाजनक है। जब उनके आराम की सीमा खत्म हो जाती है, वे साथ छोड़ देते हैं। बहुत कम लोग ही पूरा साथ निभाते हैं। किंतु मैं सदा से ऐसे लोगों में से हूँ जो एक बार कटिबद्‌ध हुए तो सारे सफर तक साथ रहते हैं।''

उनकी साँपों और मोटरसाइकिल के प्रति धुन के साथ उनके दुस्साहसी मिजाज के कारण अपने मित्रों के बीच उन्हें डेडली जग्गी का उपनाम मिला था। वह कहते हैं, ''ऐसा नहीं है कि मैं आवेगशील प्रवृत्ति का था, मैं मात्र जीवन के प्रति झुकाव रखता था। मैं अपने कर्मों के परिणाम की नापतौल कर लेता था। और वे जितने खतरनाक होते, मुझे उतना ही अपनी ओर खींचते थे। एक बार किसी ने मुझे कहा कि मेरे अभिभावक देवदूत बहुत अच्छे होंगे और निरंतर कार्य करते होंगे। मुझमें हमेशा से सीमाओं को आजमाने और छोर (अंत) से आगे निकल जाने की लालसा रही है। 'क्या' और 'क्यों' मेरे लिए कभी भी सवाल नहीं रहे। 'कैसे' ही एकमात्र प्रश्न था। अब जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, मुझे महसूस होता है कि मैंने जीवन में यह कभी नहीं सोचा कि मुझे क्या बनना है। मैंने केवल इतना सोचा कि मुझे अपना जीवन कैसे जीना है। और मैं जानता था कि कैसे का निर्धारण आपके स्वयं के भीतर और आपके स्वयं के द्‌वारा ही हो सकता है।''
चामुंडी हिल्स, युवा मैसूरवासियों का पसंदीदा गंतव्य था, जो कि प्रत्येक पर्यटक यात्रा का अनिवार्य पड़ाव व शहर के परिदृश्यात्मक नजारे व मनोरम चामुंडेश्वरी (मैसूर महाराजाओं की रियासत की देवी) शक्ति मंदिर के लिए प्रसिद्‌ध है। जग्गी इस पहाड़ी से भलीभाँति परिचित थे। वह वहाँ बचपन से मौज मस्ती में भ्रमण करने जाते थे। कई वर्षों पूर्व यहीं उन्हें एक जहरीले सर्प ने काटा था। इन्हीं ढलानों के नीचे उन्होंने अपनी मोटरसाइकिल पर सवारी की थी। हाल ही में उन्होंने पहाड़ी पर व्यावसायिक बैठकों का संचालन किया था। देर रात की सवारी व पार्टियाँ रोजाना की बातें थीं। किसी

अज्ञात कारण से पर्वतों की ओर हमेशा से जग्गी का खिंचाव रहा था। प्रारंभिक अवस्था से ही उनकी नजरों के आगे पर्वत रहा करते थे। एक विशेष पर्वत ने उनके दृष्टिकोण पर काफी प्रभाव डाला। इसके बारे में वह बहुत विचार नहीं करते थे। वह सामान्यत: यह मान लेते थे कि दूसरों को भी वैसा ही भू-भाग नजर आता था।

अभी जग्गी की अगली मीटिंग शुरू होने में एक घंटा शेष था इसलिए वह पुन: चामुंडी की ओर मुड़ गए। ''मैसूर में एक रिवाज है। यदि आपके पास कुछ करने को है तो चामुंडी हिल जाइए, यदि आपके पास कुछ करने को नहीं है, तो चामुंडी हिल जाइए। यदि आपको प्रेम हो जाए तो चामुंडी हिल जाइए, यदि आपका प्रेम असफल हो जाए, तो चामुंडी हिल जाइए। हाल ही में मैं अपने प्रेम में असफल हो गया था, और मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं था, इसलिए मैं चामुंडी हिल चला गया।''

आगे क्या हुआ उसका सार वह इस तरह बताते हैं; ''मैं ऊपर चढ़ा और नीचे नहीं उतरा।'' जब अंतत: वह लौटे भी तो पाँच घंटे बाद। ऊपर चढ़े तो एक युवा-खुशमिजाज मोटरसाइकिल प्रेमी थे और लौटे तो, एक रहस्यवादी संत।

''मैं इस विशेष चट्टान पर बैठा हुआ था'', उन्होंने वर्षों बाद बताया, 'मेरी आँखें खुली हुई थीं, बराबर बंद नहीं थीं। मैंने देखा दस मिनट ही हुए होंगे, कि मुझे कुछ होने लगा। अपने संपूर्ण जीवन में मैंने सोचा था, यह मैं हूँ (स्वयं की ओर इशारा करते हुए।)। यकायक मुझे मालूम ही नहीं था, कौन मैं था, और कौन मैं नहीं था। जिस हवा में मैं साँस ले रहा था, जिस चट्टान पर मैं बैठा हुआ था, मेरे चारों ओर का वातावरण सबकुछ मैं हो गया था। मैं जितना कहूँगा, उतना ही सनकी लगूँगा, क्योंकि जो हो रहा था, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। जो मैं था वह काफी विशाल हो चुका था, वह हर कहीं था। मुझे लगता है कि यह स्थिति मिनटों तक कायम रही किंतु जब मैं अपने सामान्य होश में आया तो शाम के साढ़े सात बज चुके थे। मेरी आँखें खुली थीं, सूर्य अस्त हो चुका था, और अँधेरा हो चुका था। मैं पूरी तरह होशो-हवास में था लेकिन उस क्षण तक मैंने स्वयं को जो समझा था, विलुप्त हो गया था। जब मैं आठ साल की आयु का था—मुझे वह घटना अच्छी तरह याद है, कुछ हुआ था। और मैं रोने लगा था—उसी दिन मैंने यह संकल्प किया था कि मैं कभी रोऊँगा नहीं। मैं स्वयं को इस तरह (बँधी हुई मुट्ठी दिखाते हुए) थामे रहा, और जो भी स्थितियाँ आईं, मैंने एक भी आँसू नहीं बहाया, आठ वर्ष से पच्चीस वर्ष की उम्र तक। और यहाँ मैं बैठा हुआ हूँ, आँसू वहाँ तक बह रहे हैं जहाँ मेरी कमीज गीली है और मैं हर्षोन्माद में हूँ। मैं नहीं जानता क्या हो रहा है। मैं सदा शांत और खुश रहा हूँ यह कोई मुद्दा ही नहीं रहा है। मैंने जैसा चाहा वैसा जीवन जिया। लेकिन यहाँ मैं एकदम नए प्रकार की सुखद अनुभूति कर रहा हूँ। जब मैं अपने तार्किक दिमाग का प्रयोग करता हूँ तो मुझे यही बात ज्ञात होती है कि मैं अपना संतुलन खो रहा हूँ। बस इतना ही मेरा दिमाग मुझे बता सकता है। लेकिन यह इतना सुखद है कि मैं इसे खोना नहीं चाहता।''

सद्गुरु चामुंडी हिल की उस दोपहर के विषय में इससे ज्यादा कुछ नहीं कहते। उस अनुभव को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसे शब्द ही नहीं हैं। फिर भी थोड़ा दबाव डालने पर उन्होंने उस अनुभव के विषय में परोक्ष रूप से संकेत किया। ''यह कुछ इस तरह है कि एक बूँद शराब पिए बगैर कोई हर समय शराब के नशे में रहे।'' उन्होंने एक बार कहा था। एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा, ''जीवन वही है, जो यहाँ है। न कोई पर्वत है, न फूल, न बादल, कुछ भी नहीं। यह ऊर्जा मात्र है—ऊर्जा का एक अपरिपक्व स्पंदनशील पिंड। आप इसे सृष्टिकर्ता या सृष्टि कह सकते हैं। या आप इसे स्वयं कह सकते हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता।'' एक अन्य मौके पर उन्होंने कहा, ''निर्वाण कोई उपलब्धि नहीं है। यह घर लौटने की तरह है। पूरी तरह घर लौटना, यही निर्वाण है।''

एक अन्य मौके पर उन्होंने कहा, ''इसका तात्पर्य है जीवन जैसा है उसे वैसा देखो। तुम सबकुछ हटा दो—सभी काव्य, सभी विनियोग—और आप जीवन को वैसा देखते हैं, जैसा यह है। आप महसूस करते हैं कि यह बहुआयामी है। आप महसूस करते हैं कि यदि आप जीवन के पूरे क्षेत्र का आनंद नहीं लेते हैं, तो यह जीने का मूर्खतापूर्ण तरीका है। इसमें कोई, 'यह है, वह है,' नहीं है। इसमें कोई यह या वह नहीं है। इसमें कोई हाँ या ना नहीं है। केवल हाँ और हाँ है।''

एक अन्य अवसर पर उस ऐतिहासिक दोपहर के बाद से उनकी अंतर्मन की अवस्था के विषय में पूछा गया तो उन्होंने कहा, ''अब मैं पूरी तरह नकली हूँ। आप केवल आधे नकली हैं। मेरा व्यक्तित्व पूरी तरह स्वनिर्मित है। यह एक अभिनय जैसा है।'' और क्या झूठ के पीछे झूठ बोलनेवाला भी है? उन्होंने कहा, ''नहीं, केवल झूठ है, झूठ बोलनेवाला नहीं।'' 'तो इस अभिनय के पीछे क्या है' मैंने पूछा। तो उनका रहस्यमय उत्तर था; ''अनियंत्रित खालीपन।''

उनके पूर्व के वे सभी व्यक्तित्व जिन्होंने सांसारिक और पारलौकिक के बीच की ड्योढ़ी पार की है, उनके लिए उस अनुभव के लिए तार्किक शब्दों का प्रयोग असंभव रहा है। इसके अलावा उनकी जागृति के समय जग्गी के लिए यह निश्चित नहीं था कि इसका वर्णन कैसे करें। केवल एक बात उस पर्वत से नीचे उतरनेवाले युवक के लिए साफ थी; जीवन वैसा कभी नहीं होगा।

जग्गी जब ऑफिस पहुँचे तो रात के आठ बज चुके थे। वह ठिठके। खिड़की से वह अपने साझीदार को मेज पर बैठा देख रहे थे। उनके साझीदार ने आशापूर्वक उनकी ओर देखते हुए सोचा कि वह अंदर आकर पाँच घंटे के विलंब का कारण बताएँगे और उस दिन की काररवाई की जानकारी हासिल करेंगे।

यजदी का इंजन चालू था। जग्गी लगभग दस मिनट तक मोटरसाइकिल पर बिना उतरे बैठे रहे। उसके पश्चात् वह मुड़े और चले गए। उनके साझीदारे मित्र यह सब देखकर घबरा गए। वह शहर की चिरपरिचित सड़कों पर कुछ देर धीमी गति से सवारी करते रहे। सबकुछ वैसा ही लग रहा था। रात तक मैसूर में कोई बदलाव नहीं आया था। वह रात के साढ़े दस बजे घर पहुँचे। उन्होंने हलकी-फुलकी बात की, बेमन से भोजन किया। उस रात वह तीन बजे तक बिस्तर पर पड़े जागते रहे।

एक सप्ताह पश्चात् उसी अनुभव की पुनरावृत्ति हुई। जब ऐसा हुआ, तब वह अपने परिवार के साथ डाइनिंग टेबल पर थे। अचानक उनका सिर चकराने लगा। उन्होंने सोचा कि यह मात्र कुछ मिनटों के लिए होगा, किंतु इसी हालत में सात घंटे बीत गए। एक और अवसर पर तेरह दिन बीत गए थे। ''मैं पूरे तेरह दिन बैठा ही रहा'', वह कहते हैं, ''इन तेरह दिनों तक मैंने न तो खाया, न सोया, न संडास का प्रयोग किया। मैं केवल बैठा ही रहता। वस्तुत: मेरे अनुभव में यह अवधि मात्र 15 या 20 मिनटों की थी। इस तरह मेरे अनुभव में समय का आयाम विलुप्त होता जा रहा था। इस हालत को स्थिर करने एवं इसे जीवित वास्तविकता में बदलने में मुझे लगभग छह सप्ताह का समय लगा। और अपने भीतर इस अनुभूति को स्थिर करने में मुझे कुछ और समय लगा।'' जो हो रहा था, उसका कोई भी प्रयोजन नहीं था। उनका परिवार भी उतना ही व्यग्र था जितने वह स्वयं थे। उन्होंने कुछ मित्रों को विश्वास में लिया जो उतने ही किंकर्तव्यविमूढ़ थे। कुछ लोगों ने पूछा कि क्या वह किसी मतिभ्रम का शिकार थे?

स्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। उनके पिता के रेलवे हॉस्पिटल से आई एक नर्स अचानक उनके पैरों पर गिर पड़ी। दूसरे भी बिना सोचे-समझे वैसा ही करने लगे। कोई ऐसा व्यक्ति जिसने अपने जीवन में किसी का पैर नहीं छुआ था, उसके (जग्गी) लिए यह बड़ा भद्दा अनुभव था। उससे भी ज्यादा अजीबोगरीब तब लगा जब लोग उनसे उनके आगत की भविष्यवाणियाँ करने के लिए कहने लगे। एक ने तो उनसे अपनी बेटी के विवाह की तारीख बताने की गुजारिश की। और इधर जग्गी को भी यह आभास था कि वह अब पहले जैसे नहीं हैं। एक व्यक्ति की नजर में तो उनकी वेशभूषा ही वस्तुत: बदलने लगी थी। उनके चेहरे के हावभाव पहले जैसे नहीं थे, उनकी वास्तविक शारीरिक विशेषताएँ, आँखों की बनावट, आवाज और यहाँ तक कि शारीरिक संरचना में भी बदलाव झलक रहा था। औरों ने ये परिवर्तन देखने शुरू कर दिए थे। वह कहते हैं, ''मेरी आवाज बदल गई, मेरी आँखें अपेक्षाकृत बड़ी व ज्यादा चमक लिए हुए थीं।''

इस शारीरिक रूपांतरण का कारण क्या था? वह कहते हैं, ''जो भी हुआ था, वह सब आंतरिक संरचना का पुनर्गठन था। योग करते हुए बिताए गए तेरह विचित्र वर्षों का फल अभी मिला। योग शरीर के पुनर्निमाण का एक तरीका है ताकि यह ज्यादा ऊँचा उद्देश्य पूरा कर सके। इसीलिए यह प्रणाली कार्य करती है। चक्र स्थिर शारीरिक प्रकटीकरण नहीं हैं, वे गतिवान हैं और हम उन्हें अपने शरीर के अंदर और बाहर गतिशील कर सकते हैं। देवी-देवता उत्पन्न करने का

विज्ञान यही है। मानव को देव में रूपांतरित करने की यह पूरी तकनीक है। मानव शरीर खून-मांस के टुकड़े के रूप में कार्य कर सकता है या सृष्टि के स्रोत के रूप में मानव का मेरुदंड हड्डियों का मात्र अटपटा विन्यास ही नहीं है; यह ब्रह्मांड की धुरी है। यह आप पर निर्भर करता है कि आप अपने शरीर तंत्र को किस तरह पहचानते हैं। अपने मामले में शारीरिक तौर पर एक घनीभूत व्यक्ति होने से लेकर मैंने अपने शरीर को इस तरह ले चलना सीख लिया मानो यह हो ही नहीं। मेरा देहपन बहुत ही आरामदायक व शांत हो चुका है। पहले यह संपूर्ण घनीभूतता मेरे शरीर में हुआ करती थी। लोग यह महसूस कर सकते थे; यदि मैं किसी कमरे में प्रवेश करता, इस का अर्थ कार्य या कृत्य होता था। किंतु अब मैंने अलग ढंग से ही अपने शरीर को ले जाना सीख लिया है। मेरे चक्रों के पुनर्संगठन का तात्पर्य भी यही है कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति में मैं भिन्न हो सकता हूँ। यह स्थिति आज भी यथावत् है। मैं स्थिति की आवश्यकता के अनुरूप पूर्णत: भिन्न कुछ लोगों की पहचान में न आनेवाला व्यक्ति हो सकता हूँ।''

और उनकी आंतरिक अनुभूति का अकाट्य साक्ष्य भी था। जीवन सदा से रोमांचक रहा। लेकिन अब यह समृद्ध, घनीभूत था एवं उच्च-ऊर्जा स्तर की आंतरिक खोज से दहक रहा था, जो उन्हें कभी महसूस नहीं हुई थी। इस बिंदु के आगे जग्गी का आंतरिक जीवन उनके बाह्य जीवन की अपेक्षा अधिक रोमांचक था। ''अब मैं अपने भीतर एक ही क्षण में लाखों भिन्न-भिन्न बातों के घटित होने के प्रति जागरूक था। ऐसा ही मैं अभी भी हूँ। किसी से बातचीत करते हुए भी इसी क्षण भीतर चलनेवाली असंख्य बातों की जानकारी मुझे है। यह केलाइडोस्कोप की तरह ही है। और उसी से लोगों का दिमाग चकरा जाता है। उन्हें तुम्हारी बातों का अर्थ निकालना ही नहीं आता।'' उनके पिता अपने इस विलक्षण बेटे से लगातार परेशान थे, जिसका जीवन बड़ी तेजी से ध्यान और मोटरसाइकिल के जोश के बीच परिवर्तित हो गया था। अपनी माँ के लिए, जग्गी तो पहले ही बेटे के बजाए बड़े भाई ज्यादा थे।

इस अनुभूति का एक और प्रभाव था—उनके आसपास के लोगों की भावनाओं के प्रति उनकी उच्च संवेदनशीलता। जग्गी को यह बड़ा अविचारणीय लगता कि उनके आसपास के लोग असंतुष्टि की दशाओं में हैं जबकि उनका अपना जीवन आनंदातिरेक से लबलबा रहा है। ऐसा भी समय था जब दु:खी हालत में रास्ते पर जाते हुए एक अनजान व्यक्ति को देखकर ही उनकी आँखें भर आती थीं। बाद में उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया को साधना सीख लिया। दु:ख के प्रति भावनात्मक प्रत्युत्तर के लिए वह कभी-कभार ही स्वयं को तैयार करते हैं। ''जब मैं किसी पेड़ की टूटी हुई शाखा को देखता हूँ तो इसका प्रत्युत्तर मेरी भावनाओं के बदले मेरी ऊर्जा देती है। कभी-कभार भावुकतापूर्ण प्रत्युत्तर के लिए मैं स्वयं को तैयार करता हूँ, लेकिन मेरे लिए यह एक विलासिता जैसा ही है। व्यक्ति अब भी कष्ट के प्रति अत्यधिक खुला हुआ है किंतु यह मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक प्रत्युत्तर कतई नहीं है।''

चामुंडी हिल की दोपहर के 6 सप्ताह पश्चात् जग्गी अपने व्यवसाय से बाहर आ गए। किसी ऐसी चीज का हिस्सा बने रहना अनुचित जान पड़ता था जिससे उनके नए प्राप्त हुए बोध की मदद से अपने पक्ष में फायदा उठाया जा सकता था। यह निर्णय किसी नैतिक मुद्दे से प्रेरित नहीं था, बल्कि जिसे वह 'जीवन भाव' कहते हैं, उससे प्रेरित था। अब वह अपने अनुभव से जान गए थे कि नैतिक आचार संहिताएँ जीवन अनुकरण मात्र थीं। अब उन्हें पहले की अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट था कि उन्हें नैतिकता से प्रेरित होकर कार्य करने की जरूरत नहीं थी, बल्कि उनकी अपनी मात्र मानवता से। ''अब मेरे लिए दूसरों के मन की बात जान लेना और किसी से अपनी इच्छानुसार कार्य कराना सरल था, अब भी मैं ऐसा कर सकता हूँ। लेकिन इसमें रखा क्या है? यह तो किसी पाँच साल के बच्चे के साथ गोल्फ खेलने जैसा है। ऐसा करना मैं पसंद नहीं करता। मैं किसी नैतिकता की बात नहीं कर रहा हूँ। यह मात्र सौंदर्य की बात है।'' आज भी इशा के विभिन्न व्यावसायियिक क्षेत्रों में प्रवेश के बाद, वह बैठकों में स्वयं जाने के बदले अपने प्रतिनिधि ही भेजते हैं।

जब वह स्थिरता प्राप्त करने लगे, उसके बाद उन्होंने महसूस किया कि जो उनके साथ घटा था, ''वह साधारण रूप से किसी व्यक्ति के साथ होनेवाली सर्वाधिक सुंदर बात थी। अभी लोग बचपन का गुणगान इसीलिए करते हैं क्योंकि बच्चा हँस सकता है, इधर-उधर उछल-कूद कर सकता है, बिलकुल अकारण खुश हो सकता है। लेकिन मैंने पाया है

कि वयस्कता में भी अकारण ही स्वाभाविक रूप से हर्षोन्मादी होना संभव है। और जब मैंने देखा कि यह सभी के लिए संभव है तो स्वाभाविक रूप से मैं इसे बाँटना चाहता था। तभी से मेरा पूरा प्रयास यह रहा है कि किसी तरह मैं इस अनुभूति को औरों पर भी लुटाऊँ।''

अब उन्हें यह समझ में आना शुरू हो रहा था कि चामुंडी हिल पर उस दोपहर जो कुछ इतना अप्रत्याशित हुआ था यह कुछ रहस्यमय था। चूँकि उन्होंने स्वयं कोई आध्यात्मिक साहित्य नहीं पढ़ा था, इसलिए उनके पास ऐसा कोई उदाहरण भी नहीं था जिसके साथ वह इस अनुभूति की तुलना कर सकते। किंतु बाद में वह प्राय: पछताते हुए से कहते हैं कि उनकी अपनी जागृति में सदियों पूर्व गौतम बुद्ध के निर्वाण जैसी पौराणिक बातें नहीं जुड़ी हैं। न तो चमकता हुआ पूर्ण चंद्रमा था, न पीपल की आश्रयदायी छाँव। इनकी जगह उनके आसपास दोपहर की झुलसानेवाली धूप और ऊबड़-खाबड़ डेकन चट्टान थी। फिर भी परिणाम वैसा ही था— व्यक्तिगत रूप से उतना ही महत्त्वपूर्ण, उतना ही जीवन-परिवर्तनकारी।

यदि बुद्ध ने उसके बाद के सप्ताहों को अपने परिशोधित अंतर्ज्ञान का आनंद लेते हुए एवं अपने वर्षों चलनेवाले मिशन की तैयारी करते हुए बिताया था, तो जग्गी ने भी वही किया। ''मैं अपनी आँखें मूँद लिया करता, किसी चट्टान पर या किसी पेड़ के नीचे बैठ जाया करता और बस। मेरा जीवन सार्थक हो चुका था। कुछ दिनों के बाद मैंने सचमुच यही सोचा—यही तो है। अब और कुछ करने को है ही नहीं। उसकी समाप्ति हो चुकी है। यह मेरे बहिर्गमन की योजना बनानेवाली बात थी। मैंने सोचा कि कुछ समय के लिए मैं आसपास ही रहूँगा, इसकी पूर्ण सुंदरता का रसास्वादन करूँगा और फिर अपनी शैली से निर्गमन करूँगा। उस समय जो लोग मुझे जानते थे वे हमेशा ही मुझे योजना बनाते और मैं कब जाऊँगा इसकी योजना बनाते हुए सुनते थे। वे समझ नहीं सके। वे कहते थे, 'तुम किसी ऐसे व्यक्ति की तरह नहीं लगते जो आत्महत्या करेगा,' मैं कहता था, ''निश्चित ही आत्महत्या नहीं। मैं बाहर चला जाऊँगा। मैं चार व्यक्तियों को श्मशान ले जाए जाने के लिए तकलीफ नहीं दूँगा, मैं इसमें चलकर जाऊँगा।''

और फिर भी वह यह महसूस करने लगे कि उनकी खोज ही अकेली व्यक्तिगत नहीं थी। उसकी भूमिका एक संसार से विरक्त बैरागी की तरह नहीं हो सकती थी, हालाँकि उसमें ऐसा प्रलोभन तो था ही। अब तक का उनका जीवन इस क्षण की तैयारी ही रही। अनुभूति हुई थी, किंतु यह मात्र वास्तविकता का स्मरण करानेवाली थी और कुछ भी नहीं। यह पहले भी हुआ था लेकिन उससे कहीं विशाल, ध्यानलिंग-अभी होना बाकी था। यह हड़बड़ी में उन तक वापस लौट आया—एक न निभाए गए वचन के कुरेदते दर्द की तरह। जो कुछ भी हुआ था, वह खेल का प्रारंभ मात्र था। अपेक्षाकृत विशाल, ज्यादा अभिप्रायपूर्ण कथानक आगे आनेवाला था।

अब उन्हें महसूस भी हुआ कि क्यों उनका जन्म अपने इस विशेष परिवार में हुआ है। इसमें कोई विशिष्ट कार्मिक संबंध भी नहीं थे, किंतु यह परिवार ऐसा था जिसने उनके जीवन के मिशन में नहीं के बराबर रोड़े अटकाए। ''बहुत से लोगों के लिए उनके माता-पिता उनके जीवन को दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे... मैंने यहाँ जन्म लेने को इसलिए चुना था, क्योंकि इस परिवार में बहुत कम बाधाएँ खड़ी की जाती थीं। मेरी माँ में आध्यात्मिक आकांक्षा थी। उन्हें नौ वर्ष की उम्र में एक योगी द्वारा संस्कारित किया गया था। और उन्होंने मेरे जीवन में किसी तरह का विघ्न खड़ा नहीं किया। और जब तक मैं अपनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता रहता, तब तक मेरे पिता भी मुझसे कोई सवाल नहीं करते थे।''

उन्होंने यह भी महसूस किया कि उनके जीवन के इस सूक्ष्म समय में यह स्मरण दिलानेवाली घटना क्यों घटी। ध्यानलिंग में ऊर्जा पर एक तय स्तर का अधिकार भी आवश्यक होता है। यह अधिकार शारीरिक या बौद्धिक स्तर का नहीं था बल्कि ऊर्जा का बोध और उसकी संभावनाएँ थीं। पच्चीस वर्ष की अवस्था में जग्गी अपने जीवन के चरम पर थे, और अपनी ऊर्जाओं का प्रबंधन करने की उनकी योग्यता बहुत पैनी थी। इस योग्यता के बगैर भौतिक शरीर धारण करने की क्षमता बुरी तरह लड़खड़ा जाती। आप अपने शरीर में अज्ञानता के बिना अस्तित्वान नहीं रह सकते। आगे

उन्होंने कहा था, ''एक जागे हुए व्यक्ति को उन प्रणालियों की जानकारी होनी चाहिए अन्यथा वह भौतिक शरीर में नहीं रह सकता। इस दृष्टिकोण से इस ग्रह में कोई भी निर्वाण प्राप्त या जागे हुए लोग नहीं हैं। अधिकतर लोग मजबूरी में अज्ञानी बने हुए हैं और कुछ ही लोग जान-बूझकर अज्ञानी हैं।''

जहाँ तक ध्यानलिंग का प्रश्न है, इसे कैसे हासिल किया जाना था? इसकी तकनीक तब तक उनसे नहीं जुड़ी थी। वह जानते थे कि यह वहाँ थी, और यह कि एक बार दिमाग लगाते ही इससे जुड़े विवरण उभर आएँगे। उन्होंने कई वर्षों बाद इसे पुष्ट किया, ''इसी तरीके से यह मेरे साथ रही। मैं जो भी जानकारी रखता हूँ वह क्षणभर में ही मुझे हो जाती है। जब मैं सड़क पर चल रहा होता हूँ, मैं इस ज्ञान का बोझ लेकर नहीं चल रहा होता। लोग सामान्यत: ज्ञान के कारण भारी और गंभीर हो जाते हैं। किंतु जब ज्ञान ऊर्जा के रूप में प्रेषित होता है (न कि स्मृति के रूप में) तो ज्ञान का बोझ आप पर नहीं होता। जब मेरे गुरु पलानी स्वामी ने मुझे छड़ी से छुआ, तब जो कई जीवनकालों में नहीं सीखा जा सकता था वह एक क्षण में ही प्रेषित हो गया।''

यह त्वरित पुन: प्राप्ति प्रणाली है। जैसा कि बहुत-से लोगों ने लक्षित किया है, इसने उनको ज्ञान का एक अनोखा जीता-जागता विस्तृत किंतु फिर भी विचित्र रूप से संग्रहालय बना दिया है।

जग्गी जानते थे कि सद्भाव समय की भारी जरूरत है। बहुत से योगी जिन्होंने प्रयास किया था और असफल रह गए थे, उनकी स्मृति तेजी से वापस आने लगी। पिछले तीन जीवनकालों के दौरान उनके अत्यधिक, किंतु व्यर्थ प्रयासों की स्मृति उन्हें पुन: सताने लगी। वह जानते थे कि सामाजिक स्वीकृति के बिना कुछ भी संभव नहीं था। उन्हें सबसे पहले अपने उन चुनिंदा विश्वासपात्रों के समूह से मिलना आवश्यक था, जिन्हें एक जीवनकाल पूर्व उन्होंने तैयार किया था। इसके पश्चात् उनके मिशन को यह सुनिश्चित करना था कि उनके गुरु का सपना पुन: मानवीय अज्ञानता और संदेह से धराशायी न हो जाए। और इस बार इसके लिए कोई भी मूल्य बहुत ज्यादा नहीं था। इस बार वह तैयार थे, जैसा कि एक बार उन्होंने कहा, ''कुछ भी करने के लिए, जो कि आदमी को करना चाहिए या नहीं करना चाहिए।''

और इसलिए लगा कि भयंकर नास्तिक जग्गी आखिर मंदिर बनाने जा रहे हैं। लेकिन उन्हें मालूम था कि उस समय किसी को भी यह बात बताने का कोई औचित्य नहीं था। ऐसा नहीं कि समय की प्रचुरता थी, किंतु जग्गी को कुछ और भी पता था। कुछ और, जिससे उनकी योजना को अतिरिक्त गति प्राप्त होती। वह जानते थे कि वह बयालीस (42) वर्ष की उम्र में शरीर त्याग देंगे। इसका अभिप्राय था अपने जीवन के बचे 17 वर्षों में पूरी गति से कार्य करना। इसका यह भी अभिप्राय था कि सभी उलझनों को बहुत ही न्यूनतम कर लेना। उन्हें हलके होकर यात्रा करनी थी।

और तब 1984 में उनकी मुलाकात विज्जी से हुई।

एक बार सद्गुरु ने एक वार्त्तालाप के दौरान कहा, ''मेरी समस्या यह है कि मैं एक अत्यधिक प्रजातांत्रिक रहस्यवादी संत हूँ।''

उस समय वह उस तरीके की ओर संकेत कर रहे थे जिससे वह अपने आसपास के लोगों को कभी-कभी अपने जीवन के घटनाक्रम को आदेशित करने देते थे, भले ही उनका अपना बोध यह प्रकट करता था कि वह कार्य अनावश्यक या अवांछनीय है।

यह टिप्पणी एक ऐसे व्यक्ति का परिज्ञान प्रस्तुत करती है जिसने अपना जीवन नियंत्रण और लापरवाही, अतिसजग सोच एवं दिखावटी कामचलाऊ व्यवस्था के विचित्र समन्वय के साथ जिया है। ध्यानलिंग के लिए अपनी एक जीवनकाल की अग्रिम दूरदृष्टि पूर्ण योजना बनाने के कारण जग्गी जैसा सधा विद्रोही, जिसने अपना जीवन दुस्साहसपूर्ण अंदाज में जिया, कभी भी पराजित नहीं रहा और इसी तरह की जागरूकता और उन्माद के साथ उन्होंने कभी ध्यानलिंग का सूत्र निर्मित किया था। और इसमें अस्थिर और अनिश्चित समन्वय समाहित है।

इस परिदृश्य में देखने पर, शायद उनके निर्वाण के पश्चात् के घटनाक्रम पूरी तरह से चौंकानेवाले नहीं हैं। सबसे पहले एक साल के अलगाव, ध्यान और यात्रा के पश्चात् जग्गी ने योग प्रशिक्षण देना तय किया। अपनी अनुभूति के

परिणाम को किसी तरह बाँटने का उनमें जुनून था। ''जब मैंने पाया कि आप अपने वयस्क काल में भी अकारण हर्षोन्मादित हो सकते हैं—तो स्वाभाविक रूप से मैं इसे लोगों के साथ मिलकर बाँटना चाहता था। तब से ही यही मेरा प्रयास रहा है। मैंने योग का चुनाव इसलिए किया, क्योंकि अपनी युवावस्था से ही मैं इसका अभ्यास करता रहा हूँ और मेरे भीतर जो चल रहा था, उसे व्यक्त करने के माध्यम के रूप में मैंने इसे पाया।'' अपने मिशन हेतु लोगों से पुन: जुड़ने की जरूरत के लिए उनके संपर्क में आने का यह उपयुक्त तरीका लगा।

उनकी प्रथम कक्षा के लिए लोगों को आकर्षित करना सरल नहीं था। एक जोशीले मोटरसाइकिल सवार और सफल व्यवसायी के रूप में मैसूर में उन्हें लोग अच्छी तरह जानते थे। लेकिन बहुतेरे ऐसे लोग थे जिन्हें यह संदेह था कि उन्होंने अपना काम-धंधा छोड़कर यह आरामतलब महसूस होनेवाली जीवनशैली अपना ली है। सद्गुरु स्मरण करते हैं, ''पूरे साल भर मैं बैठा रहा, क्योंकि साधारण बैठे रहना मेरे लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुभव था। किंतु इससे मुझे एक खतरनाक व्यक्ति होने की ख्याति मिली। अत्याधिक समझाने-बुझाने, पुचकारने और डराने-धमकाने के बाद सात लोग मेरे कार्यक्रम में आए।''

पहला कार्यक्रम दो घंटे प्रतिदिन के हिसाब से चार दिनों के लिए तय किया गया। दूसरे दिन, कक्षा पाँच घंटे तक चलती रही और ऐसे ही तीसरे दिन की कक्षा चली। अंतत: उन सातों की सामूहिक माँग पर कार्यक्रम को 6 दिनों में तब्दील कर दिया गया। इसके बाद पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। आगे चलकर कार्यक्रम की रूपरेखा या निर्धारण, संपादन एवं परिशोधन इशा योग के वर्तमान रूप में किया जाना प्रारंभ हुआ किंतु इसकी शुरुआत वे सात छात्र ही थे जिन्होंने अपनी निष्ठा एक अज्ञात गुरु पर रखी और अज्ञात के आयाम में कूद पड़े। यह जोखिम उठाने के कारण जग्गी उनके आभारी थे। वह सिखा सकते थे यह तथ्य उनके (जग्गी) लिए भी उतना बड़ा प्रकटीकरण था, जितना उनके सात छात्रों के लिए।

एक स्तर पर इसे रुचि परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है—मोटरसाइकिल रखरखाव से आंतरिक रखरखाव—किंतु इससे उनका और निश्चित रूप से कई अन्य लोगों का जीवन बदलनेवाला था। सद्गुरु कहते हैं, ''तब से पीछे मुड़कर देखने की जरूरत नहीं पड़ी। इन कार्यक्रमों में लाखों लोग भाग ले चुके हैं। यह विकास के विविध चरणों से गुजर चुका है, और अब हमने इसे इस तरह निर्मित किया है कि यह हर तरह के लोगों के लिए कारगर है। उस समय इसका कोई रूप-आकार नहीं था। मुझे जैसा अच्छा लगता था वैसे ही मैं सिखाता था। मै आध्यात्मिक वातावरण में कभी नहीं रहा; न ही मैंने कुछ पढ़ा था। अभी भी मैं आध्यात्मिक रूप से शिक्षित नहीं हूँ, इसीलिए लोग मुझे सद्गुरु कहते हैं। जिसका अर्थ है एक अशिक्षित गुरु।'' हँसते हुए वह आगे कहते हैं, ''इसका शाब्दिक अर्थ होता है, 'वह जो अंदर से प्रकट होता है' जो शास्त्रों या पवित्र पुस्तकों या ऐसे ही कुछ भी से अनभिज्ञ होता है।''

एक निश्चित समय तक जग्गी ने अपनी स्वयं की कक्षा संचालित की, तत्पश्चात् उन्होंने समान उद्देश्य वाले अन्य योग संगठनों के तहत कार्य करने का निर्णय लिया। आकांक्षाएँ भले ही समान रही हों, उन्हें शुरू से यह ज्ञात था, कि जिनके साथ वह जुड़े थे उनमें से कोई भी उनके जैसी अनुभूति से लब्ध नहीं था। किंतु एकजुटता से कार्य करने के अपने अलग लाभ थे। इससे वह इतने हलके रहे जितना वह चाहते थे। ''मेरे देखने में आया कि हर किसी के पास सभी तरह की युक्तियाँ, विधियाँ और तकनीकें थीं, लेकिन मेरी अपनी न कोई युक्ति थी, न विधि और न ही तकनीक। इसलिए दूसरों के अवलोकन से मुझे मदद मिली, क्योंकि कम से कम इससे मैंने साफ तौर पर वह सीखा कि मुझे क्या नहीं करना चाहिए। यह एक मूल्यवान योगदान था। यह महसूस करना कि क्या नहीं किया जाना चाहिए, जो कि समूह के कुछ ऐसे लोगों के अवलोकन मात्र से ज्ञात हुआ जो विविध स्तरों के आध्यात्मिक अभ्यास में लगे थे। जाने-अनजाने उन्हें कुछ ऐसी चीज मिल गई थी जिसका मूल्य वह नहीं जानते थे। वही बातें मैंने भी चुनीं और आगे चलकर उन्हें एकदम भिन्न रूप में परिवर्तित कर दिया। जो हम इशा योग में करते हैं, वह कई तरह से अद्वितीय है। धरती में कहीं और योग की प्रस्तुति इस तरह नहीं की जाती जैसी यहाँ की जाती है। विषय सामग्री समान हो सकती है किंतु जैसी

इसकी प्रस्तुति की जाती है—इसकी प्रस्तुति का आयाम और गहराई—वह जहाँ तक मुझे मालूम है कहीं और नहीं की जाती।''

उन्होंने अपने पोल्ट्री फार्म के किराए की आय पर रहकर साधारण भोजन करके और तीन जोड़े जींस पहनकर निर्वाह किया। उन्होंने योग क्रिया हेतु भुगतान ग्रहण करने से इनकार कर दिया। अपनी कक्षा से प्राप्त संग्रह (धन, मुद्रा) को वह सार्वजनिक रूप से अनाथालय, वृद्धाश्रम या अन्य परोपकार से जुड़ी संस्थाओं को कार्यक्रम के अंतिम सत्र में दान कर देते थे। तत्पश्चात् मोटरसाइकिल पर सवार होकर एक महीने के लिए विलुप्त हो जाते थे। अपने कार्य के प्रति कटिबद्धता उनकी स्वतंत्र भावना पर रोक नहीं लगा सकी।

और अभी उनके आध्यात्मिक जागरण को दो वर्ष ही बीते होंगे कि उनका विवाह हो गया। इसके छह वर्षों बाद उन्हें एक संतान प्राप्त हुई। इस स्वच्छंद रहस्यवादी संत को परिवार बनाने की क्या आवश्यकता थी? क्या वह भूल गए थे कि बयालीस (42) वर्ष की उम्र में उन्हें अपना शरीर छोड़ना था? क्या यह एक ऐसे व्यक्ति के लिए बुरी तरह बेतुका कदम नहीं था जिसे यह ज्ञान था कि उसके जीवन का एकांगी मिशन है?

ऐसा लगता तो था; किंतु फिर, शायद नहीं भी। क्योंकि सद्गुरु का जीवन के प्रति प्रेम सदा से ही इतना तीव्र, विषयासक्त भी रहा है कि वह उसे शतरंज के खेल मात्र में परिवर्तित नहीं कर सकते। उनके जीवन के अधिकतर निर्णय, बड़े या छोटे, एक प्रेरित संतुलन तय कर लेने की उनकी योग्यता से जन्मे लगते हैं। एक ऐसा अत्यधिक गतिशील और खतरनाक संतुलन जो कभी-कभी भारतीय मिथक के प्रचंड नर्तक शिव का स्मरण कराता-सा महसूस होता है। यह विरोधाभासों; रचनात्मकता और अनुमान; जोश और सूक्ष्मता; लापरवाही और तर्क के मध्य संतुलन है। कुछ ऐसे समय भी रहे हैं जब संतुलन बिलकुल कारगर नहीं रहा है, जब सबकुछ ढह गया और उनका स्वयं का जीवन अस्तव्यस्त हो गया। किंतु इस प्रजातांजिक रहस्यवादी संत के लिए शायद यही सामान्य है।

उन्हें वह समय याद है जब वह पहली बार विजी से मिले। यह मुलाकात मैसूर में एक योग कार्यक्रम के बाद हुई। विजी, इक्कीस वर्षीया चंचल युवती (असफल विवाह के बाद तलाकशुदा) बंगलोर से कार्यक्रम में शामिल होने आई थी। यह कार्यक्रम अत्यधिक मनोवैज्ञानिक रुचि का था और इसमें भाग लेनेवालों की भावनाएँ उफान पर थीं। जग्गी इस कार्यक्रम का संचालन नहीं कर रहे थे अपितु उन्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया गया था। चार बजे दोपहर का भोजन परोसा गया। वह भोजन करने बैठे, यों ही कमरे में नजर फेरी और उस (विजी) पर उनकी दृष्टि पड़ी। कोई सुदूर की स्मृति जाग गई।

चामुंडी हिल की अत्यंत महत्त्वपूर्ण अनुभूति के पश्चात्, जग्गी की अपने अचेतन से स्मृति जगा लेने की क्षमता और तीव्र हो गई थी। क्षणांश में अनुभूति हुई कि यह महिला एक जीवनकाल पूर्व उनकी बहन रही है। उसका अपने भाई (जग्गी पूर्व जन्म में) के प्रति गहरा अनुराग था किंतु सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने पहले ही घर छोड़ दिया था और शेष जीवन एक साधु की तरह गुजारा। एक बहन के रूप में भी उन तक पहुँचना अभद्र और कठिन लगता था, और उसके प्रेम को पूर्ण अभिव्यक्ति कभी नहीं मिली। शायद, तब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि वह उनके जीवन में पुन: प्रवेश कर जाती। ''सद्गुरु जैसा भाई होना सहज नहीं था। उन्होंने बारह वर्ष की उम्र में घर छोड़ दिया था। कभी-कभार वह उसके जीवन में आते लेकिन हमेशा चले जाते। और वह अधिकतर नग्न रहनेवाले साधु थे। कभी-कभार वह वस्त्र पहन लेते थे, लेकिन ज्यादातर समय वह कुछ नहीं पहनते थे। इसलिए समस्याएँ आती थीं। उनके नजदीक रहने की उसमें इच्छा होती थी लेकिन, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकती थी क्योंकि वह एक महिला और उनकी बहन थी। इसलिए उसमें ऐसी भावनाएँ थीं जो पूरी नहीं हो सकी थीं और वही उसे मेरे जीवन में पुन: वापस ले आईं।'' किंतु एक अलग तरीके से जग्गी को अब कुछ अधिक महसूस हुआ। वह जानते थे कि इस बार उन्हें उसे अपने साथ रखना है। वह उनके जीवन के मिशन के लिए महत्त्वपूर्ण थी।

विजी ने उन्हें अपनी ओर अपलक देखते हुए पाया। किसी अव्यक्त कारण से उसने स्वयं को उनकी बगल तक

चलकर जाते हुए पाया। उससे भी ज्यादा अव्यक्त कारण इस बात का था कि वह रोने लगी। भावनात्मक रूप से यह एक उच्च-ऊर्जा का कार्यक्रम था और किसी को यह असहज महसूस नहीं हुआ। जग्गी पूरी तरह मस्त होकर भोजन करते रहे। भोजन से निवृत्त होते ही वह उठे और चल पड़े। यद्यपि उस शाम का समापन उस कार्यक्रम के पश्चात् हो चुका था, किंतु वह प्रतिभागियों के एक समूह के साथ जलपान में शामिल हुए। वहीं उनकी पहली बातचीत हुई।

एक दिन के बाद विजी ने बंगलोर से उन्हें पत्र लिखा। मजे की बात यह है कि उसने उन्हें 'प्रिय भाई' कहकर संबोधित किया था। सद्‌गुरु कहते हैं, ''वह इस बात से अनभिज्ञ थी कि उसने ऐसा लिखा था। यह उसका मेरे लिए पहला पत्र था और वह 'प्रिय जग्गी' लिखना चाहती थी। किंतु 'प्रिय भाई' लिखकर ही छुट्टी पा ली। मेरी उससे मात्र एक दिन की ही मुलाकात थी; वह एक जवान लड़की थी और उस समय मैंने उससे कुछ नहीं कहा। बहुत समय तक वह पत्र मैंने अपने पास रखा। एक अंतराल के बाद मैंने उससे पूछा, ''क्या तुम जानती थी कि तुमने यह लिखा?'' उसने कहा, 'मैं आपको भाई संबोधित क्यों करने लगी?' जब मैंने उसे पत्र दिखाया तो वह अवाक् रह गई। उसे महसूस भी नहीं हुआ कि उसने यह लिखा था।''

पत्र में विजी ने उनके संपर्क में रहने की तीव्र इच्छा व्यक्त की थी। खिंचाव त्वरित व पारस्परिक था। यदि विजी जग्गी की ऊर्जाशीलता, उनके जीवन के प्रति प्रेम और साहस से आकर्षित हुई तो निस्संदेह वह उसके बच्चे जैसे उल्लास, क्षणभर में प्रसन्नता और दु:ख के मध्य भ्रमण करने की योग्यता से आकर्षित हुए। वह मध्य की अवस्था में कभी नहीं रही। वह या तो ऊपर होती थी या नीचे; किसी क्षण हँसती तो किसी क्षण रोती।

मननकारी मिजाज में वह स्वीकार करते हैं, ''यह सच है कि वह मेरे जीवन में कुछ पहले आ गई। यदि ऐसा बाद में हुआ होता तो शायद मुझे शादी करने की जरूरत भी महसूस नहीं हुई होती। आज मेरे जीवन में ऐसे बहुत लोग हैं जिनके साथ मैं बड़ी निकटता से काम करता हूँ और उनसे मेरे गहरे आध्यात्मिक संबंध हैं। शादी की आवश्यकता इस बात के लिए नहीं रही है।'' किंतु उस समय, दोनों युवा लोगों के लिए साथ-साथ समय बिताने के लिए विवाह से ही सारयुक्त प्रसंग मिलता सा लगा। न ही यह कुछ ऐसा था जिसके प्रति जग्गी को खेद रहा हो। यह उत्तेजनात्मक रोमांस निश्चित ही एक युवा व्यक्ति के उत्साह की वजह था न कि भविष्य में मंदिर निर्माण करनेवाले की षड़यंत्रकारी योजना के कारण।

इस घटना के एक सप्ताह बाद की बात है। विजी जिस बैंक में वह कार्यरत थी जग्गी ने एक दोपहर वहाँ आकर उसे चौंका दिया। ''आओ चलें'', उन्होंने अपनी स्वभावगत जल्दबाजी में कहा। वह संकोच में पड़ गई। अभी साढ़े तीन ही बजे थे और बेलेंस अभी बंद किया जाना था। एक अकेली युवती जो असफल शादी से अभी उबरी थी, उसके लिये बैंक की नौकरी बहुत मायने रखती थी; इससे उसे स्वयं में स्वायत्तता, आर्थिक स्वतंत्रता, और घर से बाहर की दुनिया में पहुँच हासिल थी। उस समय तो उसे जग्गी का पूरा नाम भी नहीं मालूम था। फिर भी उसने प्रबंधक से येन-केन-प्रकारेण अनुमति हासिल कर ली और दोनों ने साथ मिलकर शाम बिताई।

कई शामें इसी तरह साथ बीतती रहीं। विजी बतौर स्वयंसेवक जग्गी के एक योग कार्यक्रम में शामिल हुई। संबंध गहराते गए। एक दिन जग्गी ने विजी को बंगलोर बुलाया और उसी शाम उसके सम्मुख स्वयं से जुड़ने की पेशकश की। इस बार विजी को कोई संकोच नहीं हुआ। वह घर गई, अपने बैग पैक किए और शाम की बस से मैसूर आ गई। बड़े मजे की बात है कि उसके परिवार को भी हैरानी नहीं हुई। उस रात जग्गी ने उसके ठहरने की व्यवस्था एक नौकरीपेशा महिला के हॉस्टल के कमरे में कर दी। अगले दिन उसने (विजी) वैकल्पिक आवास के लिए जोर दिया। अगली कुछ रातें युवा जोड़े ने पहले चामुंडी हिल, फिर बी.आर. हिल पर कैंप लगाकर बिताईं।

इसी दौरान जग्गी को गोम्मटगिरी में एक कार्यक्रम संचालित करना था। कार्यक्रम के मध्य ही दोनों ने मैसूर से एक सौ पचास किलोमीटर की दूरी पर, नयनाभिराम झरना स्थल इरुप्पु में दो दिन का अवकाश बिताने का निर्णय लिया। जग्गी यहाँ प्राय: आते थे और झरने के पास शिविर भी लगाया था। यह महाशिव-रात्रि का समय था और परंपरागत ग्रामीण मेला चल रहा था। गोधूलि बेला में दोनों एक छोटे व शांत धार्मिक स्थल, रामेश्वरा मंदिर गए। यह एक आदर्श

व्यवस्था थी, धीमा प्रकाश, मनोरम वातावरण था और दोनों ने विवाह करने का निश्चय किया। हिंदू पंचांग के अनुसार इससे ज्यादा मांगलिक समय और कभी नहीं हो सकता था, इसी विशेष दिन शिव और पार्वती विवाह सूत्र में बँधे थे। भले ही उस समय वे इस बात से अनभिज्ञ थे, जग्गी और विजी महान् संगति में थे। वे कहते हैं कि शिव उनके निर्णय के एकमात्र साक्षी थे।

इस घटना के शीघ्र बाद, जग्गी ने अपने परिवार के निवास स्थल से लगी सड़क पर एक मकान किराए पर ले लिया। तीन दिन के बाद वे इसमें प्रविष्ट हुए। उस स्थान पर एक नारियल का पेड़ और एक रेत का ढेर था। इस दृश्य को पूर्ण करने में मात्र समुद्र की कमी थी। यह एक छोटी-सी कमी थी। इस रिक्तता को पूरा करने के लिए इस युवा जोड़े के बीच समुचित कल्पना और रोमांस था। दो प्लास्टिक की बाल्टियों, कुछ बरतन, और जीर्ण-शीर्ण फर्नीचर के साथ जग्गी और विजी ने साम्राज्य निर्माणकों के विजय भाव के साथ इस नए मकान में प्रवेश किया। दोनों के बीच अथाह प्रेम के कारण भौतिक स्थितियों की न्यूनता कोई मानी नहीं रखती थी।

एक बार मैंने उनसे पूछा कि उनके लिए शादी का अभिप्राय क्या था? क्या इससे उन्हें कोई बंधन महसूस हुआ? क्या अपने पहले के असफल प्रेम संबंध से इस रिश्ते तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त हुआ? उन्होंने उत्तर दिया, ''इस रिश्ते तक मेरी पहुँच एक अलग स्तर की परिपक्वता से हुई। मैंने अपनी पत्नी को एक खूँटी की तरह कभी नहीं देखा। मेरा विवाह मेरे चारों ओर निर्मित था, किंतु मैंने अपना जीवन इसके चारों ओर कभी नहीं बनाया। इसका मतलब यह नहीं कि मैं विजी को प्रेम नहीं करता। मैंने हर संभव अपने जीवन में उसे एक पुष्प की तरह स्वीकार किया, न कि एक खूँटी की तरह जिस पर लटकते रहा जाए।''

एक अन्य अवसर पर जब मैंने उनसे पूछा कि एक संत के जीवन में, जो कि चीजों को जैसी हैं वैसी ही देखता है, रोमांस या प्रेम प्रसंग की क्या भूमिका हो सकती है? तो उन्होंने उत्तर दिया, ''मैं सूर्योदय की ओर देख सकता हूँ, मैं इसे छिन्न-भिन्न करके परख सकता हूँ, साथ ही इसका आनंद ले सकता हूँ। यदि मैं किसी महिला की ओर देखूँ और चाहूँ तो मैं उसकी चीर-फाड़कर उसका गुरदा, यकृत, प्लीहा और उसके अंदर की चीजें देख सकता हूँ। किंतु मैं उसे वैसे भी देख सकता हूँ जैसी वह अभी है। कई आध्यात्मिक गुरुओं ने शरीर को मल की खान बताया है, क्योंकि यह रक्त, बलगम, नाशवान अंगों-प्रत्यंगों से मिलकर बना है। मैं जानता हूँ कि यह इतना ही है। और यह तब भी मेरे लिए अच्छा है। इससे इसकी सुंदरता तो खत्म नहीं हो जाती। आप यह सुझाव दे रही हैं कि संसार की खूबसूरती के प्रति आँखें मूँद ली जाएँ। मेरा नजरिया ऐसा नहीं है।''

जग्गी के माता-पिता शुरू-शुरू में इस संबंध को लेकर बहुत सतर्क थे। उनके पिता ने विजी की वंशावली, जाति और उसके पूर्व विवाह को लेकर सवाल खड़े किए। जग्गी ने जवाब दिया कि इन बातों का उनके लिए कोई सरोकार ही नहीं है। वह न तो उसके (विजी) पिता से विवाह कर रहे थे, न उसके पूर्व पति से। और जाति व सामाजिक स्तर उनके लिए कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। कुछ ही सप्ताह के बाद उनके माता-पिता का मन पिघलने लगे। समय के साथ ही सुशीला विजी के प्रति मधुर हो गईं। दोनों के बीच काफी घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गए जो सुशीला के जीवन पर्यंत कायम रहे। विजी के माता-पिता भी अपनी ओर से आश्वस्त थे कि उनकी बेटी ने दूसरा विवाह कर लिया है। वे बतौर योग शिक्षक जग्गी के पेशे का भी सम्मान करने लगे। इस सम्मान में तब और ज्यादा वृद्धि हुई जब पक्षाघात से पीड़ित होने के बाद विजी के पिता उनके एक योग कार्यक्रम में शमिल होकर पूरी तरह स्वस्थ हो गए।

विजी ने अपने बैंक की मैसूर शाखा में स्थानांतरण के लिए आवेदन किया था। आवेदन मान्य होने पर वह पुनः नौकरी पर जाने लगी। जग्गी का योग प्रशिक्षण जारी रहा। उनके फार्म से मिलनेवाली किराए की रकम से उनकी मोटरसाइकिल का खर्च चलता रहा, इसकी पेट्रोल टंकी भरी रहती थी, उसी तरह उनके हृदय भी। थोड़े और की जरूरत थी, जग्गी ने अपने रिश्तों की शुरुआत में ही विजी को किसी भी जरूरत के वक्त यात्रा के लिए तैयार रहने को कहा था। वह तैयार थी। जग्गी पर उसका दृढ़ विश्वास था। उसके मित्रों ने हमेशा यही पाया कि उसके मुँह से ऐसा कोई भी वाक्य

नहीं निकलता, जिसमें उनका (जग्गी) नाम कम से कम तीन बार न आता हो। और इसलिए दोनों प्रफुल्लित व बनजारों-सा जीवन जी रहे थे। कई-कई दिनों मोटरसाइकिल पर यात्रा करते हुए, बगैर किसी तय गंतव्य के, कभी सड़कों के किनारे, तो कभी जंगलों में, कभी समुद्र तट पर सो जाते। एक ऐसा भी समय था जब जग्गी की मोटरसाइकिल ने एक कैलेंडर वर्ष की अवधि में ही छप्पन हजार किलोमीटर की यात्रा दर्ज की।

जग्गी ने अपने रिश्ते की शुरुआत के समय विजी के सम्मुख एक और बात का खुलासा किया था; यह तथ्य कि वह 42 साल से ज्यादा जीवित नहीं रहेंगे। उनका विवाह होने तक वह पूर्वनिर्धारित तिथि आ गई। विजी ने जो जग्गी को धार्मिक होने के उत्साह तक प्रेम करती थी, इससे कोई अवरोध महसूस नहीं किया।

एक युवा कॉलेज छात्र को, जो उन दिनों प्राय: जग्गी के पास आता था और उन्हें अपना गुरु मानता था, विजी का अपने पति के प्रति समर्पण कभी-कभी उलझन में डालनेवाला लगता। उसे याद है कि किस तरह एक बार विजी ने उसे चपाती बनाने में हाथ बँटाने को कहा था। जग्गी को चपाती पसंद थी और विजी खास तौर पर वैसी ही चपाती बनाती जैसी उन्हें पसंद थी। इस प्रक्रिया में युवक से चपाती जल गई और वह यह देखकर घबरा गया कि विजी सुबकने लगी थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इसमें रोने जैसी क्या बात है। लेकिन विजी ऐसी ही थी। चंचल और अत्यधिक नर्वस स्वभाववाली विजी का अपने पति के प्रति प्रेम प्रचंड और सबकुछ समाहित करनेवाला, शायद खब्ती भी था। लेकिन कुछ इससे भी बढ़कर था। अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के प्रति पूर्ण लापरवाह, वह शायद स्वयं जग्गी से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं थी। दोनों ही स्वयं के प्रति लापरवाह थे। जग्गी के मामले में उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति तर्क और पूर्वज्ञान, दीर्घकालीन लक्ष्यों के निर्माण और मूल्यांकन की प्रच्छन्न गुरु की योग्यता से मुक्त थी। विजी की भावनात्मक गर्मजोशी स्वाभाविक थी।

अपनी शादी के एक वर्ष बाद जग्गी ने आवश्यकतानुसार और ज्यादा पैसा कमाने का निर्णय लिया। शहर के कार्यालय में बैठकर लोगों से मिलते-जुलते हुए, हर समय पैसे के विषय में सोचते हुए, हर समय यह सोचते हुए कि आप उनसे और अधिक कैसे प्राप्त कर सकते हैं; ''यह कुछ ऐसा था जिसके साथ मैं नहीं रह सकता था। इसलिए मैंने अपना व्यवसाय छोड़ दिया और एक दूसरा फार्म प्रारंभ करने का विचार किया। पहले से ही मेरे पास एक फार्म था लेकिन मुझे कुछ ज्यादा की जरूरत थी। मैं हैंग ग्लाइडर उड़ाया करता था। इसलिए मुझे ढलावदार स्थान की तलाश थी। किसी न किसी तरह से पर्वत के प्रति यह पागलपन मुझमें हमेशा से रहा।''

उन्होंने मैसूर से लगभग 32 कि.मी. दूर 14 एकड़ का एक भू-खंड खरीद लिया। यह एक पर्वतीय ढलाव पर स्थित था, और इसके विपरीत तरफ भगवान शिव का एक मंदिर था और सामने एक झील थी। यह जमीन पथरीली और कृषि योग्य नहीं थी, उसमें खेती के लिए विनियोग करना नादानी थी—या ऐसा माना जाता था। ''लोग इसे मेरा झक्कीपन समझ रहे थे और गाँव में यह बड़े मखौल का विषय था। गाँव के लोग हँसा करते थे। प्रतिदिन मैं कुछ नया करता और वे सोचते, 'अरे, यह बुद्धू एक और मूर्खतापूर्ण काम कर रहा है।' किंतु जग्गी ने नारियल, गोभी, आम, और कभी-कभी, कपास का वृक्षारोपण शुरू किया। उन्होंने आसपास की झाड़ियाँ साफ कर दीं; ड्रिप सिंचाई की साधारण, किंतु सरल प्रणाली ईजाद की, मैसूर चिड़ियाघर से मंगाई हुई खाद का प्रयोग किया, और भारी तादाद में उगी पार्थेनियम घास को काटकर इसका उपयोग पतवार की तरह किया। परिणाम एक लहलहाती फसल के रूप में सामने आया।

प्राकृतिक संसार से जग्गी की निकटता दीर्घकालीन रही है, और इस रिश्ते के स्वाभाविक भाव का विस्तार था उनका कृषक के रूप में जीवन। आज भी उनके कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण हमेशा की तरह व्यावहारिक और सहज रहा है। उन्होंने उन 'नीचे की ओर देखनेवाली और आकाश की ओर देखनेवाली निष्ठाओं' के बीच भेद की बात हमेशा की है। वह कहते हैं कि नीचे की ओर देखनेवाली निष्ठा किसी अन्य दुनिया की अपेक्षा धरती के लिए ज्यादा सम्मानजनक है। वह कहते हैं कि वे धर्म जो यह देखते हैं कि ईश्वर धरती पर ही है, कहीं अंदर गहराई में, वे इस ग्रह पर ज्यादा संभ्रांततापूर्वक चलते हैं। वे जो यह विश्वास करते हैं कि ईश्वर ऊपर है, वे आक्रामक रूप से चलते हैं। यह ग्रह (धरती)

उनके लिए उतना मूल्यवान नहीं है, क्योंकि वे सोचते हैं कि वे स्वर्ग जा रहे हैं। यदि आप इस जीवन से अपने आपको बहुत ज्यादा आँककर गुजर रहे हैं तो आप विध्वंसकारी हैं। यदि आप अपने जीवन का प्रत्येक कदम आभारपूर्वक उठाते हैं, यदि आप यह देखते हैं कि आप कितने क्षुद्र हैं, तो आप धरती पर बड़ी सज्जनता से, तीर्थयात्री की तरह चलते हैं; यह जीवन आपके लिए तीर्थ हो सकता है।

एक दिन उन्होंने अपने फार्महाउस का रंग-रोगन करना तय किया। इस हाथ से किए जानेवाले साधारण कार्य से भी उनका अपना रहस्यवादी अंतर्ज्ञान प्रकट हुआ। वह याद करते हैं, ''मैं अपने फार्म के भवन की पुताई कर रहा था, और आपको बताऊँ, मैं पुताई का ज्यादा सरल तरीका ईजाद करना चाहता था। मेरे पास समय कम था क्योंकि सारे फार्म की पुताई मैं अकेला कर रहा था। इसलिए ब्रुश डुबोकर मैं एक छोर से चलकर दूसरे छोर जाता था; फिर मैं पुनः ब्रुश डुबोकर एक छोर से दूसरे छोर को जाता। इसलिए पहली पुताई के लिए मैंने ब्रुश डुबोई और चल पड़ा। जब मैं यह कर रहा था तब यह पुताई गाढ़ी लगी, लेकिन इसके बाद यह फीकी होते-होते बिलकुल विलुप्त हो गई। मैं वहाँ बैठ गया और यह देखकर मुझे दिमाग में करारा झटका लगा क्योंकि मेरे लिए संपूर्ण अस्तित्व ही यहीं था। यही तो अस्तित्व है। कुछ भी जो स्थूल है, यह सूक्ष्मतर होता हुआ अभौतिक हो जाता है। जब यह अभौतिक हो जाता है तो आप इसे दैवीय कहते हैं। जब यह अत्यधिक स्थूल होता है आप इसे चट्टान या पदार्थ कहते हैं। सूक्ष्मता और स्थूलता के मध्य अनेक स्तर हैं। यही तो अस्तित्व है।''

उन्होंने कुछ मजदूरों की मदद से जमीन पर एक कुआँ भी खोदा। यहाँ भी उन्होंने ढलान के निम्नतम स्तर के स्थान पर इसके ऊपरी भाग को खोदते हुए, प्रचलित उपाय पर व्यंग्य कसा। इस खोज में चट्टानों के निर्माण से वे विश्वस्त हो गए कि वह उचित स्थल होगा। यह निचले स्तर की जमीन पर टंकी बनाने की अपेक्षा ज्यादा सुविधाजनक था जिससे जल वितरण की प्रणाली शेष फार्म के लिए कारगर होती। अपने तरीके से कुआँ खोदने की प्रक्रिया उन्होंने खोज निकाली —धरती के अंदर गहराई से खोदते जाओ, जल की अनिश्चित प्रत्याशा के साथ। यह एक गहन आध्यात्मिक अनुभूति थी। जब उन्हें अट्ठारह फुट की गहराई में जल स्रोत मिल गया तो ग्रामीणों ने यह देखकर दाँतो तले उंगलियाँ दबा लीं। इसे चमत्कार से कम नही आँका गया।

कुछ समय के बाद वह सहकारी कृषि की संभावना पर विचार करने लगे। यह ग्रामीण उत्थान के प्रति उनके दर्शन से मेल खाता था। यह विचार निजी स्वामित्व का त्याग कर सामूहिक स्वामित्ववाली सैकड़ों एकड़ जमीन का आधुनिक फार्म तैयार करने और संसाधनों को एकत्र कर लाभदायक व्यापारिक फसलों की खेती करने का था। उन्होंने कई छोटे किसानों में इस विचार के प्रति रुचि जगाई और परियोजना छोटे-छोटे चरणों में प्रारंभ हो गई।

''मैंने सोचा कि हम एक हजार एकड़ का फार्म कृषि स्नातकों के सहयोग से निर्मित करेंगे। बैंक ऋण लेकर नलकूप व ड्रिप सिंचाई की व्यवस्था कर सात-आठ तरह की विभिन्न वर्गों की फसलें लेंगे, (जिसमें यदि एक फसल सफल नहीं भी रही तो दूसरी फसल से इसकी क्षतिपूर्ति हो जाएगी।) और भूमि का विभाजन उसके उपजाऊपन व गुणवत्ता के आधार पर करेंगे। जहाँ तक लाभ-विभाजन की बात थी, तो सभी को इसका बराबर हिस्सा प्राप्त होता। मैंने इस अवधारणा पर कार्य करने का प्रयास किया। मैंने इन फसलों को नवप्रवर्तनकारी विधियों से उगाने के विषय में प्रलेख तैयार करना शुरू कर दिया। मैंने वहाँ उगनेवाली हर फसल के विषय में लगभग आठ सौ पेज का विवरण लिखकर तैयार कर डाला। मूलभूत रूप से मेरा विश्वास था कि यदि हम खेतों का एकीकरण करते तो जो भी हम करते, वह आर्थिक रूप से उचित होता। दो या तीन एकड़ के खेतों में आप जो कुछ भी करने की कोशिश करते हैं, वह कारगर नहीं होता। और यदि आप मात्र एक फसल उगाते हैं, और वह यदि (बाजार में) असफल हो गई तो आप बर्बाद हो जाते हैं। आप पुनः ऋण लेते हैं, आत्महत्या करते हैं, इत्यादि। लेकिन यदि आठ फसलें ली जा रही हैं और एक फसल कामयाब नहीं होती है तो उसकी क्षतिपूर्ति आप दूसरी से कर सकते हैं। और इस फसल को सभी लोगों के बीच बाँट दिया जाएगा।''

लेकिन उन्हें इस बात का भी भान था कि आर्थिक सुधार कभी भी पर्याप्त नहीं होगा। उन्हें मालूम था कि वास्तविक

रूपांतरण का स्रोत प्रत्येक मानव के गहनतम प्राय: बंजर अंतरमन में है जहाँ प्राय: आकाश का सुदूर टुकड़ा भी नजर नहीं आता था। मात्र भौतिक कल्याण की पहुँच वहाँ तक नहीं हो पाती।

जब शहतूत फार्मिंग का प्रयोग अपनाया गया तो स्थितियाँ स्वाभाविक ठहराव पर आ खड़ी हुईं। जग्गी की योजना शहतूत की पत्तियाँ रेशम के कीड़े पालनेवालों को बेचने की थी। फसल अच्छी हुई। फसल पकने के समय में मात्र एक महीना रह गया था। एक दिन जग्गी ने अपनी टीम के एक व्यक्ति से चर्चा छेड़ दी कि उसके फार्म के आसपास सूखी जंगली घास को सावधानी से जलाकर खत्म करने का समय आ गया है। कुछ दिनों के बाद वापसी के दौरान पहाड़ी की चोटी पर अपनी मोटरसाइकिल खड़ी कर वहाँ हमेशा की तरह ठहरे। वहाँ से वह अपने फार्म और आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों का परिदृश्यात्मक निरीक्षण करना चाहते थे। इस बार उन्हें झुलसकर काली पड़ गई जमीन ही नजर आई। जब वह सवारी करते हुए परेशान से आगे बढ़े, तो उन्होंने ग्रामीणों को शांत, परेशान भाव से अपनी ओर देखते पाया। इस तरह की अभिव्यक्ति कोई बरबादी की स्थिति में ही व्यक्त करता है। वह कहते हैं, ''हर कोई मेरी ओर इस भाव से देख रहा था जैसे यह आदमी तो बरबाद हो गया।''

जब वह अपनी जमीन पर लौटकर आए तो उन्होंने देखा कि सारा का सारा फार्म आग की लपेट में था। उनका आदमी उनके आने के दस मिनट पहले ही गायब हो गया था। किंतु उसकी भयाक्रांत पत्नी इस विषय में कुछ बताने के लिए छूट गई थी। रो-धोकर वह विवरण उन्हें सुनाया गया और जग्गी ने अंतत: कुछ तथ्य एकत्र कर लिए। उस उत्साही कर्मचारी ने अपने मालिक की अनुपस्थिति में ही झाड़ियों में आग लगाने का फैसला ले लिया था। किंतु मिनटों में ही आग अनियंत्रित हो गई। उसने स्थिति पर नियंत्रण पाने का पुरजोर प्रयास किया किंतु सारा स्थान उसकी आँखों के सामने आग के लपेटे में आ गया। कहने को कुछ रहा ही नहीं, ''मोटरसाइकिल की आवाज सुनते ही मेरा सहायक पहाड़ों की तरह चंपत हो गया। उसने सोचा होगा कि मैं उसे मार डालूँगा। उसने अपनी पत्नी को मुझे जानकारी देने के लिए वहीं छोड़ दिया था क्योंकि मैं उसकी पिटाई तो कर नहीं सकता था—कम से कम उसे इतना यकीन था। इसलिए वह काँपते हुए वहाँ खड़ी थी, और अपने आपको बचाने के लिए उसने अपने शिशु का सहारा ले रखा था।'' हँसते हुए वह आगे कहते हैं, ''शायद उसे यकीन था कि यदि वह अकेली होती तो मैं उसका गला घोंट देता या ऐसा ही कुछ करता। मैंने चारों ओर देखा और पाया कि सबकुछ जलकर खाक हो चुका था। वह सारा का सारा बैंक ऋण जो मैंने ले रखा था, वह सारा पैसा जो हासिल होने का मुझे भरोसा था, सबकुछ बिलकुल खत्म। मैं बिलखिलाकर हँसने से स्वयं को रोक न सका, लेकिन फिर मैं यह भी जानता था कि वह यह सोच लेती कि मैं पागल हो गया था या ऐसा ही कुछ। मैंने उसकी तरफ मानो क्या हुआ, पूछने के लिए देखा। उसने कहा, 'नहीं, नहीं, हमने यहाँ कुछ नहीं किया, वह तो मात्र झाड़ी में आग लगाने की कोशिश कर रहे थे, और हमें नहीं पता क्या हुआ। अचानक हर जगह आग फैल गई।'''

उसकी कहानी सुनकर जग्गी को समझ में आया कि अब करने के लिए कुछ रहा ही नहीं। वह कहते हैं, ''मैं यहाँ कुछ दिनों तक ठहरने की पूरी तैयारी से आया था। लेकिन अब फार्म में कुछ काम रहा ही नहीं। फार्म था ही नहीं। अब मैं पूरी तरह स्वतंत्र था। मैं वापस मुड़ा और मैसूर लौट गया।''

वह बैंक में लंच ब्रेक पर विजी से मिले और बाहर चलकर भोजन करने का प्रस्ताव रखा। उसने पूछा, ''भला आप वापस कैसे आ गए? आप तो दो या तीन दिनों तक आनेवाले ही नहीं थे।''

मैंने कहा, ''सारा फार्म जलकर खत्म हो चुका है और अब मैं आजाद हूँ।'' उसकी तो साँस ही रुक गई।

मैंने कहा, ''मैं तुमसे भोजन के लिए बाहर चलने को कह रहा हूँ। तुम क्या शिकायत कर रही हो?''

उसने कहा, ''लेकिन फार्म?''

मैंने कहा, ''वह जल गया। अब हमें इसकी और चिंता नहीं करनी है। रोज-रोज फार्म को लेकर कई समस्याएँ रहा करती थीं। अब सारी परेशानी ही खत्म हो गई।''

वह परेशान हो उठी थी। उसने कहा, ''लेकिन जो कर्जा ले रखा है उसका क्या होगा?''

मैंने कहा, ''अभी तो हम आजाद हैं। बाद में सोचेंगे कि कर्जे का क्या करना है।''

उसने कहा, ''इस तरह की स्थिति में भी आपको हँसी कैसे आ रही है?''

मैंने कहा, ''ठीक है, यदि तुम रोना चाहती हो तो रोओ। मैं किसी और के साथ लंच कर लूँगा।''

तब उसने अंतत: कहा, ''ठीक है, यदि आपको कोई तकलीफ नहीं है, तो मुझे क्या?''

और मैंने कहा, ''अब तुम कहीं चल रही हो।''

संकट के प्रति उनकी शांत प्रतिक्रिया का अर्थ भयाक्रांत साथी को मनाना या समझाना नहीं था। सद्गुरु हमेशा इस बात पर अडिग रहते हैं कि, ''प्रतिकूलता कैसी भी आ जाए, खुशी का दामन कभी नहीं छोड़ना चाहिए। उस फार्म के जलकर नष्ट हो जाने का अभिप्राय यह था कि मैं अगले तीन-चार महीने यात्रा करके प्रशिक्षण प्रारंभ कर सकता था। और आप जानते हैं, मैंने एक दूसरी फसल उगाई। शहतूत की फसल में मैं कई सालों तक उलझा रहता। मैंने तीन महीने की अवधिवाली कपास की फसल उगाई, अच्छे पैसे कमाए और कर्ज चुका दिया। उसके बाद, निस्संदेह मैंने अपना फार्म बेच दिया, किंतु ऐसा मैंने किसी वित्तीय संकट के कारण नहीं किया बल्कि समयाभाव ही इसकी प्रमुख वजह थी। देखिए आपको केवल तभी खुश नहीं रहना है जब सबकुछ ठीक-ठाक चल रहा है। यदि आप खुश हैं तो निश्चय ही आप अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करेंगे। अत: चूँकि आप पूरा प्रयास करते हैं इसलिए सबकुछ किसी और के बदले आपके लिए बेहतर होता जाता है।''

इस दौरान योग कक्षाएँ जमकर चल रही थीं। जग्गी ने अपने अंतर्ज्ञान से यह महसूस किया था कि उनके जीवन लक्ष्य के सहारे का एक अहम स्रोत तेलुगु भाषी क्षेत्रों से प्राप्त हो सकता है। उन्होंने हैदराबाद में कक्षाएँ संचालित की थीं, जो कि सफल रहीं थीं। किंतु उनके व्यक्तिगत खोज के नजरिए से कुछ भी फलदायी नहीं रहा था।

और फिर कुछ पर्वत थे— वे जिनकी छाप बचपन से ही उनके मानस पर अंकित थी। पर्वतों की हमेशा से वहीं—धैर्यशील, वैभवशाली, अमिट—स्थित होने के कारण उन्हें यह विश्वास हो गया था कि ये उनके जीवनकाल के कर्मस्थल हैं। वह अब भी उन्हें साफ-साफ देख सकते थे। लेकिन वे थे कहाँ? क्या वे सचमुच अस्तित्वान हैं? किन्हीं कारणोंवश जग्गी को विश्वास था कि उनका अस्तित्व है। उन्होंने करीब सात बार अपनी मोटरसाइकिल से पश्चिमी घाट के ऊपर-नीचे, गोवा से केरल के मालाबार तट तक यात्राएँ कीं। अपनी यात्रा के दौरान, उन्होंने बड़े शानदार व ऐश्वर्ययुक्त भू-भाग देखे। लेकिन उन्हें कहीं भी ये पर्वत (उनके पर्वत) नजर नहीं आए।

तभी एक दिन वे कोयंबतूर (तमिलनाडु) अपने मित्रों से मिलने के लिए गए। यह 1987 की बात है। वह बस स्टैंड पर उतरे। बस काफी पहले आ गई थी और मित्रों से भेंट हेतु निर्धारित समय में भी कुछ घंटों का समय था। उन्होंने बस डिपो में बैठकर प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया। अभी चार बजे थे, अँधेरा अभी भी पसरा हुआ था। हवा शीतल और ऊर्जादायी थी। जग्गी अपने सूटकेस पर बैठ गए। कुछ ही क्षणों में वह गहरे ध्यान की स्थिति में आ गए।

उन्होंने अपने पूर्व जीवनकालों (जन्मों) की स्मृति, चामुंडी जागृति के ठीक बाद, पाँच वर्षों पूर्व प्राप्त की थी। किंतु उनकी यादों के कुछ हिस्से तब भी धुंधले थे। अपने लक्ष्य की दिशा में उनकी कई अटकलें थीं किंतु वे तब भी अस्पष्ट नहीं थीं। अब तो विस्मृति के अंतिम निशान भी विलुप्त हो चुके थे। दो घंटे बाद जब उन्होंने उठकर अपने मित्रों का स्वागत किया, तब तक किसी भी संदेह की गुंजाइश नहीं रह गई थी।

अब उन्हें मालूम था कि उन्हें अपने जीवन के कार्य की तलाश कहाँ करनी है, और कहाँ उन्हें अपने निष्ठावान साथी मिलेंगे। वे यहीं तो थे। यहाँ इन रुपहले पर्वतों के शहर में। यहीं, उस भूमि पर जहाँ सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने अपने जीवनकाल के दौरान विस्तृत यात्रा की थी। यह कोयंबतूर ही तो था।



‘षड्यंत्र के रूप में करुणा’

फसल काटने की तैयारी

‘‘जब आप एक फसल उगाते हैं, तो आप जानते हैं कि इसमें निराई (खरपतवार निकालने) की आवश्यकता होती है।’’ एक बार सद्गुरु ने मुझे बतलाया, ‘‘इसे सही समय से करना महत्त्वपूर्ण होता है।’’

अपने लक्ष्य से संबंधित क्रियाकलापों के स्थल के रूप में कोयंबतूर की खोज कर लेने के बावजूद जग्गी ने स्वयं को अविलंब वहाँ स्थापित नहीं किया। उन्होंने अगले वर्ष का अधिकांश समय अपने फार्म में सापेक्षिक एकांतवास के तौर पर बिताया। उन्होंने अपने अन्य क्रियाकलापों में कटौती कर, ज्यादा-से-ज्यादा समय ध्यान को समर्पित किया। किंतु वह आलसी बिलकुल नहीं थे। एक रहस्यवादी संत के दृष्टिकोण से यह काफी व्यस्ततम समय था। जग्गी निराई कार्य में व्यस्त थे।

यह आध्यात्मिक उद्यान विद्या का अभिप्राय क्या था? वह कहते हैं कि अपने कार्यों के अगले चरण का आवश्यक मार्ग प्रशस्त करना। इसका अभिप्राय उन लोगों के जीवन को अनाश्यक कचरे (कर्म बंधन) से रहित करना था जिनके साथ वह संबंध साधेंगे। वह उन सभी की अपेक्षाकृत विशाल लक्ष्य में प्रतिभागिता के लिए सुचालक स्थिति निर्मित कर रहे थे। वह रहस्योद्घाटन करते हुए कहते हैं, ‘‘मैं जानता था कि कोयंबतूर के कई हिस्सों से मेरी योजना का स्वाभाविक विरोध होगा। मैंने इन्हें आते हुए देखा था। और मैं, मिट्टी की सफाई करते हुए, जितना संभव था, पौधों की उतनी काट-छाँट करते हुए, इसी की तैयारी कर रहा था।’’

1989 में उन्होंने कोयंबतूर में अपनी प्रथम कक्षा (कार्यक्रम) संपन्न की। इसमें दस लोगों ने भाग लिया। राजा नामक एक इंजीनियर थे जो मात्र उत्सुकतावश एवं साइनॉसाइटिस बीमारी से छुटकारा पाने की दबी इच्छा से प्रेरित थे। स्वामीनाथन, जो तिरुपुर में जीवविज्ञान के प्रोफेसर थे, जिन्हें उम्मीद थी कि योग से वह माइग्रेन बीमारी से राहत पा जाएँगे। पुन्नुस्वामी, चावल मिल के मालिक, जोड़ों के दर्द से पीड़ित थे और इससे निजात चाहते थे। गीता, एक इंजीनियर युवती पिछले कुछ समय से अवसादग्रस्त थी और इसकी वजह से अनभिज्ञ थी। ये उन थोड़े लोगों में थे जो जग्गी की ओर शुरू में हिचकिचाहट और बाद में आभार व भलाई के भाव से आकर्षित हुए। तिरुपुर के एक ध्यानी साधक को उनके (जग्गी) पहले कार्यक्रम के दौरान कार्यक्रम स्थल के बाहर एक परिचारक की निगरानी में अपने जूते रखना याद है। हाल में प्रवेश करने पर उन्होंने पाया कि वह जूते-चप्पलों वाला परिचारक स्वयं एक शिक्षक था, जो अब प्रभावकारी वक्ता में परिवर्तित हो गया था। ऐसे ही एक अन्य ध्यानी साधक के हृदय को यह देखकर बड़ी तसल्ली हुई कि उनका योग शिक्षक प्रतिभागियों के साथ भोजन करने के अलावा प्राय: भोजन के लिए सब्जी काटता भी नजर आता था।

उन्होंने पाया कि यह कक्षा मात्र योगासन सिखाने के लिए नहीं थी। देह कुंचन हठ योग को जग्गी ने ‘कोलंबस योग’ का नाम दिया, जोकि पश्चिम से प्रतिक्षेपित था। उनके द्वारा सिखाया जानेवाला योग आसनों, प्राणायाम एवं ध्यान के अभ्यासों का मिश्रण हुआ करता था। उनका सिखाने का तरीका काफी सहज एवं वैज्ञानिक था। उनके निर्देश बोधगम्य, उनके व्याख्यान खरे एवं मजेदार हुआ करते थे।

किंतु ध्यान के अभ्यास में दीक्षित करने की प्रक्रिया विस्फोटक रहा करती थी। यह पहले के अल्पभाषी जग्गी नहीं हुआ करते थे। 1982 से जग्गी एक से अधिक मायनों में बदल चुके थे। उनकी उपस्थिति से स्नेहमयता एवं तेजस्विता झलकती थी। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण एवं विनोदपूर्ण, उनकी ऊर्जा समाहित करनेवाली व करुणामय हुआ करती थी। उनका आसपास उपस्थित होना ही रुचिकर होता। वह एक अच्छे श्रवणकर्ता थे। संक्षेप में कहा जाए तो वह प्रभावशाली थे।

जब वह कोयंबतूर में अपनी कार चलाकर सवारी करते तो पूरी गति पर। जब वह पर्वतों पर ट्रेकिंग करते तो उनकी गति की बराबरी करना मुश्किल होता था। लेकिन इसके अलावा भी कुछ और था। उनमें विविध मिजाज एवं रुचियोंवाले व्यक्तियों को—चाहे वे भक्त हों या संशय करनेवाले, भावुक हों या बौद्धिक, सहज हों या आधुनिक, ग्रामीण हो या शहरी—अपनी ओर खींचने की रहस्यमय योग्यता थी।

उनकी उपस्थिति की आभा अभी भी विद्यमान है जिससे गुरुओं से भय-भाव रखनेवाले कुछ दोषदर्शियों का भ्रम लगातार टूट रहा है। उनकी स्वाभाविकता, शब्दों की अप्रयासपूर्ण मितव्ययिता व हावभाव और स्पंदनशील जीवन की मौज विविध रुचियोंवाले लोगों को उनकी ओर खींचती है। मूडी, सनकी, फिर भी प्रीतिकर मनुष्य के स्वभाव के साथ वह मौका मिलते ही दकियानूस गुरु की छवि का परिहास करते से लगते हैं। ''मैं टेलीविजन के आध्यात्मिक चैनलों के उन मूर्खों जैसा होने से इनकार करता हूँ।'' यह टिप्पणी उन्होंने हालाँकि कोयंबतूर के युवाओं के साथ मोटरसाइकिल रेस में शामिल होने पर विचार करते हुए की थी, लेकिन उन्हें जानने वाले यह मानते हैं कि वह बड़े ही मिलनसार व मृदु हैं। इसके अलावा उनके सहज तौर-तरीके में वैभव की ऐसी झलक है जिसे भू ओझल नहीं किया जा सकता। इसमें कुछ भी नकलीपन-सा नहीं है। यह उनकी हँसी सा ही स्वाभाविक है। और इसी से उनके प्रति सम्मान जाग उठता है, उनके अनौपचारिक ढंग से हम शीघ्र ही सहजता महसूस करते हैं।

लोगों की भावनात्मक आवश्यकताओं के साथ गहराई से प्रसंग जोड़ने की योग्यता और वैसी ही योग्यता उनके निष्पक्ष और गैरसमझौतावादी विश्लेषण में भी झलकती है। अपने इस असामान्य समन्वय के कारण ही शायद वह, जैसा कि उन्होंने प्राय: कहा है, ऐसे गुरु संभव हुए हैं, जिनसे ज्ञान और भक्ति दोनों पंथ के लोग जुड़ सकते हैं। दोनों ही पंथ मार्ग में झुकाव रखनेवाले लोग उनकी ओर खिचे चले आते हैं।

इशा (या सहज स्थिति, जैसा कि तब इसे जाना जाता था।) योग की कक्षा प्राय: व्यक्ति के शरीर, मन, भावना और ऊर्जा के मिश्रण के दृष्टिकोण पर आधारित रही है। जग्गी कार्यक्रम के प्रारंभ में प्राय: कहते थे कि कोई भी व्यक्ति पूरी तरह भावना या पूरी तरह मन नहीं है। हर कोई इनका मिश्रण है और ऐसी योग विधि तैयार करना संभव है जो हर तरह के व्यक्ति के लिए उपयुक्त हो। इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में साधारण आसनों, प्राणायान क्रिया और ध्यान को समन्वित किया जाता है। जाहिर तौर पर यह काफी सरल है। लेकिन बहुत से लोग जो अन्य योग कक्षाओं में सम्मिलित हुए हैं, वे इस योग के काफी भिन्न होने का दावा करते हैं।

तब यह कारगर कैसे हुआ? यह अब कारगर कैसे है? इसकी जानकारी किसी को है, ऐसा लगता नहीं है। बहुत से उन योग शिक्षकों को भी नहीं जो सालोंसाल इसे संसार के अनेक भागों में ले गए हैं। लेकिन एक बात निश्चित लगती है; इशा योग कार्यक्रम में जो सतही तौर पर होता दिखाई पड़ता है, उससे भी अधिक कुछ होता रहता है। इसकी सहजता भ्रामक है। जो धीरे-धीरे उनपर स्पष्ट होता है जो योग में पकने की जरूरत महसूस करते हैं लेकिन उन्हें इसका कारण समझ में नहीं आता। यह एक तथ्य है कि साधारणतया प्रत्येक कार्यक्रम गुरु की ऊर्जा और उनकी उपस्थिति से परिपूर्ण होता है। इसके लिए वातावरण शब्द का प्रयोग किया जाता है। वातावरण वास्तव में एक बहुत अच्छा शब्द है। वातावरण के कारण ही कोई बार-बार कार्यक्रमों में लौटकर आता रहता है। या वस्तुत: आश्रम या सद्गुरु के पास। वातावरण इतना मौलिक है जितना घंटी का बजना, जितनी गहन आंतरिक धड़कन, एक स्थिर, बराबर स्पंदन। आप इसे अपने गुरु के रूप में पहचानते हैं। आप निरंतर इसे अपने स्वयं के रूप में पहचानते हैं।

1989 में यद्यपि वह अभी सद्गुरु नहीं थे, वह फीकी जींस और टी-शर्ट पहने, दाढ़ी और लंबे बाल बढ़ाए, आकर्षक युवक थे। लेकिन स्थितियाँ उनके आसपास निर्मित हो रही थीं, जिन्हें कोई समझ ही नहीं पाया। यह उनके योग प्रशिक्षण से विलुप्त होनेवाली शारीरिक और मानसिक बीमारियों की ही बात नहीं है। इससे निश्चित रूप से उन्हें विश्वसनीयता हासिल करने में मदद मिली। लेकिन जिस तरह वह लोगों को अपनी तरफ खींचते थे, यह उससे संबंधित थी। अल्पकाल में ही ऐसा लगता था कि वह उनके जीवन के लिए अनिवार्य हो गए हैं। ये अलग-अलग उम्र, वर्ग और अलग-अलग

क्षेत्रों से जुड़े लोग थे, किंतु वे समान रूप से समर्पित लगते थे। उन्हें मालूम ही नहीं था कि यह सब कैसे और क्यों हुआ। लेकिन जग्गी के प्रति उनकी आस्था गहरी और स्वाभाविक थी। कर्नाटक से कोयंबतूर पहुँचे साधक यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि किस तरह जग्गी ने कोयंबतूर के साधकों को अपने वश में कर रखा था। इससे वसुदेव के घर जग्गी के जन्म दिवस पर पहुँचे उस भविष्यवक्ता की भविष्यवाणी याद आती थी; 'यह मनुष्यों को चराएगा।'

एक स्वयंसेवी और आगे चलकर शिक्षक के तौर पर उनके साथ करीब से जुड़कर कार्य करनेवाले राजा कहते हैं कि उन्होंने जग्गी में जो सर्वाधिक प्रेरणास्पद गुण देखे वे हैं उनकी सहजता, उनका खुलापन, उनकी सहृदयता और उनका अनंत धैर्य। ''लोगों से व्यवहार करना उन्हीं से सीखा। टीचर्स ट्रेनिंग कार्यक्रम में भी, जिसका मकसद लोगों के अहं को कुचलना है, मैंने देखा कि वह काफी सावधानी से बिना किसी को चोट पहुँचाए यह कार्य करते थे। ऐसा लगता था मानो उन्हें हर किसी में इच्छा उत्पन्न करने की युक्ति मालूम है। इसके बाद किसी की भावनाओं को चोट पहुँचने का प्रश्न ही नहीं उठता था। इस दृष्टिकोण का सूत्र सद्गुरु के हाल ही में दिए गए एक वक्तव्य से प्रकट होता है; इससे यह स्मरण करने में मदद मिलती है कि कोई भी दबाव में आना नहीं चाहता। बल्कि हर किसी की लालसा सम्मिलित किए जाने की होती है।''

जग्गी ने जिस ढंग से कई तरह की उकसानेवाली स्थितियों में अपनी प्रतिक्रिया दी, राजा उससे भी काफी प्रभावित हुए। ''उनका मिजाज कभी भी गरम नहीं हुआ। एक बार मैं उनके कुछ आमंत्रण पत्र मैसूर में रहनेवाले उनके परिवार और मित्रों को डाक से प्रेषित करना भूल गया। वह जब-तब मुझसे पूछते रहे कि मैंने उनका यह कार्य किया या नहीं। मैं उन्हें आश्वासन देता रहा कि कर दिया है। मैंने उन्हें बताया कि डाक के विलंब की वजह से उन्हें नहीं मिला होगा। लगभग एक सप्ताह के बाद मैंने पाया कि आमंत्रण पत्र तब भी मेरे ही पास पड़े थे। मैंने अपनी योजना के मुताबिक उन्हें डाक में नहीं छोड़ा था। मुझे इस बात का काफी बुरा लगा। जब मैंने उनसे अपनी गलती के लिए माफी माँगी तो मेरी आँखों में आँसू थे। लेकिन वह बहुत नम्र थे। उन्होंने कहा कि उन्हें लगा कि मैं भूल गया था, किंतु उन्होंने मुझे फटकार नहीं लगाई।''

मार्च 1990 में जग्गी की बेटी के जन्म के साथ ही उनका जीवन एक नए चरण में प्रविष्ट हुआ। एक ऐसा व्यक्ति, जिसे यह ज्ञात है कि वह दशक भर से अधिक जीवित नहीं रहेगा, उसका ऐच्छिक रूप से पिता बनना एक असामान्य निर्णय लगता है। वह स्वीकार करते हैं, ''हाँ शायद यह सच है, लेकिन विजी एक बच्चे के लिए काफी उत्सुक थी। उसके मित्रों ने उसे इस बात के प्रति विश्वस्त कर रखा था कि एक औरत के लिए मातृत्व बहुत अहम अनुभव है। और मैं उसकी इच्छा के आगे हार मान गया। क्योंकि यदि मैं बयालीस वर्ष की उम्र में उसका साथ छोड़ देता तो कोई तो उसके जीवन में रहता। यह उसके जीने का सहारा होता।''

समय कम होने का पूर्वाभास होने से, उनका जीवन और ज्यादा व्यस्त हो गया। उन्होंने अपना समय बंगलोर (जहाँ विजी का तबादला हुआ था) और तमिलनाडु के विभिन्न क्षेत्रों (कोयंबतूर के अतिरिक्त) में बाँट दिया था। जिसमें तिरुप्पुर, इरोड और करूर शामिल थे, जहाँ वह सुबह से रात तक कार्यक्रमों को संचालित करने में व्यस्त थे। यात्रा के दौरान वह अपनी बेटी को भी साथ ले जाते, जिससे उसे (बेटी) अपने प्रारंभिक जीवन का बड़ा भाग विभिन्न साधकों के परिवारों की देखरेख में बिताना पड़ा। हर दूसरे सप्ताहांत विजी और वह या तो कोयंबतूर में मिला करते या बंगलोर में।

आइए वरिष्ठ इशो साधकों में से कुछ के दृष्टांत से जानते हैं कि स्वयं को सद्गुरु में रूपांतरित करने के पूर्व के दिनों में जग्गी अपने नवोदित शिष्यों को कैसे महसूस होते थे।

इंद्रा (अब माँ करपूरी) बताती हैं : ''अपने पति की जिद पर अनिच्छा-पूर्वक मैं मात्र प्रारंभिक वार्त्तालाप के लिए जाने को तैयार हुई। जग्गी के प्रवेश करते ही, मुझमें जिज्ञासु भाव जगे। मैंने ऐसा महसूस किया कि मेरे संपूर्ण जीवन का सरोकार कहीं और से नहीं है। मैंने हर जगह तलाश की थी—मंदिरों में, गिरिजाघरों में और विविध आध्यात्मिक परंपराओं में और हमेशा मतांधता और ढोंग पाकर अलग हो गई। और यहाँ कक्षा में प्रवेश करनेवाला योग शिक्षक था।

मैं उनके पैरों को ही देख पाई थी। और मेरी आँखों से आँसू झरकर मेरे चेहरे में समाने लगे। मुझे याद है कि यह विचित्र अतार्किक विचार मेरे मन में आया; 'कब तक आपने मुझसे इंतजार कराया।' और एक सेकेंड के बाद विचार आया; 'यदि जीसस धरती पर होते, तो उन्हें विचरण करते देखकर ऐसा ही लगता।'''

इसी तरह भारती, दो बच्चों की माँ (जो विवाह के बाद विशाखापट्टनम से कोयंबतूर आ गई।) कक्षा में सम्मिलित हुई। एक स्पष्टवादी सोच, संतुलित दिमाग की इस महिला का जग्गी के प्रति-प्रत्युत्तर बिलकुल भावुक नहीं था। ''कोयंबतूर आने के यही कोई पाँच-छह महीने बाद मेरी ननद ने मेरे पति को एक नई योग कक्षा के विषय में बतलाया। उसे बताया गया था कि यह उसके तनाव को नियंत्रित करने में मददगार सिद्ध होगा। और उसने सोचा कि इससे मेरे पति की दीर्घकाल से चली आ रही पेट की तकलीफ का शमन होगा।'

स्वयं भारती का कार्यक्रम में सम्मिलित होने का इरादा कतई नहीं था। ''मैंने सोचा कि मेरा जीवन हर तरह से व्यवस्थित है। स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती की समस्या नहीं है; मेरे बच्चे थे, पर्याप्त पैसा था, यात्रा के अवसर थे और विशेषरूप से तनावग्रस्त भी नहीं थी। इसलिए मुझे लगा कि मैं क्यों अपना नाम दर्ज कराऊँ। लेकिन परिचय वार्त्ता के दिन, मैंने अपनी ननद को कार्यक्रम स्थल पर छोड़ा और उसने मुझसे भी व्याख्यान में सम्मिलित होने के लिए कहा। मैं कभी भी तांत्रिकों या गुरुओं के पास नहीं गई। मैंने कभी भी किसी स्वामीजी के पैर नहीं छुए। लेकिन मैंने मात्र यह सोचकर रुक जाने का फैसला लिया कि वह चर्चा योग के भौतिक पहलुओं पर आधारित होगी। अंदर जाकर मैंने सफेद धोती-कुर्ता पहने एक दाढ़ीवाले व्यक्ति को देखा। वह बहुत आकर्षक नहीं दिख रहे थे। वह कद में कुछ छोटे भी लगे, कुछ शंकरन पिल्लै की तरह!'' वह सद्गुरु के महान् आत्मा बनने की ओर संकेत करते हुए, उनकी चुटीली बातों को याद करते हुए, हँसती है।

जहाँ एक ओर वह इस नए योग शिक्षक के व्यक्तित्व से बहुत ज्यादा प्रभावित नहीं हुईं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने स्वीकारा कि जो कुछ भी सद्गुरु ने कहा, वह सारगर्भित था। ''उन्होंने बताया कि यदि हम चाहें तो कैसे जीवन, जितना है उसकी अपेक्षा ज्यादा खुशनुमा हो सकता है। यह बहुत ज्यादा अटपटा नहीं लगा, इसलिए उत्सुकतावश मैंने इसमें सम्मिलित होने का निर्णय लिया। कार्यक्रम के समापन तक मैं इस योग के प्रति पूरी तरह समर्पित हो चुकी थी। शून्य ध्यान की विधि में अभ्यस्त होना तो निर्णायक मोड़ था। तभी मैं यह पहली बार समझी कि जीवन का दूसरा आयाम भी है—अपेक्षाकृत गहरा आयाम, अन्वेषण योग्य आयाम, जीवनकाल में इससे प्रतिबद्ध होने योग्य। यह क्या था मुझे मालूम नहीं था। लेकिन मैं जान गई थी कि योग कक्षा इस स्थिति की शुरुआत थी; कि यह आदमी कुछ जानता है, और हमें देने के लिये इसके पास काफी कुछ है—और मैं इसका स्वाद चखना चाहती थी।''

कार्यक्रम के कुछ सप्ताह बाद भारती सद्गुरु और अपने परिवार के कुछ सदस्यों के साथ दोपहर के भोजन में शामिल हुई। ''मैं चुपचाप बैठी हुई थी। किसी खास चीज पर मेरा ध्यान नहीं था। तभी धीरे से एक अनचाहा-सा कंपन मेरे मन और शरीर में होने लगा। शरीर का कंपन इतना स्पष्ट था कि स्वयं को हैरान करना न चाहते हुए, मैं कमरे से बाहर निकल आई। यह कंपन एक घंटे तक नहीं रुका। मैं तो कहूँगी कि सद्गुरु की ऊर्जा और वास्तविकता की यह पहली झलक थी।''

एकाएक वह साधारण-से योग शिक्षक कुछ ऐसी बात की शुरुआत करते लगे जो उसकी (भारती) कल्पना से भी वृहत्तर था। ''वह काफी विनम्र, सादे लगते हैं, लेकिन यदि आप छेड़ते हैं, तो उनकी ऊर्जा आपके भीतर जो तुम है, उसे नष्ट करने के लिए तुम्हारे भीतर आक्रमण करती है, और उस वास्तविकता को उजागर करती है जो तुम हो। मेरे अपने मामले में मेरे प्रतिरोध के बावजूद वे आक्रमण हुए। अचानक मेरे जीवन में असंतुष्टि और संघर्ष उपस्थित हो गए जो पहले अनुपस्थित थे। मुझे लगा कि जीवन अब जीवन नहीं रहा। जिसे मैं कल्याण समझती थी, वह अब कल्याण नहीं रहा। जिसे मैं खुशी समझती थी, वह एक छलावा मात्र था। अंतत: यह स्पष्ट हो गया कि जीवन में मेरे पास जो कुछ था, यह सबकुछ नहीं था।''

भारती ने अपने योग शिक्षक से दूरी बना रखी थी जबकि वह उनके परिवार की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति बन गई थी। उनकी ननदें उनके कोयंबतूर में होने के दौरान उन्हें बार-बार आमंत्रित किया करती थीं, और उनसे वार्त्तालाप करने के अवसर बढ़ते गए।

वह कहती हैं, ''यद्यपि पहले दिन से ही मेरी ऊर्जा एक अलग भाषा बोलती थी, फिर भी मेरा तर्क उन्हें मेरे निजीपन की सीमा लाँघने नहीं देता था।''

भले ही वह उन्हें औपचारिक रूप से 'सर' कहकर पुकारती थीं, लेकिन उन्हें स्वयं को उनकी तरफ असहाय-सी खिंची चली आने का अहसास था। साथ ही भारती के ध्यान का अनुभव उनकी उपस्थिति में गहरा होता गया। ''जीवन में रोमांच था। उन्होंने मुझमें काफी उत्सुकता जगा दी। और सर्वोपरि मैं उनका विश्वास करने लगी। पता नहीं क्यों, लेकिन मैं जानती थी कि मैं जीवनभर उनका विश्वास कर सकती थी।''

कुछ ही दिनों में इंदिरा को अपना जीवन खोखला और जिज्ञासावश विरल लगने लगा। ''जब परिचय वार्त्ता के बाद मैं लौटी, तो मेरा घर भी मुझे विचित्र लगने लगा। मेरे पति और मेरा काम मुझे अनजान से लगने लगे। मैं इतनी पृथक हो चुकी थी। जग्गी के साथ मेरे संबंध का बटन ही चालू था। कक्षा के चौथे दिन के पश्चात् मैं उनके पास गई। मेरे मुँह खोलने से पहले ही उन्होंने कहा, 'जो तुम्हारे साथ हो रहा है, उसका अहसास मुझे है। हड़बड़ाओ नहीं।' वह मुझे स्वभावत: जानते थे और विचित्र बात है कि मुझे भी उनका तुरंत यकीन हो गया।''

जग्गी की भद्रता और हार्दिकता के अलावा, उनके व्यक्तित्व का एक और गुण था जो इन शुरुआती साधकों ने तुरंत पहचाना; शीघ्रता। इंदिरा कहती है, ''वह जल्दबाज थे, यह तो स्पष्ट था। यद्यपि हम पूरी तरह उनपर आसक्त थे, फिर भी हमें यह भी अंदर से मालूम था कि यह व्यक्ति हमारा नहीं है। मैंने अपने अंतर्ज्ञान से यह जान लिया कि वह मेरे जीवन में कुछ ऐसा करने आया था जिसे कोई और करने का साहस नहीं कर सकता था। मैंने महसूस किया कि वह मेरा हाथ नहीं थामेंगे। मुझे भान था कि वह क्रूर हो सकते हैं। लेकिन वापस लौटने में तो पहले ही काफी देर हो गई थी। अब मेरी अपनी पसंद का प्रश्न भी नहीं रह गया था। मेरी दुनिया अलग सी होती जा रही थी। मुझे भय-सा अधर में लटका महसूस होता साथ ही मुझे लगता कि यह सही था। मुझे अपने हृदय की धड़कन सुनाई देने लगी, अपने श्वास-प्रच्छवास का आभास होने लगा, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।''

उसे वह क्षण याद है जब जग्गी ने उसे और भारती को अपनी तसवीर भेंट की। अपने पति की नाराजगी से बचने के लिए उसने इसे आलमारी में साड़ियों के बीच रख दिया। एक दिन उसे मैसूर से जग्गी का फोन मिला। ''मेरी फोटो तुम्हारी आलमारी में उलटी क्यों रखी हुई है?'' उन्होंने तुरंत और रूखेपन से पूछा। वह इतनी व्याकुल हो गई कि जवाब भी नहीं दे सकी।

एक अन्य अवसर पर जब उनकी अपने पति के साथ गरमा-गरमी चल रही थी, तभी उनके फोन की घंटी बज उठी। आधी रात का समय था। फोन उठाते ही उन्हें उनके योग शिक्षक की रौबीली आवाज सुनाई पड़ी, ''तुम लड़ क्यों रहे हो? चुप रहो और जाकर सो जाओ!'' बिस्तर की ओर बढ़ते हुए उसने अपने पति से कहा, 'रांग नंबर' और बत्ती बुझा दी।

सोनू (अब स्वामी गुरुभिक्षा) एक व्यवसायी हैं, और उनके मुताबिक वह पक्के साहूकार चेत्तियार परिवार से ताल्लुक रखते हैं। पहले कार्यक्रम में शामिल होने के शीघ्र बाद ही वह उलझन में पड़ गए। एक ओर तो वह त्वरित रूप से मजबूर से जग्गी की ओर खिंचे चले जा रहे थे, दूसरी ओर उनके परिवार की श्रद्धा तिरुअन्नामलई के विख्यात रहस्यवादी संत योगी रामसूरत कुमार के प्रति थी। निश्चित तौर पर एक व्यक्ति द्वारा दो गुरुओं के सान्निध्य में रहना धर्मनिष्ठ नहीं है। इस गतिरोध को समाप्त करने का एक ही तरीका था कि जग्गी को योग शिक्षक और रामसूरत कुमार को प्राथमिक मार्गदर्शक माना जाए। कई वर्षों तक, जग्गी के प्रति आस्था बढ़ते रहने के बाद भी, वह उलझन में रहे।

''अंतत: जब मैं 1993 में अपने गृहनगर (करैकुडी के नजदीक) जाने की योजना बना रहा था तब यह समस्या भी निबट

गई। तब जग्गी ने मुझे बताया कि मेरे गृहनगर में दो व्यक्ति उससे उनके विषय में पूछेंगे; उन्होंने मुझे उनकी ओर से उन्हें नमस्कार कहने के लिए कहा। जब मैं वहाँ पहुँचा तो बिलकुल वैसा ही हुआ। तब तक मैं शायद अपने मन की गहराई में यह जान रहा था कि जग्गी मेरे गुरु हैं, लेकिन इस घटना से यह बात पुष्ट हो गई। मैंने महसूस किया कि जग्गी अप्रत्यक्ष रूप से मुझे बता रहे थे कि मेरा गुरु कौन था।''

कक्षाएँ ज्यादा तेजी से बढ़ती गईं और लोकप्रिय होती गईं। 1990 में, पहली बार जग्गी ने भाव स्पंदन प्रोग्राम (बी.एस.पी.) कोयंबतूर में किया। छिपी भावनाओं को जागृत करने और रूपांतरित करने व मनोवैज्ञानिक रोड़े हटाने के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार किया गया। कार्यक्रम में भाग लेनेवालों पर इसका गहरा असर हुआ। राजा इसे 'भावनात्मक उच्चता' निरूपित करते हैं। 1991 में जब इस पाठ्यक्रम को इंदिरा ने किया, तब उन्होंने पाया कि वास्तव में मृत्यु-ध्यान के दौरान उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया था। ''पहली बार मैंने मृत पड़ी अपनी देह के सिर पर मक्खियाँ भिनभिनाते हुए देखा।'' भारती को यह कार्यक्रम भावनात्मक रूप से अत्यधिक तरंगित और अलग सा लगा। उन्हें बिलकुल विश्वास नहीं हुआ कि इस तीव्र भावना ने अपने आपको इतना भयंकर ध्वनियुक्त कैसे कर लिया किंतु वह एक दर्शक की तरह बैठकर इसकी साक्षी बनी रहीं। ''यह मेरे लिए अत्यंत भावुक था। हर कोई या तो रो रहा था या हँस रहा था किंतु मुझे पता नहीं था, क्यों? तीसरे दिन के आखिर में औरों का साथ देने के लिए मुझे थोड़े आँसू बहाने पड़े। लेकिन इस कार्यक्रम से मैं निराश नहीं थी।''

पहले ही रोमांच और अनुसंधान के प्रकट होने की तीव्र यात्रा का भाव था ही। कुछ विचित्र अनुभव भी इस युवा योग शिक्षक के चारों ओर होते रहने सा महसूस हुआ। भारती को इनमें से किसी भी घटना का कारण ज्ञात नहीं था। लेकिन इस दौरान दिमाग को संतुलित बनाए रखने का निश्चय किए हुए, उन्होंने इन घटनाओं की अतार्किक व्याख्या के आगे घुटने टेकने से इनकार कर दिया। कभी-कभी जग्गी उसे बताते कि दिन के खास समयों में वह उनके साथ रहेंगे। ठीक उन्हीं क्षणों में जब यद्यपि वह किसी पूर्णरूपेण असंबद्ध क्रियाकलाप में रत रहती, फिर भी भारती को अपने गुरु की उपस्थिति की महक अचानक मिल जाती। हालाँकि, उसने इसे ज्यादा महत्त्व देने से इनकार कर दिया।

उन्होंने उससे एक बार एक गिलास पानी माँगा। जब वह ले आयी, उन्होंने उसे स्वयं पी लेने को कहा। भारती कहती है, ''मैंने पानी पी लिया, लेकिन इसके पीने का मुझे आभास भी न हुआ। मैं निगल रही थी लेकिन मेरी प्यास बुझ ही नहीं रही थी। यह बड़ा विचित्र अनुभव था।'' तभी उन्होंने कहा, ''यह मुझमें जा रहा है। मैं इसे (पानी) पी रहा हूँ।'' इंदिरा को एक ऐसा ही अनुभव याद है।

एक अन्य अवसर पर जब भारती अपने जीवन में हो रही विचित्र घटनाओं की श्रृंखला के विदित होने से सशंकित थी, तब जग्गी ने शालिग्राम की माला अपने गले में से निकालकर, उसकी हथेली पर रख दी। अचानक वे मोती उनकी हथेली में सर्प जैसी चाल में खिसकने लगे। उसे अपना डर के मारे चीख पड़ना अभी भी याद है। बाद में उसने उनसे इसका अभिप्राय पूछा। उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया; 'गर्दन पर सर्प कौन लपेटता है?' उत्तर स्पष्ट था! शिव। लेकिन भला शिव पहले योगी, पहले गुरु का मैसूर से आए हुए युवा योग शिक्षक से क्या सरोकार?

इस समय तक भारती को एक आभास हो गया जो आनेवाले वर्षों में पुष्ट होना था; उसके गुरु की रहस्यमय व साहसी योजना जिसमें उसे और कई अन्य को एक भूमिका अदा करनी थी। उसे इस बात का सुराग नहीं था कि वह योजना क्या थी। (वर्षों बाद, वह समझती है कि वह योजना अभी भी विस्तारित हो रही है।) लेकिन उसने महसूस किया कि वह किसी कुशल षड़यंत्रकारी से कम नहीं है। वह कहती है, ''उनके तार्किक जोड़-तोड़ करने के तथ्य से उस समय मुझे खुशी हुई और अब भी होती है। तब मुझे मालूम था कि यह मौका किसी ऐसे के द्वारा दिशा-निर्देशित होने का है जिसे वास्तव में इस बात की जानकारी है कि जीवन का व्यवसाय कैसे संचालित करते हैं।''

मई 1991 में जग्गी ने पहली बार 'सम्यप' नामक मूक कार्यक्रम संचालित किया। वह स्मरण करते हैं, ''पहले यह कार्यक्रम मैंने व्यक्ति-विशेष के लिए संचालित किया था। लेकिन यह पहला मौका था जब मैं इसे समूह के लिए कर

रहा था। इसमें लगभग बत्तीस लोग सम्मिलित थे और यह ऐसा था मानो रस्सी पर संतुलन बनाकर चलनेवाले बत्तीस नटों के नियंत्रण में होना।'' क्या समूह की स्थिति में यह काफी खतरनाक हो सकता था? वह झिझकते हुए कहते हैं, ''भाग लेनेवालों के लिए नहीं। हर किसी का अपनी प्राथमिकताओं पर केंद्रित रहना महत्त्वपूर्ण है, बस। यदि कोई गिरता है तो उसका सुरक्षा जाल मैं हूँ।'' आज इस कार्यक्रम में हजारों की संख्या में भाग लेनेवाले खिंचे चले आते हैं, और हम गुरु के प्रति होनेवाली जिम्मेदारी की कल्पना कर सकते हैं। किंतु सुरक्षा जाल कमजोर पड़ता महसूस नहीं होता।

जग्गी अब महसूस करते हैं कि उन्हें अभी तक सिखाई गई स्वास्थ्य-केंद्रित 'शक्ति चालन क्रिया', में आध्यात्मिक पहलू शामिल करके विस्तारित करना था। ऐसा करने के बाद, उन्होंने उसी समूह के लिए दिसंबर में पुन: 'सम्यम' का संचालन किया। उस समय कार्यक्रम की कामचलाऊ प्रकृति उन्हें याद है। कार्यक्रम में प्रयुक्त संगीत उनकी व्यक्तिगत पसंद का था और प्रसारण का तरीका अद्‌वितीय था; वह इसे वॉकमेन पर बजाते थे, जो स्पीकार के पास रख दिया जाता था। वह मुसकराते हुए कहते थे, ''अब हमारा साउंड सिस्टम जरूरत के मुताबिक है— इन वर्षों में हम काफी आगे आ चुके हैं।''

एक ऊँचे स्तर के कार्यक्रम सम्यम में सात दिनों का मौन और गहन ध्यान आवश्यक होता है। इसके परिणाम अस्थिर थे। ऊर्जा स्तर के बढ़ने के कारण, साधकों को बहुत ही विचित्र चीजें घटित होने का अनुभव होता था। कुछ तो ऐसी घटनाओं की स्मृति से अभिभूत हो जाते थे जो वस्तुत: उनके जीवन में घटित हुई ही नहीं। शेष अन्य में कोई लकड़बग्घे जैसी आवाज निकालता, कोई बिल्लियों की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करता, कोई साँपों की तरह फुफकारता या हाल में चारों ओर खिसककर चलता, कुछ अपनी सीटों से उछल जाते, कुछ सिर के बल खड़े हो जाया करते। एक सज्जन तो जग्गी की गोद में ही जा गिरे! श्रीनिवास नाम के एक प्रारंभिक स्तर के साधक का कहना है, ''प्रत्येक ध्यान सत्र के अंत में जहाँ मैं प्रारंभ में होता वहाँ से कई फुट दूर रहा करता।''

जब वे कार्यक्रम से बाहर आते तो उन्हें लगता मानो कपड़ों-सी धुलाई करने के बाद, उन्हें निचोड़ दिया गया है। अपने पारंपरिक जीवन-कर्म से छुटकारा पाकर उन्हें ऐसा महसूस होता कि जो कुछ भी बचा होता था वह उनमें निहित शांति थी, और बहुत-सी ऐसी तुच्छ बातों को वे बड़े हलके से लेते जिन पर उन्होंने बीते समय में बहुत ज्यादा समय और मन की ऊर्जा झोंक दी थी। बहुतेरे कहते कि ऐसा लगता था मानो कार्यक्रम के पूर्व में वे जिस तरह के व्यक्ति थे, कार्यक्रम के बाद वे केंचुली छोड़नेवाले सर्प की तरह रूपांतरित हो जाते थे। साँपों के शौकीन गुरु द्‌वारा ऐसी रूपांतरण की दीक्षा दिया जाना इतना आश्चर्यजनक नहीं था। धीरे-धीरे इस युवा योग शिक्षक पर लोगों का ध्यान जाने लगा।

साधकों को गहन ध्यान की प्रक्रिया में ले जानेवाले ध्यान के प्रति गहन एवं जीवन-परिवर्तनकारी प्रत्युत्तर प्राप्त होना निरंतर जारी है। ज्यों ही ऊर्जा का स्तर बढ़ता है, सद्‌गुरु कहते हैं कि अचेतन के अनुभव भी बारंबार प्रकट होते हैं। प्रारंभिक कार्यक्रमों में पिछले जीवनकालों की आनेवाली स्मृतियाँ प्राय: सजीव और उत्तेजक होती थीं। किंतु बाद के कार्यक्रमों से उन्होंने इस घटक को अलग कर दिया क्योंकि ऐसी स्मृतियों से लोग मुख्य उद्‌देश्य से भटक जाते हैं। वह कहते हैं कि प्रमुख उद्‌देश्य ऊर्जा स्तर पर अपने कर्मों से छुटकारा पाना है। इसे सचेत स्मृति हेतु क्रियाशील करना अनावश्यक है।

मई 1992 में संपन्न अपने सम्यम कार्यक्रम के दौरान भारती ने ध्यान के समय स्वयं को अपने शरीर से बाहर होते हुए पाया और किसी अन्य स्थान व समय के आयाम में यात्रा करने का स्पष्ट अनुभव किया। उन्होंने स्वयं को जमीन पर लेटी एक आकृति के बगल में ग्रामीण भू-भाग में पाया। उसके आसपास काफी शोर-शराबा था और स्वयं को उसने दु:ख से पीड़ित महसूस किया। वह जानती थी कि इस परिदृश्य में वह स्वयं ही है और महसूस किया कि उनके सामने पड़ा व्यक्ति सर्पदंश से मर चुका है। एक ही झटके में उसे लगा कि यह मृत आदमी कोई और नहीं, बल्कि उनके अपने गुरु जग्गी उनके पहले के जीवनकाल में हैं। वह यह भी जान गई कि इस जीवनकाल में वह उनकी शिष्या होने के लिए जन्मी थी।

उसी समय भारती को अपने स्वयं के होने का भी भान था। व्यक्ति अवस्था में लगातार उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वह ध्यान कार्यक्रम में अचेत पड़ी हुई थी। एक ही समय वह भूतकाल और वर्तमान काल के अनुभव की साक्षी थी। उसे कार्यक्रम में भाग लेनेवालों से घिरे होने, जग्गी द्वारा उसके मस्तक पर थपकी देते हुए, उसके चक्रों को नियंत्रित करने और उसे होश में लाए जाने का आभास था। वहाँ एकत्रित जनसमूह में बढ़ती चिंता से मजा-सा आ रहा था। लगभग चालीस मिनट के बाद उसने आँख खोलकर अपने गुरु की ओर देखा। ''मैं जानती हूँ कि यह अनुभव मतिभ्रम-सा नहीं था। इस स्थिति से बाहर आने पर मुझे ज्ञात था कि इस व्यक्ति से मेरा संबंध कहीं और से था, किसी पहले के स्थान और समय से।'' अब उसे उनके साथ गहरे संबंध के भाव होने का कारण समझ आ गया था। किंतु उसका निहारना बिलकुल भावहीन था। यह एक विचित्र-सी भावहीन सुबोधता थी। बाद में उसे महसूस हुआ कि इस पूर्वजन्म की स्मृति के बाद उसका सर्पों से काफी समय से बना रहनेवाला डर समाप्त हो चुका था।

आगे चलकर एक 'सम्यम' कार्यक्रम में उसे तेजी से चलते हुए दो नग्न साधुओं की एक क्षणिक झलक मिली। इस दृश्य को देखते हुए उसे अपने स्वयं के अंतर्ज्ञान से यह ज्ञात हुआ कि इन दो साधुओं में एक वह स्वयं है, जो साथवाले साधु से उम्र में छोटा है। और साथवाला साधु कोई और नहीं, स्वयं जग्गी हैं। गुरु तेज कदमों से चले जा रहे थे और भावुकता के आवेश में थे। भारती को शीघ्र ही आभास हुआ कि साधुओं के लिए वह बड़ा कष्टमय समय हुआ करता था। क्षणभर में ही सद्गुरु श्रीब्रह्मा की निकटतम शिष्या और साथी विभूती के रूप में पिछला जन्म उसे याद आ गया।

उसके इन अनुभवों से बाहर आने के बाद, ऐसा लगता था कि जग्गी को इन सारी बातों की जानकारी थी। उन्होंने उससे पूछा कि इन अनुभवों से उसे क्या समझ आता था, उसने कहा, ''मैं आपको पहले से जानती रही हूँ किंतु इस जन्म में इसका कोई मतलब नहीं है।'' आज भी वह यही बात कहती है। ''इस अनुभव से मेरी आसक्ति उन पर और ज्यादा नहीं बढ़ी। मैं जानती थी कि जो भी उनका चेला होगा, वे उसे इस तरह के अनुभव कराएँगे। जब कभी लोग उनसे पूछते हैं कि वे उन्हें पूर्व जन्मों में कभी जानते थे, तो मुझे उनकी उत्सुकता पर आश्चर्य होता है। मेरा प्रश्न है: इससे क्या फर्क पड़ता है? वह अब यहाँ हैं। यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उन्हें पूर्व में जान चुके होने से वास्तव में कोई फर्क नहीं पड़ता।''

लेकिन उक्त अनुभव से एक प्रश्न उत्सुकतावश पैदा होता है, ''अब मैं जान गई थी कि मैं कम से कम दो जन्मों में उनसे जुड़ी रही। मेरा प्रश्न था : 'जन्म-जन्मांतर तक जीवन दो लोगों को साथ-साथ क्यों अस्तित्व में लाता है? किस उद्देश्य के लिए? जीवन को लेकर यह संपूर्ण नाटक है क्या?' प्रश्न अब भी बरकरार है।'' यह प्रश्न उसने एक बार सद्गुरु से पूछा। उनका उत्तर उनके तटस्थ अंदाज में था, ''इस नाटक को इसके अंत या निष्कर्ष तक देखते चलो।''

इस कार्यक्रम से उन्हें स्वयं की स्वतंत्रता और सुबोधता के बढ़ते भाव का ज्ञान हुआ। ''सम्यम के बाद मैंने महसूस किया कि मैं पूरी तौर पर अलग जीवन जी रही थी। मैं पहले की तरह सभी कार्य किया करती थी, किंतु मैं उन्हें करने में अब आनंदित महसूस किया करती थी। मेरी अब भी बहुत पक्की रुचि और अरुचि थी किंतु वे अब मेरे जीवन को प्रभावित नहीं करती थीं। अब निर्वाण या समाधि प्राप्त करने की मेरी कोई ज्वलंत इच्छा नहीं है। लेकिन इस व्यक्ति (सद्गुरु) के लिए मेरे मन में सम्मान मात्र इसलिए है कि वह सचमुच किसी का जीवन रूपांतरित कर सकते हैं। वह मेरे साथ घटित हुआ है। और अब भी घट रहा है। अब भी रोमांच बरकरार है।''

सम्यम ध्यान के बाद जग्गी ने भारती से कुछ कहा जिससे वह विस्मित रह गई। उसे उनकी बात याद है, ''उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे घुटने के नीचे एक जन्मजात निशान है। उन्होंने मुझे इसके आकार और रूप के विषय में भी बतलाया। मैंने कहा कि वह सही कह रहे थे। उन्होंने कहा कि ऐसा ही चिह्न उनके कंधे पर भी था।'' यह सर्पदंश का निशान था। उस जीवनकाल की विरासत जिसमें दोनों को ये दाग मिले थे। भारती कहती है, ''एक कहानी अचानक सामने आ गई।'' वह कहती है कि जब से उसने ध्यानलिंग का संस्कार प्राप्त किया, यह निशान फीका पड़ने लगा।

1992 में पहली बार सम्यम करनेवाली विजी का यह विश्वास पुन: पुष्ट हो गया कि वह ध्यान नहीं कर सकती।

उसने कार्यक्रम की समाप्ति पर शेष साधकों को बताया, ''मैं जग्गी को छोड़कर ध्यान नहीं कर सकती। यदि मैं अपनी आँखें बंद करती हूँ तो मुझे जग्गी नजर आते हैं। यदि मैं अपनी आँखें खोलती हूँ तो मुझे जग्गी नजर आते हैं।' उसके इस वक्तव्य के दौरान उसकी आँखों से झरझर आँसू झर रहे थे।

प्रथम सम्यम कार्यक्रम के शीघ्र पश्चात् ही इक्कीस दिनों का शिक्षक प्रशिक्षण शिविर प्रारंभ हुआ। इसमें आठ लोगों ने भाग लिया। इस समय तक इशा फाउंडेशन ट्रस्ट स्थापित हो चुका था। कोयंबतूर के कटिबद्ध साधकों के बढ़ते समूह को यह लगातार स्पष्ट होता जा रहा था कि उन्हें एक ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जहाँ वे अपने गुरु का सान्निध्य प्राप्त कर अपने समान लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में प्रयासरत रह सकें। उनके जीवन तो पहले ही आमूलचूल रूपांतरित हो चुके थे। अब उनके व्यावसायिक या पारिवारिक जीवन की भी उतनी अहमियत नहीं थी, और गुरु के बिना उनके जीवन की प्रत्याशा खोखली जान पड़ती थी। उनकी अनिवार्य उपस्थिति और उन्हें अपने बीच ही बनाए रखना सुनिश्चित करने के लिए आश्रम की स्थापना आवश्यक लगी।

इसके अलावा उनके जीवन से जुड़ा कोई और व्यक्ति बिलकुल समझ नहीं पा रहा था कि आखिर हो क्या रहा था। कोयंबतूर में बहुतेरे ऐसे थे जो इस नए युवा योग गुरु और उनकी बढ़ती शिष्य संख्या के प्रति संदेहास्पद एवं वैमनस्य भरा दृष्टिकोण रखते थे। आशंका के अनुरूप उनके विरुद्ध अफवाहें फैलाने का कार्य शुरू हो गया : यह युवा व्यक्ति कौन है जिसने घरों-परिवारों को तोड़ रख दिया है? उसके द्वारा प्रतिपादित योग में क्या कुछ गलत सा-नहीं है?

और फिर भी नए इशा साधकों को वास्तव में इन अफवाहों से कोई फर्क नहीं पड़ा। जो उन्हें (साधकों को)जानते थे उन्हें तो यह बड़ा आवेगपूर्ण और आत्मघाती-सा कदम लगा, लेकिन वे (साधक) इस युवा योगी पर अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार थे। एक साधन और संसाधन विहीन आदमी, लेकिन ऐसा आदमी जिसे सर्वसम्मति नेतृत्वकर्ता मान लिया गया था। यह एक जोखिम भी था लेकिन पहले ही उन्हें महसूस हो चुका था कि इस संदर्भ में उनकी अपनी पसंदगी नहीं थी।

राजा (शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रभारी) के लिए 1991 शायद शताब्दी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष उनका विवाह हुआ, उनकी बेटी का जन्म हुआ, उन्होंने पहले सम्यम और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में हिस्सा लिया और स्वयं को पूर्णकालिक तौर पर इशा में समर्पित करने के लिए अपनी नौकरी छोड़ दी। ''एक दिन तिरुपुर में जग्गी ने मुझसे मेरी योजनाओं के विषय में पूछा। मैंने उनसे कहा कि मुझे नहीं मालूम। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कोई व्यवसाय करना चाहता था। मैंने वही बात दुहरा दी कि मुझे नहीं मालूम। उन्होंने कहा, 'योग के विषय में तुम्हारी क्या राय है? क्या तुम इसे लोगों के बीच ले जाना चाहोगे?' मैंने कहा, वह कैसे? उन्होंने कहा, 'अब तुम प्रशिक्षित हो चुके हो, इसलिए तुम जगह-जगह जाकर इसे सिखा सकते हो।' मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दूँ। उन्होंने कहा कि यह शायद अच्छा ही होगा। एक महीने बाद मैं उनसे मिलने मैसूर गया और उन्हें बताया कि मैं नौकरी छोड़ चुका हूँ। जिस द्रुत गति से मैंने यह कदम उठाया था उससे वह अचंभित रह गए।'' राजा को अब भी याद है कि जब उन्होंने यह बात बतलाई थी तो किस तरह विजी की आँखों में आँसू आ गए थे। अपनी उदारता की स्वाभाविक भंगिमा में उसने कहा, ''अब मुझे दो परिवारों का खयाल रखना पड़ेगा।'' राजा को याद है कि विजी सदा उनकी पत्नी, बच्चों और उसे अपने आंतरिक परिवार का हिस्सा ही महसूस करती थी।

अपने इस निर्णय का स्मरण करते हुए, वह इस बात से सहमत होता है कि यह एक तरह का जुनून था। ''इसमें सोच-विचार था ही नहीं। हमने कभी भी भविष्य की चिंता नहीं की। हम जग्गी को यह कहते सुना करते थे कि वह बयालीस साल से ज्यादा जीवित नहीं रहेंगे। लेकिन इन बातों से कोई फर्क नहीं पड़ा। हम उन बातों से आश्वस्त थे जो वह कहा करते थे। और हम उनसे प्यार करते थे। इसके बाद तो डर का प्रश्न ही नहीं उठता।''

जग्गी के प्रभाव की उसके द्वारा प्रशंसा के अलावा, राजा को अपने गुरु के सान्निध्य में गहन अनुभव प्राप्त हुए थे जिससे वह अभिभूत रहा। एक अवसर पर जग्गी ने उसे तिरुपुर जाकर कक्षा संचालित करने के लिए कहा। इस कक्षा में

नब्बे लोगों ने भाग लिया था। राजा ने अब तक मात्र जग्गी के सहायक के तौर पर कार्य किया था और स्वतंत्र रूप से उसे कक्षा संचालित करने का अनुभव नहीं था, इसलिए संकोचवश उसने इसके लिए हामी नहीं भरी। जग्गी ने उसे स्मरण कराया कि वह बतौर शिक्षक प्रशिक्षित हो चुका है, लेकिन राजा अपने निर्णय पर अडिग था। अंततः जग्गी ने उसे सुझाव दिया कि वह मात्र परिचय वार्त्ता संचालित करे और इसके शीघ्र बाद स्वयं आकर कार्यक्रम संचालित करने का वचन दिया। राजा ने तिरुपति जानेवाली बस पकड़ ली, इस उम्मीद के साथ कि जग्गी अपनी कार से आएँगे। ''उस शाम मैंने परिचय वार्त्ता संपन्न की। अगले दिन सुबह जग्गी के आने के कोई आसार दिखाई नहीं दिए। मैंने कोयंबतूर कार्यालय में फोन किया। मुझे बताया गया कि वह मैसूर चले गए हैं। मैंने वहाँ भी उनसे संपर्क साधने की कोशिश की लेकिन उनका कहीं पता ना था। वह तो गायब ही हो गए थे।'' नर्वस और मन में खीझ लिए, राजा ने सारा कार्यक्रम स्वयं संचालित किया। कुछ दिनों के बाद, जग्गी कक्षा के शुरू होने के बिलकुल पहले मुसकराते हुए उपस्थित हुए।

पूछताछ करने पर राजा को मालूम हुआ कि जग्गी इस दौरान कोयंबतूर में ही थे। लेकिन उन्होंने जान-बूझकर राजा के हड़बड़ाए हुए फोन का जवाब नहीं दिया था। जब कुछ स्वयंसेवियों ने उनसे पूछा कि वह राजा को इस तरह परेशान क्यों कर रहे थे तो उनका जवाब था कि राजा से स्वयं कक्षा संचालित कराने का यही एक तरीका है। उन्होंने कहा, ''राजा सोचता है कि कक्षा वह संचालित कर रहा है। वह मूर्ख यह नहीं जानता कि मैं हर दिन उसके साथ हूँ।'' कई दिनों के बाद जब जग्गी ने कुछ ऐसे क्षण उसे याद दिलाए जहाँ उस कार्यक्रम संचालन में उसने गलतियाँ की थीं तो वह हैरान रह गया।

उसे एक और अवसर याद है जब वह सम्यम कार्यक्रम के दौरान जग्गी के साथ दोपहर का भोजन कर रहा था। उसके पूर्व रात्रि में राजा ने इसमें भागलेनेवाली युवती को देखा था जो चेतना की परिवर्तित दशा में लग रही थी। जग्गी ने भी इस बात को ताड़ लिया था और उस (युवती) पर करीब से नजर रखने के लिए कहा था। भोजन के मध्य में ही, जग्गी अचानक उठे और झट से हाल में पहुँच गए। वह युवती मंच के पास अचेत पड़ी हुई थी। जग्गी का दायाँ हाथ अचानक अशक्त-सा हो गया, उन्होंने थोड़ा-सा तेल माँगा, और उस युवती के चक्रों को बहुत देर तक नियंत्रित किया। अंततः वह होश में आ गयी। बाद में जग्गी ने राजा को हँसते हुए बताया कि वह युवती न केवल अपना शरीर छोड़कर बाहर चली गई थी, बल्कि भोजन के मध्य में वह प्राण रूप में उनके सम्मुख चली आई थी। इसी कारण वह झपटकर हाल में चले गए थे। वह जान गए थे कि यह तो मरने-जीने की स्थिति थी। राजा कहता है, ''ऐसी बातें उनके इर्द-गिर्द प्रायः होती रहती थीं।''

ऐसे ही एक बार जग्गी एक समूह के साथ कर्नाटक के कुमार पर्वत पर ट्रेकिंग के लिए गए। ट्रेकिंग शुरू होने के ठीक पहले, पुस्तक (जिसे वह तब पढ़ रहे थे।) से नजर उठाकर उन्होंने उस समूह को बताया कि भगवान कार्तिकेय या मुरूगा (छह भुजाधारी द्रविण के वीर-योद्धा देवता जो कि भगवान शिव के प्रथम पुत्र थे) ने इसी पहाड़ी के ऊपर अपना शरीर छोड़ा था। चढ़ाई के लगभग एक चौथाई भाग पर ही, जग्गी का शरीर काँपने लगा। वह ऊबड़-खाबड़ जमीन पर गिरकर बेबस-से छटपटाने लगे। स्पष्ट नजर आ रहा था कि वह अपने शरीर पर पकड़ बनाए रखने का प्रयास कर रहे थे। साधकों ने पहले भी उन्हें ऐसी समाधि की दशा में देखा था। वे उनके पैरों को रगड़ने लगे जोकि ऐसे समय ठंडे और संवेदनहीन पड़ जाते थे। उन्होंने (जग्गी) एक पत्थर का टुकड़ा माँगकर कई बार अपने माथे के अजना चक्र पर रगड़ा। इस स्थिति से उबरने के बाद वह बिलकुल परिवर्तित व्यक्ति लग रहे थे। उसके बाद वह मौन रहकर आगे की यात्रा करते रहे। उस रात जब इस दल ने पर्वत के आधे रास्ते पर ही अपना शिविर डाला, जग्गी ने उनसे कुछ विशेष ध्यान करवाए। राजा कहता है, ''बड़ी विचित्र बातें हो रही थीं। कुछ सुबक रहे थे, कुछ काँप रहे थे, ध्यान के बीच में श्रीनिवास तो खड़ा ही रहा, जिससे खेमा (टेंट) नीचे गिर गया।'' अगले दिन जग्गी ने स्वयं के बिना सभी को ऊपर आगे बढ़ने के लिए कहा। जब वह चोटी पर एक गहनतम ध्यान के पश्चात् लौटे तो वे अपने साथ एक विचित्र आकृति का पत्थर लेकर लौटे थे जिसे 'सन्मुख लिंगम' बताया गया। जग्गी कुछ देर तक उस पत्थर को पकड़े रहे, तत्पश्चात् इसे

समूह के अन्य सदस्यों को दे दिया। राजा ने जब इसे छुआ तो यह काफी गरम महसूस हुआ, जबकि इसके संपर्क में आते ही बाकी कुछ लोगों में से कोई लुढ़कने और कोई काँपने लगा। बाद में उस रात जग्गी ने बताया कि किसी महान् योगी—संभवत: स्वयं कार्तिकेय—ने इस पर्वत पर अपना शरीर छोड़ा था। यही वजह है कि उस स्थान पर इतनी शक्तिशाली ऊर्जा निहित थी। इस घटना से राजा को यह बात पूरी तरह समझ आ गई थी कि उनके गुरु के आसपास जीवन और कुछ नहीं बल्कि अप्रत्याशित ही हो सकता था।

शुरू-शुरू में, उनके शिष्यों की उत्सुकता के बावजूद, जग्गी किसी भी तरह के संस्थाकरण के विचार के खिलाफ थे। ''मैं किसी एक स्थान पर बँधकर नहीं रहना चाहता। देश में पहले ही कई आश्रम हैं। हम एक और क्यों शुरू करना चाहते हैं?'' लेकिन वह धीरे-धीरे तैयार होने लगे। अपने निर्णय पर पुनर्विचार करते हुए उन्होंने कहा कि ''ध्यानलिंग के लिए मुझे समर्थन और उपयुक्त स्थल की आवश्यकता है। इसके लिए एक न्यास बनाना आवश्यक होगा। मैंने भी महसूस किया कि मैं साधना के लिए उत्सुक लोगों की बढ़ती संख्या को सहारा दूँ। इसलिए आश्रम ही ठीक रहेगा।''

बढ़ती हुई जिम्मेदारियों से क्या अपनी स्वतंत्रता को दबाकर रखना पड़ा? ''वस्तुत: नहीं, क्योंकि इसे मैंने काम नहीं बल्कि खेल समझा है। हाँ, इससे मध्यस्थता के स्तर बढ़े हैं। इसके कारण मैं जब-तब खीझ भी उठता हूँ।'' कुछ देर रुकने के बाद वह कहते हैं, ''कभी-कभी, ऐसा भी लगता है कि आश्रम और योग केंद्र का प्रबंधन संभालने से अच्छा तो यह है कि मैं पर्वतों पर घूमता रहूँ, लेकिन वस्तुत: ऐसी कोई बात नहीं है। मैं अब भी संन्यासी हूँ। मैं अब भी चिरंतन मौन में हूँ।'' और क्या कभी आंतरिक मौन में रुकावटें आई हैं? वह हँसते हुए कहते हैं, ''वे रुकावटें भी पूर्ण जागरूकता में आती हैं। और इस तरह 1993 में, इशा योग केंद्र का बीज बोया गया। इस केंद्र के स्थल की जानकारी पाकर सभी लोग अचंभित रह गए। इस विषय में साधकों की अपनी अलग राय थी। उन्होंने कोयंबतूर के आसपास अनेक संभावित स्थलों का सुझाव प्रस्तुत किया। भारती को याद है कि किस तरह स्थानीय साधकों द्वारा जग्गी को केरल और कर्नाटक के कई मनोरम दृश्यवाले स्थलों में ले जाया गया। एक दिन त्रिची में तीन साधकों ने बड़े उत्साह से जग्गी को नवामाले नामक एक स्थल की जानकारी दी जो आश्रम निर्माण हेतु एक आदर्श स्थान लगता था। किंतु उनके उत्साह के बावजूद, उन्हें याद है कि जग्गी संतुष्ट नहीं लगे।

सद्गुरु इस स्थल की खोज के विषय में स्मरण करते हुए कहते हैं, ''बचपन से ही मैं जो कुछ भी देखता था, उसकी पृष्ठभूमि में मुझे पर्वत दिखाई पड़ते थे। 16 वर्ष की आयु तक, मैं सोचा करता था कि हर किसी के दृश्य बोध में पर्वत ही हैं। जब मैंने अपने मित्रों से इसकी चर्चा की, तो उन्होंने चौंकते हुए कहा, 'तुम सनकी हो क्या? कहाँ हैं पर्वत।' लेकिन वे मेरी नजर के सामने हमेशा होते थे। इसलिए सोलह साल के बाद, मैं जान गया कि मुझे इन स्थानों की तलाश करनी होगी, लेकिन फिर मैंने इसके विषय में सोचना छोड़ दिया क्योंकि मेरी दृष्टि में तो ये हमेशा रहते थे। यदि कोई भी चीज हमेशा बरकरार रहती है तो आप इसके आदी हो जाते हैं।... जब ध्यानलिंग पर काम शुरू करने का समय आया तो मैंने इन पर्वतों की खोज करनी शुरू कर दी। मैं पागलों की तरह जगह-जगह भटका। अपनी मोटरसाइकिल लेकर गोवा से कन्याकुमारी यहाँ-वहाँ आ-जाकर इन पर्वतों को खोज में यात्राएँ की। मैंने कहा था, 'पर्वत' और हर जगह लोग सही पर्वतों की खोज कर रहे थे। लेकिन वे हमें नजर नहीं आए। लोग लगभग कुंठित होने के कगार पर पहुँच चुके थे। तभी एक दिन, जब हम किसी के द्वारा सुझाए स्थल की ओर बढ़ रहे थे, और रास्ते पर ही हम एक मोड़ पर पहुँचे। वहाँ से मैं सातवीं पहाड़ी को देख रहा था। मैंने रुकने को कहा। और मैं फफककर रोने लगा।''

यह वेलियांगिरी पर्वत की तराइयों पर, शहर की सीमा से बाहर पूंडी नामक क्षेत्र में स्थित तेरह एकड़ का भूखंड था। इसके नजदीक ही विख्यात तिरुमुरुगन मंदिर था जिसकी चर्चा प्राचीन तमिल साहित्य में है और शिरूवानी जलप्रपात भी यहाँ से अधिक दूर नहीं है।

जग्गी का संक्षिप्त निर्देश मिला; खरीद लो इसे।

इसमें कई आशंकाएँ थीं। यह स्थान दुर्गम्य और जंगली-सा लगता था, और हाथियों, भालुओं के बार-बार पहुँचने के

लिए विख्यात था। इसके अलावा सूर्यास्त के बाद लोगों की आवाजाही ही बंद हो जाती थी। लेकिन जग्गी ने इन चिंताओं को हँसकर उड़ा दिया, उन्होंने पूछा, ''तुम सभी साधक हो? क्या इसके बावजूद तुम्हारे मन में डर है?'' तब उन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि उक्त स्थल उनके मकसद के लिए बिलकुल आदर्श था और सबकुछ अंततः सही हो जाएगा। उन्होंने रहस्यमय ढंग से कहा, ''तुम अपनी मानसिकता इशा से जुड़ने की बना लो, और देखो होता क्या है।''

उस स्थान के विषय में हुई चर्चा के ग्यारह दिन बाद ही यह स्थल खरीद लिया गया। जंगलों के बीचोबीच स्थित, दोनों ओर पर्वतों से घिरा हुआ, यह स्थान एक जंगली किंतु अत्यधिक खूबसूरत जायदाद का हिस्सा था। जिन्होंने भी इसे उस समय देखा वे इसके पिछले एक दशक में इतनी तेजी से विकसित होने के प्रति आज भी आश्चर्य करते हैं। शुरू में यहाँ मात्र एक कुआँ, एक छप्पर (शेड) और पेड़ पर लकड़ी का मचान-सा था (संभवतः जानवरों के शिकार हेतु)। आज उस स्थल पर एक ध्यान कक्ष (हाल), बहुधर्मी पूजास्थल, एक देवी का मंदिर, एक मंदिर-तालाब, एक स्कूल, एक स्वास्थ्य लाभ केंद्र, कई कार्यालय और कॉलेज है जिसमें तीन सौ रहवासियों और अतिथियों के आश्रय की क्षमता है। कई एकड़ जमीन और खरीद ली गई है और इसके विस्तार की योजना अभी विचाराधीन है। हैरानी की बात है कि तेजी से बढ़ते मानव आवास के बावजूद इस स्थान की रमणीयता में कमी नहीं आई है। स्थापत्यकला की दृष्टि से यह देश के रुचिकर आश्रमों में एक है, इसकी साधारण, उत्कृष्ट वातावरण के अनुकूल डिजाइन, इसके उद्देश्य में लालित्यपूर्ण नजर आती है।

1994 तक यह आश्रम अपनी प्राथमिक अवस्था में था। साधकों का एकजुट व अत्यधिक कटिबद्ध समूह व नवोदित इशा योग आंदोलन शनैः-शनैः तमिलनाडु राज्य में अपनी उपस्थिति महसूस करा रहा था। मंच तैयार हो चुका था। गुरु जानते थे कि कार्य प्रारंभ करने का समय आ गया था। उन्होंने नब्बे दिवसीय निवास पूर्णता कार्यक्रम की घोषणा कर दी। कोयंबतूर, तिरुपुर और इरोड व्यापार-वाणिज्य के व्यस्त केंद्र हैं और ज्यादातर साधकों का जीवन व्यावसायिक तौर पर व्यस्त था। अन्य लोगों को परिवार और गृहस्थियों की देखभाल करनी थी। इस कार्यक्रम में उनकी ओर से चालीस दिन अग्रिम तैयारी की अपेक्षा थी। आश्रम की सुविधाएँ व व्यवस्थाएँ व्यवहारोपयोगी नहीं थीं। एकमात्र संरचना, जिसे आज ट्रायंगुलर ब्लॉक के नाम से जाना जाता है, तब मौजूद थी—वह भी तब पूरी तरह निर्मित नहीं हुई थी। कार्यक्रम में भाग लेनेवालों को घास-फूस के छप्पर और मिट्टी के फर्श पर कामचलाऊ ध्यान कक्ष में ही खाना, सोना और ध्यान करना पड़ता था।

संडास प्राथमिक स्थिति में थे। मूलभूत भोजन—राजमा, सलाद, चावल और अचार— की ही व्यवस्था थी। बाहरी दुनिया से संपर्क रहता ही नहीं। कार्यक्रम के एक दिन पहले कोयंबतूर में इतनी भारी वर्षा हुई कि आश्रम पहुँचने का रास्ता जाम हो गया था और जलस्तर लगातार बढ़ता ही जा रहा था। लोगों का इतने दीर्घकालिक और कष्टमय कार्यक्रम हेतु पंजीयन कराना पागलपन और अवास्तविक महसूस हो रहा था।

पचास लोगों के नाम पंजीकृत हुए। सभी लोग आए। अड़तालीस, जैसा कि जग्गी ने भविष्यवाणी की थी, कार्यक्रम के समापन तक रहे।

भारती कहती है, ''यह कार्यक्रम वस्तुतः छिपे तौर पर वरदान ही था। हम सभी पहले ही एक तरह के सामूहिक उत्साह की पकड़ में थे। हमारे परिवारवाले, हमारे मित्रगण हमें समझ नहीं पा रहे थे। कुछ लोगों को यकीन हो गया था कि हम किसी काले जादू के शिकार हो गए थे। वे यह भी सोचते थे कि हमारे भोजन में कुछ नशीले पदार्थ (ड्रग्स) मिलाए गए थे। इस तरह अपनी रोजमर्रा की दुनिया से कुछ समय अलग रहकर स्वयं को उसमें समर्पित करके, जो हमारे लिए सारगर्भित था, हम काफी राहत महसूस कर रहे थे। हमने कभी भी परिणाम के विषय में नहीं सोचा। अपने गुरु के सान्निध्य में रहना ही पर्याप्त था।''

वह सीधे अपने ससुरजी के पास पहुँची जो परिवार के प्रमुख थे। उन्हें बताया कि वह कार्यक्रम में भाग लेना चाहती थीं और सोच रखा था कि बच्चों को अपनी अनुपस्थिति के दौरान वह अपनी माँ के पास छोड़ देगी। उसके तीन महीने

घर से दूर रहने की बात सुनकर ससुरजी की त्योरियाँ चढ़ गईं। लेकिन उसने उन्हें विश्वास दिलाया कि योग कार्यक्रम में जाना अध्ययन या कामकाज में जाने से अलग था।

अपनी पत्नी के साथ कार्यक्रम में सम्मिलित हुए राजा ने भी अपनी तीन माह की बेटी को अपने माता-पिता के पास छोड़ दिया था। ''हमने किसलिए पंजीयन कराया था यह हमें मालूम नहीं था। लेकिन हम इतना तो जानते थे कि एकमात्र कार्यक्रम से जग्गी ने हम लोगों में गहन परिवर्तन ला दिया था। वह प्राय: कहा करते थे कि तीन महीने के कार्यक्रम में वह हमें पूर्णरूपेण रूपांतरित कर देंगे। यह एक चुनौती थी।''

किरन (अब स्वामी देवसत्व) को याद है कि आसपास के लोगों की चेतावनी के बावजूद जग्गी किस तरह कार्यक्रम के एक दिन पहले अपनी मारुति 800 तेजी से बढ़ते जलस्तर के बीच चलाकर ले गए थे। कार्यक्रम को यदि एक दिन के लिए स्थगित कर दिया जाता, तो यह पूर्णत; उचित रहा होता, लेकिन जग्गी अपने निश्चय पर अड़े रहे। ''ट्रक ड्राइवर भी अपना भाग्य आजमाने के लिए तैयार नहीं थे। और उनके गुजरने के शीघ्र बाद ही, उनमें से एक फँसकर रह गया। लेकिन वह आगे निकल गए।''

बाद में यात्रा के दौरान उनकी कार भी कीचड़ में धँस गई। स्वयंसेवियों ने पहली बार धक्का देकर बाहर निकाला। राजा को याद है कि दूसरी बार जब उनकी कार धँस गई तो जग्गी बीच जंगल में अपनी कार छोड़कर पैदल आश्रम चले गए। एक साधक के अनुसार पानी कार में भर गया था। यह स्टीयरिंग व्हील तक पहुँच गया था। हमने जग्गी की बेटी को कार से बाहर निकाला और हममें से कुछ लोगों को मिलकर कार को बाहर करना पड़ा। अंतत: पाँच साधकों के एक समूह ने धक्का देकर कार को आश्रम पहुँचाया और शेष दूरी जग्गी ने चलकर तय की।

उतने ही अचरज की बात यह थी कि भाग लेनेवाले सभी 50 लोग 13 जुलाई तक कार्यक्रम में पहुँच चुके थे। कार्यक्रम के दौरान वर्षा भी पूरी अवधि तक टिकी रही और उस रहस्यमय खेल का साथ देती रही जो भाग लेनेवालों के जीवन में प्रकट होगा।

साधकों की दिनचर्या सुबह पाँच बजे से शुरू होती थी और उन्हें प्राणायामों, आसनों और यौगिक क्रिया की कठिन व उच्चस्तरीय प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था। दोपहर में दो घंटे के विराम के पश्चात् वे शाम चार बजे पुन: प्रारंभ हो जाते थे। उनके ध्यान आधी रात को पूर्ण होते थे। प्रतिदिन 14 से 15 घंटों की साधना या अभ्यास हुआ करता था। जग्गी ने स्पष्ट कर दिया था कि ये ऐसे अभ्यास थे, जो एक गुरु की उपस्थिति एवं नियंत्रित वातावरण में ही संपन्न किए जाने थे। उन्हें बताया गया था कि कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य उनके सातों चक्रों को क्रियाशील करना और चेतना के उच्च स्तर पर जीवन का अनुभव कराना था। कुछ अभ्यासों से उन्हें शरीर के विभिन्न भागों में पाँच तत्त्वों की भूमिका का बोध कराया गया। अन्य क्रियाओं से उन्हें शरीर के बाएँ और दाएँ भाग में ऊर्जा के गुण के अर्थों में सूक्ष्म भेद का बोध कराया गया। उन्होंने सुषुम्ना या मध्य मार्ग की उपस्थिति का भी बोध किया।

भारती कहती है, ''वह कहते थे कि वह हमें आग के हवाले करना चाहते थे। और यही उन्होंने किया भी। ध्यान कक्ष में जो भी हुआ वह काफी उत्कृष्ट था। मुझे नहीं लगता कि इसे पुनर्निमित किया जा सकता है। वहाँ हम सभी एक ऐसे व्यक्ति के सान्निध्य में रहने के अलावा और कुछ नहीं चाहते थे, जिसे हम चाहते थे, और जो हमेशा ऊर्जा से परिपूर्ण लगते थे। उन दिनों वह कुछ भिन्न थे। वह अपने मिशन को लेकर चल रहे थे। हम यह देख सकते थे, भले ही हमें मालूम नहीं था कि यह क्या था। वह एक विचित्र ऊर्जा और उत्साह से दहकता हुआ आग का गोला था। उनका सान्निध्य ही उनके जैसा ऊर्जावान होने के लिए काफी था।''

राजा को स्मरण आता है कि यह चुनौतीभरा कंटकाकीर्ण मार्गवाला जीवन था। लेकिन कटिबद्धता के उत्साह ने सबको बाँधे रखा था। जग्गी सभी के केंद्र थे और इससे वहाँ की असुविधाएँ भी सभी को महान् साहसिक अभियान का हिस्सा-सी लगने लगीं।

कार्यक्रम में स्वयंसेवी किरण का कहना है, ''यह एकदम सनक-सा लगता है किंतु मेरे जैसा बाहर रहनेवाला भी

ध्यान कक्ष के अंदर और बाहर के बीच का फर्क बता सकता है। हर बार जब मैं ध्यान कक्ष में प्रवेश करता, तो वहाँ का ऊर्जा का स्तर मुझसे टकराता, मेरी आँखें बंद हो जातीं और मुझे बिलकुल नशा-सा महसूस होता। ज्योंही मैं वहाँ से जाता, मैं पुन: ठीक हो जाता। ध्यान कक्ष के अंदर और बाहर का अंतर अविश्वसनीय था।''

श्रीनिवास एक प्रतिभागी, जिन पर कार्यक्रम की रिकार्डिंग की भी जिम्मेदारी थी, अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहते हैं, ''ज्यादातर समय मैं शराब पिया हुआ महसूस करता था। मुझे विश्वास नहीं होता कि जग्गी जो कर रहे होते, उसे मैंने सुना भी। मैं मात्र उस स्थान की ऊर्जा को आत्मसात् कर रहा था और वह स्थान इस ऊर्जा से सराबोर था। ऐसे भी क्षण आए जब हमने यह महसूस किया कि हम उनकी उपस्थिति में वास्तव में जी रहे थे।'' भारती इस बात की पुष्टि करती है, ''वह ऊर्जा लगभग ठोस ही थी। कभी-कभी मेरी इससे बाहर आने की भी इच्छा होती थी पर किसी को एक क्षण को भी शांति या आराम नहीं मिलता था।''

जग्गी ने एक शाम यह घोषणा की कि कार्यक्रम उनकी तरफ से पूर्व निर्धारित या तैयारी किया हुआ नहीं है और संपूर्ण प्रक्रियाएँ उनके माध्यम से स्वाभाविक रूप से चल रही थीं। उन्होंने बताया, यहाँ कई गुरु उपस्थित हैं, जो यह देखकर अत्यधिक खुश हैं कि इतने सारे लोग आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयासरत हैं। वे तुम सभी पर अपना प्रेम और ज्ञान लुटा रहे हैं।

सभी बातें बड़े लयबद्ध तरीके से चल रही थीं। पाठ्यक्रम पूर्णरूपेण निर्मित और सुनियोजित लगता था। बावजूद जग्गी की इस घोषणा के, कि यह सबकुछ स्वाभाविक था। भाग लेनेवालों के अध्यवसाय स्तर भी ऊँचाइयों पर थे। किंतु फिर भी यह सरल नहीं था। लगातार एक-सा भोजन करते-करते सभी ऊब चुके थे। एक दिन एक प्रतिभागी, सुमन रसम के कप और चुकंदर के टुकड़ों को देखकर अपने आँसुओं को नियंत्रित नहीं कर सकी। जग्गी ने उसके दु:ख का कारण जानने के बाद अगले दिन शाकाहारी बिरयानी परोसे जाने का इंतजाम कराया। बिरियानी पहले कभी इससे ज्यादा स्वादिष्ट नहीं लगी थी। सुमन (अब माँ गंभीरी) के अनुसार यह पार्टी-सा लगा। ''अन्य लोगों ने मुझे और भी रोने के लिए कहा।''

वर्षा भी मददगार नहीं थी। फर्श कीचड़ युक्त था। जगह-जगह काई लगी थी। कीड़े-मकोड़े और साँप आते दिखाई देते थे। बाहर खूँटी पर टँगे धुले कपड़े सूख ही नहीं रहे थे। जंगली और झोंकेदार हवा लगातार हाल से होती हुई चल रही थी जिससे डर था कि घास-फूस का छप्पर कहीं उड़ न जाए। किरण याद करती है कि जग्गी सारी रात वक्ता मंच के पास बैठे हुए अपनी सीट पर पीछे कुछ झपकियाँ लेने के लिए टिक जाते थे। लेकिन हर आधे घंटे में उठकर बाहर आते और उस तार को हथौड़े से ठोककर ठीक करते जिसके सहारे छप्पर टिका हुआ था। ''किसी भी रात वह डेढ़ घंटे से ज्यादा नहीं सोए होंगे।''

सद्गुरु उस दृश्य को चटखारे लेकर याद करते हैं, ''यह हमारे जीवन का सबसे जबरदस्त तूफान था। तीसरे या चौथे दिन घास-फूस की समूची झोंपड़ी धीरे-धीरे एक ओर झुकने लगी। रात का समय था। हवाओं में गति आ गई थी। हवाएँ 120 कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार से चल रही थीं। मैंने पास ही एक छोटा-सा कमरा बनवाया था। लेकिन जब मुझे सनसनाती हुई हवा सुनाई पड़ती थी, तो दो बजे रात को बाहर आकर, मैं देखता कि सबकुछ ठीक-ठाक है या नहीं। मैंने देखा कि झोंपड़ी को कसे हुए तार धीरे-धीरे छूटने लगे थे। कुछ ही मिनटों में सबकुछ उजड़ सकता था। मैंने लगभग पंद्रह लोगों को जगाया और हमने छत को सही किया। शेष लोग आराम से सो रहे थे। उन्हें पता ही नहीं था कि क्या हो रहा था। इसका मतलब था कि दिन के समय हमने उनसे अच्छी मेहनत कराई थी!''

केवल छत के ही गिर जाने का डर नहीं था। ''लोग भी उसी स्थान पर ध्यान कर रहे थे एवं सो रहे थे। लगभग सात दिनों के बाद हमें ज्ञात हुआ कि उनके अधिकतर बिस्तरों को नीचे से दीमक चाट गई थी। जब हम बैठे हुए होते थे तो दीमक अपने काम में व्यस्त रहती थीं। क्या करें।'' सदगुरु हँसते हुए कहते हैं, ''हमने जंगल जाने का निर्णय लिया।''

एक मरम्मत करनेवाली टीम आ गई और जग्गी चार दिनों के लिए अपने समूह का नेतृत्व करते हुए वेलियांगिरी हिल

चले गए। साधकों के लिए यह उद्वेगपूर्ण किंतु चौकन्ना रखनेवाला अनुभव था। गोधूलि बेला के समय एक मनोरत्म जल प्रपात के बगल में उन्होंने अपना शिविर लगाया। वहाँ की चट्टानें गीली और फिसलन भरी थीं जिससे उन्हें सारी रात सावधान रहना था। वहाँ सभी 48 लोगों के बैठने की जगह भी नहीं थी। इसलिए कुछ लोगों ने खड़े रहकर रात गुजारी। एक ने तो एक गुफा देखी और वहीं रात गुजार दी, लेकिन दूसरे दिन मालूम हुआ कि वह स्थान सर्पों की माँद था। वर्षा रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। बहुत-से लोग बुरी तरह भीग गए थे। इन परेशानियों के बाद भी कोई भयभीत नहीं था। बड़ी विचित्र बात है कि जग्गी की उपस्थिति मात्र से ही डर वहाँ ठहरता ही नहीं था।

सद्गुरु कहते हैं, ''विश्वास करना तो कठिन है लेकिन किसी भी तरह का बिगाड़ नहीं हुआ। प्रतिदिन साढ़े पाँच बजे सुबह हर कोई साधना में जुट जाया करता। कक्षा में एक मिनट के लिए भी अवरोध उत्पन्न नहीं होता था। वही चर्या पर्वत के ऊपर भी जारी रही। मेरी बेटी के कपड़े बार-बार गीले हो जाया करते थे इसलिए उसे कपड़े पहनाने की जरूरत ही नहीं रही। हमने उसे ऐसे ही छोड़ दिया था। कोई भी बीमार नहीं पड़ा और जब छप्पर (शेड) तैयार हो गया, हम लौट आए और साधना करने लगे। जिन लोगों ने इस नब्बे दिवसीय कार्यक्रम में भाग लिया था, वे भारत में इशा फाउंडेशन के वास्तविक स्तंभ बन गए। उन्हें जीवन को एक पूर्णत: अलग तरीके से देखने का अवसर मिला और उन नब्बे दिनों में वे पूर्णरूपेण परिवर्तित हो गए।''

लगभग इसी समय विजी भी बंगलोर से लौटकर आ गई। यह उसके लिए बड़ा दुष्कर समय था। अचानक उसके पति सामूहिक सम्मान के पात्र बन गए थे। उनके वैवाहिक जीवन में हुए इस हस्तक्षेप का सामना करना बड़ा चुनौतीपूर्ण था। कुछ लोग उसे अपने पति के प्रति काफी काबिज मनोवृत्ति की समझते थे। भारती उन लोगों में से थी जो विजी की कार्यक्रम में शामिल होने की अनिच्छा का कारण समझ न सके थे। ''यह मुझे बड़ा रहस्यमय महसूस हुआ। वह दूर रहना क्यों चाहेगी? जो कुछ सद्गुरु थे, और जो वह कर रहे थे, क्या उसकी विशालता वह नहीं देख सकती थी?''

किंतु विजी की भावनात्मक उथल-पुथल के दौरान जग्गी का रवैया सदा सकारात्मक व भद्र रहा। उनकी चार वर्ष की बेटी ने अभी स्कूल जाना शुरू नहीं किया था। उसकी देखरेख स्वयंसेवियों द्वारा की जा रही थी और उसका समय आश्रम के आसपास उछलते-कूदते, अंतरालों के दौरान प्रतिभागियों के साथ खेलकर या ध्यानकथा में जग्गी के बारह घंटों के सत्र में उनकी बगल में बैठे हुए बीतता था। एक प्रतिभागी को याद है कि किस तरह वह वक्ता-मंच के पास सो जाया करती थी और आधी रात के बाद जग्गी उसे उठाकर वापस कमरे में ले जाते थे।

जहाँ एक ओर जग्गी एक अच्छे पिता थे, वहीं दूसरी ओर वे अपनी बेटी की देखरेख को लेकर कोई बवाल भी खड़ा नहीं करते थे। एक बार उनकी बेटी को तेज खाँसी हो गई। एक प्रतिभागी इस कारण उसके स्वास्थ्य के प्रति काफी चिंतित लगा। लेकिन जग्गी बिलकुल परेशान नजर नहीं आए। लेकिन दूसरे दिन उस प्रतिभागी ने देखा कि खाँसी पूरी तरह से ठीक हो गई थी। चूँकि पिछली रात को ही खाँसी बहुत तेज थी, इसलिए इसका अचानक गायब हो जाना उसकी समझ में न आ सका; उस समय प्रतिभागी को बड़ा आश्चर्य हुआ लेकिन आनेवाले दिनों में हुईं इससे भी बड़ी रहस्यमय घटनाओं से उसे यह घटना बड़ी छुद्र लगी।

ऐसी सभी घटनाओं में सर्वाधिक हतप्रभ कर देनेवाली घटना थी स्वयं जग्गी में आया रूपांतरण। ज्यों-ज्यों कार्यक्रम आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे कार्यक्रम में भाग लेनेवालों ने महसूस किया कि जग्गी का स्वभाव पहले की तरह एक मित्र और संरक्षक-सा नहीं रह गया था। उनके समक्ष अब यह कोई नया व्यक्ति ही था और उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं था कि वे इस परिवर्तन को पसंद करते थे या नहीं। न तो अब उनके चेहरे पर मुसकराहट होती थी, न ही वह सभी का मित्रवत् हाल-चाल जानने की कोशिश करते थे। उनका हावभाव गंभीर, आत्मस्थ और भयावह-सा लगता था, उनकी बातें बड़ी संक्षिप्त, और उनकी उपस्थिति ही दखलकारी प्रतीत होती। जो लोग कुछ दिनों पहले तक उनके आसपास उन्हें घेरकर खड़े रहते थे, अब उनसे कटे-कटे रहते थे। एकाएक वह एक अपरिचित से हो गए थे। ठीक इसी समय जग्गी ने अपने स्वयं के भीतर के गुरु को प्रकट किया। किरण कहता है, ''अचानक हमने उन्हें वैसा ही देखा जैसे वह थे। हमने महसूस

किया कि यह सार तत्व था जिसमें सारे सामाजिक भेदभाव खत्म हो गए थे—अनगढ़, तीव्र, तरल। उनके साथ रहना ही परेशानी भरा लगता, किंतु उनके बिना रहना भी डरावना सा ही लगता। वह अब कोई व्यक्ति नहीं बल्कि एक उम्रहीन उपस्थिति थे। और उस कक्ष में कुछ ऐसे दृश्य देखे गए जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।''

1994 वह साल था जब नेलसन मंडेला को राष्ट्रपति चुना गया था; रवांडा हत्याकांड इसी साल हुआ था; इसी साल संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी सेना फारस की खाड़ी में भेजी; इसी साल कुख्यात ओ.जे. सिंपसन कांड हुआ। इन अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम को स्मरण कराना इसलिए रोचक है, क्योंकि उस ध्यान कक्ष की काररवाइयाँ किसी समयहीन क्षेत्र में घटित हुई लगती थीं। स्वयं साधकों के लिए समय और तारीख अर्थहीन हो चुके थे। जीवन में उत्सुकतापूर्ण पौराणिक भाव आ गया था। उन्हें हमेशा अहसास रहता था कि उनके योग गुरु से उनका संबंध इतना ज्यादा प्रासंगिक और बाध्यकर था जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन अब उन्हें इस बात का पहला संकेत मिलना शुरू हो गया था, ऐसा क्यों था। इसका कथानक उनकी कल्पना से वृहत्तर और चकित कर देनेवाला था। उनके जीवन के कर्मबंधन समाप्त हो चुके थे, और वे अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन के पात्र नहीं थे। अचानक उन्होंने महसूस किया कि वे अपने गीति नाट्य के नायक के नायक नहीं थे बल्कि एक विशाल नाटक के हिस्से थे जिसमें उन्हें दी गई भूमिकाएँ अदा करने थीं। इसकी पटकथा भी उनकी अपनी नहीं थी। यह निरंतर किसी और हाथ से लिखी जा रही थी।

यह अनुभूति धीरे-धीरे समझ में आई। दस दिनों के पश्चात् जग्गी ने मौन अवधि की घोषणा कर दी और साधकों को निर्देश दिया कि वे अपने अभ्यास जारी रखें। मौन की अनिश्चित अवधि से साधक व्यग्रता महसूस करने लगे। सुमन को घबराहट और दिग्भ्रांति महसूस होने लगी। ''मैं उनके आकर्षक पहलू को सदा से जानती रही हूँ। अब उनके इस दूसरे पहलू को स्वीकारने में बड़ी मुश्किल होती है। वह बहुत कम बोलते थे और सभी के सामने आपकी औकात उजागर करने में उन्हें देर न लगती। यह एक बिलकुल अलग व्यक्तित्व था। मौन की घोषणा करने के बाद वह वापस अपने कमरे में चले गए। हमसे मिलने के लिए वह बहुत कम आते थे। प्रतिदिन सुबह हमारे जागने से पहले तख्ती पर निर्देश लिख दिए जाते थे।

''यह शरीर को तोड़कर रख देनेवाली चर्या थी। हम चार घंटे से ज्यादा की नींद नहीं लेते थे। किंतु यह भावनात्मक और शारीरिक तौर पर टूटने जैसा ही था। कोई समझ ही नहीं पा रहा था कि चल क्या रहा था। मुझे उलझन, खीझ और प्रतिरोध महसूस होता था।

''कार्यक्रम के दौरान नियमित रूप से सर्प देखे जाते थे और उन्हें कुछ प्रशिक्षित स्वयंसेवियों द्वारा उठाकर जंगल में छोड़ दिया जाता था। लेकिन इस समय तक हमारे समूह को दिशाहीनता-सी महसूस होने लगी थी, और जब कोई साँप सरकते हुए पहुँच जाता तो हमारा ध्यान अपनी मानसिक स्थिति से हट जाता। राजा ने साँप को जग्गी के कमरे के पास से गुजरते देखा और दरवाजा खटखटाकर उसे सावधान कर दिया। उस समय उसे मालूम नहीं था कि उनके गुरु किसी संपेरे से बढ़कर हैं।

''जग्गी बाहर आकर साँप को पकड़कर जंगल की ओर छोड़ आए। लौटने पर वह बिजली की तरह गरजनेवाले बादल जैसे नजर आ रहे थे। उन्होंने मौन तोड़नेवालों को हाथ उठाने के लिए कहा। लगभग आधे साधकों ने सावधानी से हाथ उठा दिए। इन सभी को पूर्व की ओर मुड़ने का निर्देश दे दिया गया और उन्हें अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर के अभ्यास से बाहर कर दिया गया। गुरु पहले से ज्यादा कठोर और हृदयहीन लग रहे थे। बेचैनी बढ़ती गई। जिन्हें बाहर किया गया था, उनके लिए यह अवधि और ज्यादा परेशानी की हो गई। लेकिन जग्गी को इस बात से कोई सहानुभूति नहीं थी। ''यदि मैं तुम्हारे बीच से चुनता हूँ, तो तुम्हारी भावना को चोट पहुँचेगी। लेकिन प्रकृति का चुनने का अपना तरीका है। जो किसी काम के लायक नहीं रहते, वे स्वयं अलग हो जाते हैं।''

जो अगले चरण तक अभ्यास में बने रहे उन्हें एक शक्तिशाली अभ्यास कराया गया जो लगभग तीन घंटे जारी रहा और उसका समापन एक छोटी-सी क्रिया से हुआ। एक साधक को याद है कि किस तरह क्रिया के दौरान उसका मन

पूरी तरह खाली हो गया था। एक स्थिति जो पंद्रह मिनट तक अस्तित्वान रहती है। ''क्या यह स्थिति सचमुच इतनी देर तक बनी रही?'' उसे आश्‍चर्य हुआ और यह पहला विचार था जो इस स्थिति के पश्‍चात् उसके मन में प्रविष्‍ट हुआ। उसके पश्‍चात् जो भी विचार उसके मन में आते गए उनके प्रति वह पूरी तरह सचेत था। ''पहली बार मुझे महसूस हुआ कि मैं एक ऐसे कार्यक्रम का हिस्सा हूँ जिसका अवसर हजारों जन्मों में एक बार आता है। अचानक मुझे यह भी याद आया कि मैं एक बहुत ही सक्षम, शक्तिशाली गुरु की उपस्थिति में बैठा हूँ। क्योंकि, जैसा कि कार्यक्रम से जाहिर हो रहा था, जग्गी एक प्रेरणास्पद मार्गदर्शक ही नहीं थे, जिन्हें छोटी-मोटी मानसिक शक्तियाँ प्राप्‍त थीं। यह व्यक्ति एक योगी, निपुण, एक ऐसा व्यक्ति जिसका आंतरिक मौसम सूचनातंत्र के उतार-चढ़ाव से लड़खड़ाता हुआ और असीम लगता था। किरण के अनुसार, ''हमें एक गहन स्तर पर इसकी जानकारी हो गई थी। लेकिन अब यह खुलकर सामने आ गया था। और यह भयावह भी था।''

कई और बातें खुलकर सामने आ रही थीं। वे भी डर का शमन करनेवाली नहीं थीं। चूँकि उस समूह में व्याप्‍त वातावरण अपेक्षाकृत अधिक घनीभूत और सूक्ष्म हो गया, स्वप्न और ज्यादा सजीव व भयंकर होते गए। एक साधक ने पाया कि उसके सपने हर रात वहीं से शुरू होते थे जहाँ वे पिछली रातों में बाधित हो जाते थे। जग्गी ने साधकों को सपने सूक्ष्मता से देखने की सलाह दी। उन्होंने समझाया कि उनके अचेतन मन के नकारात्मक पहलू—उनके कर्म—इस तीव्र साधना से हटते जा रहे थे। और हाल में कोहरे की तरह अब भी छाए हुए थे। यही दु:स्वप्न के कारक थे। लेकिन उन्होंने आश्‍वासन दिया कि ये नियमित और अभ्यास से पूरी तरह समाप्‍त हो जाएँगे।

लेकिन कुछ ऐसा था जो इन दु:स्वप्नों से भी ज्यादा चिंताजनक था। कुछ साधकों को अपने समूह में एक अतिरिक्त सदस्य दिखाई पड़ने लगा। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, मोटा कंबल ओढ़े हुए, हाल में हर रात आकर घूमता था। लेकिन वह उसी तरह विलुप्‍त हो जाया करता था, जैसे वह आया था। लगभग इसी समय, एक स्वयंसेवी ने पाया कि प्राय: ट्रायंगुलर ब्लॉक के एक कमरे में लगा हुआ जग्गी का बिस्तर, अचानक कमरे के बीच में आ गया था। उसे पुन: कोने में कर दिया गया और अगले दिन यह पुन: बीच में आ गया।

जग्गी ने बताया कि उस स्थान में बहुत से शरीरहीन अस्तित्व थे जो उनके सामूहिक अभ्यास की तीव्रता से आकर्षित होकर वहाँ पहुँच गए थे। उन्होंने बताया, ''वे हर जगह मेरा अनुसरण करते हैं। रात को वे मेरे बिस्तर के आसपास रहते हैं। कभी-कभी कमरा ठसाठस भर जाता है और मैं बिस्तर उनके लिए छोड़कर फर्श पर सो जाता हूँ। और कभी-कभी तो मैं अपना बिस्तर बीच में ले जाता हूँ ताकि उन्हें अधिकाधिक स्थान प्राप्‍त हो सके। वे बहुत ही संवेदनशील हैं। यदि कोई कदमों की जोर की आहट करता हुआ आता है, तो वे गायब हो जाते हैं।''

लेकिन ऐसी जगह, जहाँ का वातावरण पूरी तरह आध्यात्मिक है, प्रेत बार-बार क्यों आते हैं? गुरु ने बताया कि ये दिव्य अस्तित्व हैं जिनके कुछ कर्म कटने शेष रह गए थे। अत: वे स्वाभाविक रूप से एक निर्वाण प्राप्‍त व्यक्ति की उपस्थिति में खिंचे चले आते हैं, क्योंकि वह मुक्ति की संभावना का प्रतिनिधित्व करता है। ''वे अपने कर्म काटना चाहते हैं, ताकि उन्हें दुबारा जन्म न लेना पड़े। अत: वे मेरी उपस्थिति की ओर आकर्षित हैं जो कि प्रामाणिक है।''

इस समझाइश से बहुत ज्यादा सांत्वना नहीं मिली। अचानक ये शरीरहीन अस्तित्व हर जगह मँडराने लगे। एक दिन सुबह पाँच बजे, सबसे पहले जागकर सुमन बाथरूम जा रही थी। अचानक उसने एक आकृति को देखा जो उसे निर्माण मजदूर लगा। तत्क्षण, वह आकृति पलटी और उसकी तरफ आने लगी। तभी उसे लगा कि यह न तो कोई स्वयंसेवी है और न ही कोई मजदूर बल्कि जिसकी काफी चर्चा हुई थी, वही कंबलधारी व्यक्ति था। वह वहाँ से भागी और एक अन्य साधक से टकरा गई। अपने चौंक जाने से परेशान होकर, उसने सामान्य बने रहने की कोशिश की। लेकिन ज्यों ही वह पीछे मुड़ी, उसने वही आकृति अपनी ओर आते हुए देखी। अपने उस साधक मित्र का हाथ पकड़ते हुए उसने धीरे से कहा, ''कंबलधारी आदमी!'' लेकिन उस साधक मित्र को कुछ नजर नहीं आया।

बाद में कार्यक्रम के दौरान, एक दाढ़ीवाली औरत वहीं चक्कर लगाने लगी। सुमन की बहन (जोकि एक साधक भी

थी।) ने सबसे पहले उसे देखा और जग्गी से इसकी चर्चा की। उन्होंने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा, ''वह उस काल की औरत है जब औरतों को आध्यात्मिकता का अनुगमन करने का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। लेकिन मोक्ष पाने की उसकी तीव्र इच्छा थी। मोक्ष प्राप्ति उसकी तीव्र इच्छा से ही संभव थी लेकिन कहीं न कहीं उसके मन के किसी कोने में यह विचार था कि इस राह में चलने के लिए उसे पुरुष होना चाहिए था। यही वजह है कि उसकी दाढ़ी उग आई। यदि वह देख सकती कि इस कार्यक्रम में इतनी महिलाएँ हैं तो उसकी सोच ही अलग होती या उसे कुछ अलग ही महसूस होता। लेकिन वह देख नहीं सकती।''

ध्यान सत्र के दौरान बीच-बीच में विचित्र दृश्य नजर आते। उदाहरण के लिए सुमन को जंगल में एक ऊँचे कद का, काला तरकशधारी युवक नजर आया। उस व्यक्ति की उपस्थिति से उसे ऐसा लगा कि प्रकृति से उसका बड़ा घनिष्ठ संबंध रहा होगा, इसीलिए वह जंगल के वातावरण से सरोकार रखता था।

एक अन्य साधक ने स्वयं को एक शिव मंदिर के पुजारी के रूप में देखा, जो एक आध्यात्मिक गुरु की सेवा में भी लगा हुआ था। ऐसे ही एक अन्य साधक ने देखा कि वह पाँच लोगों के समूह में एक है जो एक व्यक्ति के चारों ओर खड़े हुए हैं, जिसकी पहचान उसने अपने गुरु के रूप में की। लेकिन यह गुरु जग्गी से भिन्न नजर आ रहे थे। उनकी ऊँचाई जग्गी से कहीं अधिक थी, उनके हाथ में एक सटका था और उनकी वेशभूषा प्रभावशाली और डरावनी थी। उसने देखा कि एक उग्र भीड़ ने उस समूह पर आक्रमण कर दिया। कुछ चेले घायल हो गए थे और वह समूह तितर-बितर हो चुका था। वह साधक भागकर कहीं छुप गया। दूसरे दृश्य में उसने हड़बड़ाहट में अपने गुरु को खोजते हुए पाया जिसे उसने जंगल में खोज निकाला जो पुन: अपने शिष्यों के एक छोटे से समूह से घिरा हुआ था। वह अपने गुरु को बार-बार कह रहा था, ''आप हमें कैसे छोड़ सकते हैं? आपने हमें छोड़ दिया है।''

उसी शाम जग्गी ने एक आदमी के विषय में बात की जो 360 साल पहले मध्य प्रदेश में रहता था। वह शिव का प्रबल भक्त था। वह घुमंतू सपेरा जाति का था जो कभी-कभी लोगों को अपने अंतर्ज्ञान की गहराई से परिचित कराते थे। उसका एक ब्राह्मण लड़की से प्रेम हो गया, और उसी क्षण से उसके जीवन में काले बादल मँडराने लगे। लड़की के रिश्तेदारों ने उसका पीछा करके उसे घेरकर पकड़ लिया और उसका ही एक साँप उस पर छोड़ दिया। ''आज भी उसे सर्पदंश का निशान उसके शरीर पर है,'' कहते हुए जग्गी ने सभी साधकों को अपने कंधे पर स्पष्ट सर्पदंश का निशान दिखलाया। क्षणभर के लिए वहाँ चुप्पी छा गई। इसके बाद भारती समेत बहुत से साधकों ने बिल्वा नामक उस सपेरे से जुड़े अपने स्वप्न के विषय में बतलाया।

जग्गी ने एक अन्य जन्म के बारे में बतलाना शुरू कर दिया। उन्होंने एक क्रोधी स्वभाव के शक्तिशाली योगी, सद्गुरु श्रीब्रह्मा के विषय में बातें कीं। उन्होंने बतलाया कि किसी तरह उस योगी ने अपने जीवन के असंभव से मिशन के लिए जी-तोड़ प्रयास किया। यद्यपि इस कार्य के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान उनके पास यों ही उपलब्ध था, फिर भी प्रतिकूल सामाजिक स्थिति के कारण यह कार्य धरा का धरा रह गया। सामाजिक तौर-तरीकों के प्रति उनकी स्वयं की अनभिज्ञता के कारण भी वह अपने विरुद्ध उठनेवाले विरोध का शमन न कर सके। तत्पश्चात् उन्होंने प्रकट किया कि किस तरह एकमात्र पुरुष शिष्य सद्गुरु ब्रह्मा के साथ उन्होंने कोयंबतूर से कुड्डापह मंदिर तक साथ-साथ रास्ता तय किया। वह शिष्य, उन्होंने कहा, उस समय उनके साधकों के बीच मौजूद था। वह भारती थी।

चुपचाप यह सब सुन रही भारती इस रहस्योद्घाटन से जरा भी नहीं चौंकी। उसे उसके दूसरे सम्यम के दौरान यह पहले ही ज्ञात हो चुका था जब उसने स्वयं को एक साधु के रूप में अपने गुरु के साथ एक लंबी और दुरूह यात्रा पर देखा था।

जग्गी ने बताया कि अपना शरीर त्यागने से पूर्व सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने अपनी ऊर्जा का एक निश्चित आयाम अपनी शिष्या इडा (अपने सूक्ष्म शरीर का चंद्र या स्त्री पक्ष) पर छोड़ दिया था। परिणामस्वरूप भारती का जन्म दो पिंगलाओं (सूर्य या पुरुष आयाम) के साथ हुआ था। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि उसका जीवन भावनात्मक उतार-चढ़ाव या कष्टों से

मुक्त था, और आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने के लिए उसे न्यूनतम बाधाओं का सामना करना पड़ा। तत्पश्चात् भारती ने अपने भूतकाल की विभिन्न घटनाएँ सुनाईं और कुछ ध्यान क्रियाओं के समय अपने शरीर के विभिन्न अनुभवों का वर्णन किया।

अंतत: जग्गी ने ध्यानलिंग के विषय में बतलाया। इसके पहले कुछ शिष्यों से उन्होंने इस शब्द की चर्चा की थी। उनमें से कुछ ने कुछ विद्वानों से इस विषय पर चर्चा भी की थी लेकिन किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके थे। विद्वानों ने आत्मलिंग के विषय में सुन रखा था लेकिन ध्यानलिंग के विषय में कोई भी जानकारी नहीं रखता था। इंदिरा को याद है, किस तरह वह और कुछ साथी शिष्य त्रिचि के एक मंदिर में वहाँ के पुजारी से मिलने गए थे जिसे भविष्यवाणी का ज्ञान था। जब उन्होंने उससे ध्यानलिंग की चर्चा की तो, उस वृद्ध व्यक्ति ने विचारमग्न होकर कहा कि उसने किसी एक वेद में इसके विषय में पढ़ा था। वह पुजारी की बात याद करता है, ''इसकी स्थापना कोई गृहस्थ योगी ही कर सकता है।''

लेकिन 'पूर्णता कार्यक्रम' में जग्गी ने इस उद्यम की विस्तृतता का रहस्योद्घाटन किया। उन्होंने बतलाया कि उनके इस जन्म का एकमात्र कारण ध्यानलिंग ही है। समय कम था और उनका एक ही सपना था, अपने गुरु के मिशन को पूरा करना। यह पहला मौका था जब उन्होंने अपने गुरु की चर्चा की थी। उनके साधकों के मन में यह विचार उठ ही जाता था कि उनके शिक्षक जग्गी इतने स्वतंत्र थे कि वह किसी गुरु के अनुशासन के प्रति समर्पित नहीं रहे होंगे। लेकिन गुरु का अभिप्राय वंश, परंपरा थी, जिसे भारतीय आध्यात्मिक संदर्भ में भी, विश्वसनीयता प्राप्त है। स्वामी निसर्ग (जिन्होंने कुछ महीने बाद आश्रम आने पर इसके विषय में सुना) लिखते हैं, ''यह एक बीमा पॉलिसी की तरह था। मुझे सोचते हुए याद आता है, अपने सभी उन्मत्त तौर-तरीकों के लिए वस्तुत: यह व्यक्ति जिम्मेदार है।''

जग्गी ने अब अपने शिवयोगीवाले जन्म के विषय में बतलाया जिसके मोक्ष का मार्ग पलानी स्वामी के हस्तक्षेप से प्रशस्त हुआ। आत्मज्ञान हेतु किए गए उसी हस्तक्षेप से उनके लिए एक मिशन भी निर्धारित हो गया। यह मिशन समय-समय पर बाधित होता रहा था। इस बार यह कार्य चाहे जितना भी विशाल था, जग्गी इसे पूरा करने के लिए कृत संकल्पित थे। उन्होंने कहा कि वह न केवल ध्यानलिंग के निर्माण हेतु कृत संकल्पित थे बल्कि एक ऐसा वातावरण भी निर्मित करना चाहते थे जिससे लोग इसकी विशाल रूपांतरणकारी संभावना से लाभ उठाने में सक्षम हो सकें।

इस घोषणा की मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। सद्गुरु को इस बात का अहसास था कि इससे कई लोग घबराए हुए व परेशान थे। वह स्मरण करते हुए कहते हैं, ''खासकर मेरी पत्नी विज्जी, उसने यह कहते हुए विरोध किया, 'बिलकुल नहीं! तुम यह कैसे कर सकते हो?' उसे इसका प्रयोजन और सार्थकता बताकर विश्वास में लेने में लगभग छह से आठ महीने लग गए। मैं उसे सांत्वना न दे सका। वह रो पड़ती। उसने कहा, 'तुम यह किसी कीमत पर नहीं करोगे! तुम्ही ने हमें सिखाया है कि पत्थर और सीमेंट से बने भवनों की ओर देखने की अपेक्षा हमें अपने अंदर झाँकना चाहिए। आप ही वह हैं जिन्होंने मेरे सारे देवी-देवताओं से मुझे अलग कर दिया। और अब मैं खुश हूँ। अब आप एक देवता को मेरे जीवन में लाना चाहते हैं। मैं इसे हरगिज स्वीकार नहीं करूँगी।' आगे चलकर इसके लिए हमने ज्यादा चतुराईपूर्ण शब्द प्रयोग किए—बहु-संप्रदाय मंदिर ''ध्यान मूर्ति...' लेकिन ज्योंही मैंने 'मंदिर' का नाम लिया तो यह विशाल प्रतिकार सामने आया। कुछ अन्य लोगों ने कहा, 'नहीं, बल्कि हमें स्कूल बनाना चाहिए, अस्पताल बनाना चाहिए।' मैंने कहा, 'नहीं, ये सभी-योग तो केवल ख्याति व्यवसाय हैं। मैं तो ध्यानलिंग मंदिर ही बनाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं यहाँ हूँ भी।''

यह क्षण एक अन्य व्यग्रताकारी, गहरे आंतरिक संघर्ष का क्षण था जो पुन: उसी तथ्य की ओर संकेत करता था कि जिस आदमी के विषय में वे सोचते थे कि वे उसे जानते हैं, वह ऐसा नहीं था जैसा कि वह लगता था। वास्तव में सद्गुरु ने उन्हें एक वर्ष पहले ही चेतावनी दे दी थी कि वे निकट भविष्य में परिवर्तनों हेतु तैयार रहें। वह कहते हैं, ''जिस दिन हम इशा फाउंडेशन का पंजीकरण कराना चाहते थे, उस दिन मेरे साथ मात्र छह लोग ही थे। वे सभी बड़े अच्छे लोग

थे। लेकिन मैंने उनसे कहा, 'देखिए, अब आप सभी इसमें संस्थागत रूप से सम्मिलित हो रहे हैं। मैं आपके अनुग्रह से आपको बतलाता हूँ कि मेरा यह असली वेश नहीं है। जब मैं अपने असली रूप में आऊँगा, क्या तब भी आप मेरे साथ रहोगे?' कुछ विरोध सामने आए।'' एक साधक ने कहा कि वह अस्थमा से मुक्त हो चुका था, दूसरे ने मधुमेह से छुटकारा पा लिया था, तब उनकी निष्ठा जग्गी पर कैसे डगमगा सकती थी? धीरे-धीरे उनके साधकों को यह मालूम होना था कि कई मुखौटोंवाले व्यक्ति के साथ रहने की चुनौतियाँ क्या थीं! उनकी बेचैनीपूर्ण उपस्थिति से व्यग्रता बल्कि भय भी महसूस होता था। उनके अगले कदम, अगली भूमिका, उनके अगले कार्यक्रम की भविष्यवाणी करना असंभव था। आज भी उनके मिजाज का अचानक बदलाव बहुतेरों के लिए यह प्रश्न खड़ा कर देता है; वास्तविक सद्‍गुरु कौन है?

भारती की निराशा के उफान का अनुभव उसे अभी भी याद है। ''यही वह व्यक्ति थे जिन्होंने मंदिर जाने के खिलाफ अपनी दलीलें दी थीं, और अब वही मंदिर बनाने की बात कर रहे थे! लेकिन अब यह बात साफ थी कि वह इसके प्रति गंभीर थे। यह भी स्पष्ट था कि वे जल्दी में थे। वह कहती है, ''उन्होंने हमें याद दिलाया कि वह बयालीस वर्ष से ज्यादा नहीं जिएँगे। समय बीतता जा रहा था। हमें यह करना ही था।''

उसे कई बार व्यक्तिगत रूप से ऐसे अनुभव हुए जिनमें जग्गी की विस्फोटक ध्यानावस्थाओं में वह खतरनाक ढंग से मौत के करीब पहुँच गए थे। ''चूँकि वह ध्यान की अपेक्षाकृत गहन अवस्थाओं में जाते थे, इसलिए कभी-कभी उनके पैर ठंडे पड़ जाते थे और ऐसा महसूस होता मानो वह शरीर छोड़नेवाले थे। ऐसे समय पर उन्हें होश में लाने के लिए हमें जल्दी-जल्दी विभूती रगड़नी पड़ती थी। ऐसे समय पर शरीर के साथ उनका संपर्क इतना नाजुक होता था कि साधक यह देख रहे होते कि उनके गुरु और ज्यादा उस शरीर में नहीं बने रहेंगे।''

भारती कहती है, ''अब मैं देखती हूँ कि वह एक बड़े योजनाकार हैं, वह स्वयं में एक विरोधाभास हैं। एक ओर तो वह आग के विशाल गोले हैं, लेकिन वह अत्यधिक धैर्यशील भी हैं। वह अपना लक्ष्य बड़े आराम से हासिल करते हैं। जब उन्होंने ध्यानलिंग के विषय में बताया कि यह बिना किसी पूजा या मंत्र के एक ऊर्जा रूप निर्माण की प्रक्रिया है, तो धीरे से हमें यह महसूस होने लगा कि इस संपूर्ण कार्यक्रम का उद्‍देश्य एक आश्रम की स्थापना नहीं है। इसका उद्‍देश्य कुछ और था, बहुत कुछ और था।''

साधकों को यह भी समझ में आना शुरू हो रहा था कि वे वहाँ अकस्मात ही एकत्र नहीं हुए थे, बल्कि इस अचानक-सी प्रतीत होनेवाली सभा का उद्‍देश्य काफी विशाल था। और उनके सामने एक ऐसा व्यक्ति था जिस पर उनकी आस्था शुरू से ही अकारण नहीं थी। उनके जीवन का उद्‍देश्य उसके अपने जीवन लक्ष्य के साथ पूरी तरह जुड़ा हुआ था। तीन महीने बाद एक सत्संग में स्वयं जग्गी ने इसका निष्कर्ष यह कहते हुए निकाला, ''वही स्थान, वही लोग, वही काम।''

अगस्त में महीनेभर चली साधना समाप्त हो गई। अगले दो महीने उन लोगों के सघन प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु थे जो रहवासी और शिक्षक बनना चाहते थे। इसके लिए मात्र चौबीस लोग रह गए, जबकि शेष घर लौट गए।

एक दिन जग्गी वेलियांगिरी हिल पर ट्रेकिंग के लिए गए। जाते समय वह अपनी सामान्य ट्रेक पेंट्स पहने हुए थे। जब वह लौटे तो सफेद रंग की लंगोटी और पगड़ी भर लपेटे हुए थे। जिन लोगों ने उन्हें लंबे-लंबे कदमों से अंदर आकर अपनी सीट पर बैठते देखा, वे देख सकते थे कि वह पूरी तरह से अलग व्यक्ति थे। पिछले महीने के अनुभव रोंगटे खड़े कर देनेवाले रहे थे। लेकिन इस दृश्य के लिए वे बिलकुल तैयार नहीं थे। इसी समय एक साधक ने उन्हें स्वाभाविक रूप से सद्‍गुरु कहकर संबोधित किया। जग्गी ने इस उपाधि को मान्यता दे दी। उसने धीरे से कहा, ''अब मैं आपका जग्गी नहीं हूँ। मैं सद्‍गुरु हूँ।'' यह पुष्टि अनावश्यक महसूस हुई। उनके रौब की स्वाभाविकता स्पष्ट थी। जहाँ एक ओर उनमें से कुछ लोग एक मित्र खो देने से परेशान और उदास थे, वहीं दूसरी ओर उन्होंने महसूस किया कि उन्हें उनकी प्रत्याशा से काफी ज्यादा प्राप्त हो गया था। उनके सामने उपस्थित व्यक्ति किसी योगी से बढ़कर था। वह गुरु था।

राजा को याद है कि किस तरह उसने और विजी ने उनके पास पहुँचकर उत्सुकतावश उनकी पगड़ी को छुआ। विजी

ने पगड़ी हटाने की कोशिश की लेकिन उन्होंने मुड़कर हमें देखा। बस इतना ही हुआ और हम तुरंत लौट आए। कार्यक्रम के आगे के भाग में सद्गुरु सभी साधकों को सातवीं वेलियांगिरी पहाड़ी ले गए। उन्होंने बताया कि वहीं पर सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने अपना शरीर त्याग किया था। और इसी स्थान पर उन्होंने वचन दिया था; ''मैं वापस आऊँगा।''

सद्गुरु ने कहा, ''उन्होंने अपना वचन निभा ही दिया। लेकिन यह उनका अंतिम जन्म होगा। एक बार ध्यानलिंग की स्थापना हो जाए, तो वह कभी भी वापस नहीं आएँगे। वह पुन: इसी सातवीं पहाड़ी पर चढ़कर अंतिम बार अपना शरीर छोड़ेंगे।''

एक समूह उस घटना के बिलकुल उसी स्थल की खोज में चल पड़ा। सद्गुरु उस समूह की अगुआई कर रहे थे। जब एक जलधारा के निकट सातवीं पहाड़ी के पूर्व थोड़ा विश्राम के लिए वह समूह रुका, सद्गुरु स्वयं ही आगे निकल गए। जब वह लौटे तो वह साफ तौर पर किसी प्रबल भावनात्मक उद्वेग के वशीभूत थे। उन्होंने इस संक्षिप्त टिप्पणी के साथ उस समूह को आगे भेजा, ''तुम्हें बिना किसी कठिनाई के वह स्थान मिल जाएगा।''

वही हुआ। वह एक चट्टान का भयंकर व वायु के संपर्कवाला जमीन से उठा हुआ हिस्सा था। उस स्थान तक पहुँचने का रास्ता कठिन नहीं था। यह स्थान वैसी ही प्रचंड और विस्फोटक ऊर्जा से स्पंदनशील था जैसी ऊर्जा उनके गुरु की थी। श्रीनिवास कहता है, ''हम शीघ्र ही ध्यानावस्था में प्रवेश कर गए। जबकि कुछ लड़खड़ाने लगे, दूसरे रोने लगे। और कुछ तो अपनी आँख ही नहीं खोल पा रहे थे। सघन ध्यान में जाते हुए श्रीनिवास को याद है, 'मेरे आसपास होनेवाली प्रत्येक स्थिति से मैं परिचित था। मैंने लोगों को यह गाते सुना, 'शम्भो' लेकिन मैं अपनी आँख नहीं खोल सका। मैं वहाँ लगभग एक घंटे रहा और अपने अनुभव में तो मैं साँस भी नहीं ले रहा था। जब हम श्वास लेते तो प्रच्छवास शीघ्र ही, झट हाँफने की प्रक्रिया में बाहर आ जाता। मैंने अपने शरीर में ढीलापन महसूस किया, मानो यह मुझसे अलग हो रहा था। सद्गुरु ने बताया कि यदि मुझे अकेला छोड़ दिया जाता तो मैं अपना शरीर ही त्याग देता।''

श्रीनिवास को वह समय भी याद है जब वह एक छोटे-से समूह के साथ (जिसमें सद्गुरु और भारती भी थे,) उन पर्वतीय गुफाओं में गया था, जिन्हें सद्गुरु श्रीब्रह्मा ध्यान के लिए उपयोग में लाते थे। उस समूह ने वहाँ चार दिन बिताने का निर्णय लिया। उसे याद है, ''उस स्थान की ऊर्जा इतनी शक्तिशाली थी कि हवा भी वस्तुत: ठोस महसूस होती थी। आप इसे चाकू से काट सकते थे।'' उन्होंने वहाँ भोजन किया, तैराकी की और देर रात तक ध्यान किया। वह कहता है, ''मैं पूरे समय नशे में रहता था। सद्गुरु पूछते, 'पार्टी मनाई जाए क्या?' वह हवा में मात्र फूँक मारते और क्षणभर में हम एक दूसरे ही आयाम में पहुँच जाते। बाद में वह मुझे हिलाकर कहते, 'अरे मूर्ख, जाग जाओ।'''

तीन सितंबर को सद्गुरु के जन्म दिन की प्रत्याशा में, समूह ने सरप्राइज पार्टी देने की योजना बनाई। आश्रम को फूलों से सजाया गया। सद्गुरु को साधकों द्वारा मंचित नाटक में काफी आनंद आया, जिसमें साधकों ने भूतकाल और भविष्य के विभिन्न पात्रों की भूमिकाएँ कीं जो इशा के प्रबंधन हेतु अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए उदारता से अपना योगदान देंगे। इस नाट्य प्रक्रिया से द्रवीभूत होकर सद्गुरु ने उनमें से प्रत्येक को गले से लगा लिया और दीक्षा प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा। उसके बाद पार्टी शुरू हुई। लेकिन अचानक ही श्रीनिवास ने महसूस किया कि उसे खड़े रहने में कठिनाई महसूस हो रही थी। जब दूसरे उसे नृत्य के लिए खींचते तो वह तिरछा होकर मात्र हिलता रहता। वह कहता है, ''यह एक ऐसी हालत थी जैसी मैंने पहले कभी भी महसूस नहीं की थी। यह स्थिति लगभग डेढ़ घंटे तक बनी रही। बाद में सद्गुरु ने भारती से मेरे अजना चक्र में हाथ लगाकर मुझे सामान्य स्थिति में लाने के लिए कहा।'' इंदिरा इस बात को पुष्ट करती है। उसे सद्गुरु की उन्मत्त अवस्था याद है—''उनकी आँखों में आँसू थे।''

इस घटना के विषय में सद्गुरु सामान्य ढंग से बतलाते हैं, ''उस कार्यक्रम में ही सभी काम होने लगे। फूल खिलने लगे।'' लेकिन जाहिर तौर पर इतना ही पर्याप्त नहीं था। सद्गुरु ने सदा ही कहा है, ''यदि कुछ लोगों को कार्यक्रम में शामिल कराने की बात है, तो यह मेरे लिए बिलकुल सरल बात है। लेकिन मैं इस संभावना को अनेक लोगों को उपलब्ध कराना चाहता हूँ।''

उनके शिष्य इस तथ्य को महसूस करने ही लगे थे कि एक माली के रूप में सद्गुरु की महत्त्वाकांक्षा कोई विशेष साधारण नहीं थी।



‘दैवज्ञता का आरोहण अपने में ढाल लेता है’

गहराता हुआ तीर्थ, काली होती रात

जिन्होंने उन्हें अंतरंगतापूर्वक जान लिया था, उनके लिए यह सहज नहीं था। जब जग्गी सद्गुरु बन गए, तो ऐसा लगा मानो रातोरात कोई व्यक्ति एक भाव बन गया हो। पूर्णता कार्यक्रम ने एक मित्र और मार्गदर्शक को एक अव्यैक्तिक अस्तित्व, एक निषेधात्मक व्यक्तित्व में परिणित कर दिया था। एक वरिष्ठ ब्रह्मचारिणी का कहना है, ‘‘दीर्घकाल तक मैंने इस राह पर संघर्ष किया। मेरे मामले में गुरु-शिष्य संबंध आसान नहीं रहा है। बहुत से संदेह, विद्रोह, प्रश्न और अधिकाधिक प्रश्न उठते रहे हैं। मैं समझ गई थी कि वह स्वयं को सामाजिक कारणों से एक विशेष अंदाज में प्रस्तुत करना चाहते थे ताकि उन्हें ध्यानलिंग और आश्रम हेतु स्वीकृति मिल सके। लेकिन हममें से कुछ ऐसे थे जो इस छवि परिवर्तन से संघर्ष कर रहे थे। जिस तरह वह थे उससे लगता था कि वह प्रतीक बन चुके थे। यह सभी में परिलक्षित था—उनके परिधान में बदलाव से लेकर आश्रम के निरंतर परिवर्धित होते नियम व शर्तों तक।’’

एक अन्य रहवासी को उसका पहली बार आश्रम जाना याद है। सबकुछ बड़ी तेजी से औपचारिक होता जान पड़ा। हर कहीं कंक्रीट की संरचनाएँ नजर आनी प्रारंभ हो गई थीं। उसके पुराने समय के मित्र को अचानक ‘सद्गुरु’ संबोधित किया जा रहा था। उसके आस-पास रहनेवाले लोग अचानक सफेद वस्त्र धारण किए हुए थे। उस पर संशयों के आक्रमण होने लग गए। परंपरा विरोधी जग्गी को, जो संगठित आध्यात्मिकता का अगली पंक्ति का विरोधी था, हुआ क्या था? क्या वह अपने सिद्धांत बेच चुका था?

यदि ये आशंकाएँ उस समय थीं, और जब जग्गी ने यह घोषणा की कि वह लोगों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देंगे, तो यह कितने आश्चर्य की बात थी, इसकी कल्पना कोई भी कर सकता है। एक सामान्य शिष्य का विकल्प बना रहा। लेकिन ब्रह्मचर्य ऐसे लोगों की पसंदगी पर छोड़ दिया गया था जो इस ओर प्रवृत थे, कुछ लोग भौचक्के रह गए। और फिर भी दूसरे लोगों को यह उतना हास्यापद नहीं लगा। किरण कहती है, ‘‘यह उनके साथ होने का एक तरीका लगा। और इससे ज्यादा कुछ और मैं चाहती भी नहीं थी। उन्होंने कहा कि यह एक साथ रहने का, एक साधक के रूप में अपनी ऊर्जा केंद्रित करने का एक तरीका था। यह तो समझ आता था। लेकिन उनकी शर्गिदगी में रहने के लिए मैं कुछ भी करने के लिए तैयार हो गई होती।’’

जिन्हें इसमें रुचि थी, उन्हें इसे आजमाने के लिए कहा गया। नौ लोग तैयार हुए। इंदिरा इनमें से एक थी। उस समय यह करना उतना भयावह नहीं था, क्योंकि यह सब इतनी नई बात थी। ‘‘उन्होंने कहा कि हम साथ-साथ आगे बढ़कर सामूहिक रूप से मार्गदर्शन तय करेंगे। उन्होंने उस समय मुझे अपने कंप्यूटर प्रतिष्ठान में निरंतर कार्य करने की अनुमति दे दी, जिसे दो वर्ष तक ब्रह्मचारी के रूप में मैं करती रही। जब कैरियर की चुनौतियाँ अर्थहीन महसूस होने लग गईं, तब मैं यह कार्य छोड़कर पूर्णकालिक तौर पर आश्रम से जुड़ गई। उन्होंने दोनों निर्णयों में मेरा साथ दिया।’’

लेकिन यह सब किसलिए था? एक ऐसा समकालीन रहस्यवादी संत पारंपरिक आध्यात्मिक व्यवस्था की स्थापना क्यों करने चला? इस प्रश्न से उस समय कई लोग हतप्रभ रह गए और आज भी वे हतप्रभ हैं। ‘‘शुरू-शुरू में मैं भी इस उलझन में फँसकर रह गई। वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें जीवन के प्रति अगाध अभिप्सा है, जिसका आध्यात्मिकता के प्रति दृष्टिकोण जीवनदायक और प्ेररणास्पद है। वह भला क्यों औरों को तप और आत्म परित्याग हेतु प्रेरित करने चला? यह पूरी तरह बेतुका महसूस हुआ।’’

जब मैंने कुछ वर्षों पूर्व सद्गुरु से यह प्रश्न किया तो वह हँसने लगे। उन्होंने जवाब दिया, ‘‘ऐसा इसलिए कि समकालीन होना क्या है, इसके प्रति तुम्हारे विचार सीमित हैं।’’ उन्होंने समझाया कि ब्रह्मचर्य सच्चे स्वतंत्रता प्रेमियों के

लिए आजमाया हुआ रास्ता है। ब्रह्म का अर्थ है 'अंतिम', 'दैवज्ञता', चर्या का अर्थ है 'पथ।' प्रत्येक मनुष्य को जाने-अनजाने की ही तलाश है। चूँकि आप आनंद प्राप्त नहीं कर सके, इसलिए आप सुख के लिए तैयार हो गए। सुख तो आनंद की छाया मात्र है—खूबसूरत तो है लेकिन बहुत सीमित है। अब यदि तुम्हें सुख की तलाश है, और कोई चीज जिससे तुम्हें सुख मिलता है तुमसे छीन ली जाए, तो तुम टूट जाते हो। इसका अर्थ है कि तुम्हारा अस्तित्त्व भारी दासतावाला है, है या नहीं? अब कोई भी दासता पसंद नहीं करता, हर किसी में सीमाओं से स्वतंत्रता की गहरी इच्छा है, लेकिन तुम उन्हें तोड़ नहीं सकते। बहुत-से लोगों ने अपनी बेड़ियों में आभूषणों की तरह सोने का मुलम्मा चढ़ा रखा है, वे सामान्य रूप से उसका समारोह मना रहे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य—ईश्वर का पथ— का अर्थ है कि तुम अपनी प्रकृति से आनंदित थे। इसका तात्पर्य है कि तुम्हारा आनंद स्वत:स्फूर्त है, बटन-दबाकर स्फूर्तकारी नहीं है। और खैर, यदि खुशी का स्त्रोत तुममें है, तो इसे बाहर खोजना बिलकुल मूर्खतापूर्ण कार्य है।

वह हमेशा बुद्ध की एक पंक्ति का दृष्टांत देते हैं—''गौतम ने कहा बुरी सोहबत में चलने से अच्छा अकेले चलना। यदि आप अकेले हैं, तो आप धीमे चलें या तेज चलें लेकिन कम-से-कम आप एक तय दिशा में तो चलते हैं। यह पीछे खींचे जाने से तो बेहतर है।'' वह कहते हैं कि ''पारंपरिक वैदिक समाज में भी लगभग सत्तर प्रतिशत लोगों ने गृहस्थ में प्रवेश किया। संन्यास के पथ का विकल्प शेष ऐसे तीस प्रतिशत लोगों के लिए था जो इस तरह के गृहस्थ जीवन की स्थितियों की आवश्यकता महसूस नहीं करते थे। संसार में ऐसे कुछ लोग सदा रहेंगे जो स्व-संरक्षण और नोत्पति हेतु एक से अधिक जीवन चाहते हैं। ब्रह्मचर्य उनके लिए है। मनुष्य अकेला जन्म लेता है। ये ऐसे लोग हैं जो समान रूप से अपने जीवन का आचरण करते हैं। वे कुछ भी त्याग नहीं करते। वह तो समाज के दूसरे लोग हैं, जो यौनाचार और आसक्ति की समस्याओं से ग्रस्त होकर संग पाने के लिए अपनी स्वतंत्रता का त्याग करते हैं।''

वह अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए इसकी तुलना मिट्टी के पात्र से करते हैं। ''आप स्वयं को कर्म का पात्र (बरतन) मान लें। जीवन की प्रक्रिया के साथ कुछ कर्म और प्रभाव के वशीभूत आप अपनी तरह के एक व्यक्ति बन गए हैं। बचपन में यह व्यक्ति गीली मिट्टी की तरह था। समय के अंतराल में आप पूर्णरूपेण वयस्क हो गए, यह (पात्र) बिलकुल कठोर हो गया। इस तरह यह बरतन जीवन की प्रक्रिया में धीरे-धीरे तपकर पक रहा है। आपकी वृद्धावस्था आने तक, यदि आप इस पात्र का रूप बदलना चाहें, तो यह टूट जाएगा। लेकिन जब यह तपाकर पकाया नहीं गया था तो बड़ी आसानी से आप अपनी इच्छानुसार इसे ढाल सकते थे। यही तो हम ब्रह्मचर्य के मामले में कर रहे हैं। हम लोगों को उस दशा में तपकर पकने से दूर रख रहे हैं जहाँ उनकी ऊर्जायें बिलकुल तरल, किसी रूप में गढ़ने योग्य हो जाती हैं, ताकि उन्हें हम वांछनीय रूप या आकार दे सकें। ब्रह्मचर्य इसी दिशा में काम कर रहा है। यह एक बड़ी साधना है।''

एक बार उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मेरे विचार से ब्रह्मचारी मूढ़मति से लगते हैं? उस समय तो मैंने जवाब दिया कि यह विचार मेरे दिमाग से परे ही चला गया। आश्रम में कुछेक बार जाने के बाद उनकी (ब्रह्मचारियों की) उपस्थिति परछाईं-सी और स्वयं को मिटा देने की हद तक अपने आपको नकारनेवाली लगी। आगे चलकर मुझे यह अहसास हुआ कि स्वयं को लोगों के ध्यान या आकर्षण प्राप्ति (जिसे आज का समाज सामान्य समझता है) की इच्छा से रहित बनने के लिए कितनी परिपक्वता की आवश्यकता होती है। उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि ''वे मूढ़मति नहीं हैं। वे अत्यधिक बुद्धिमान लोग हैं। होशोहवास में स्वयं को किसी भी रूप-आकार के पात्र में ढलने योग्य बनाने के लिए तैयार होना—क्या ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त करना अच्छा नहीं है? मैं दस ब्रह्मचारियों को मिलाकर उनकी ऊर्जाओं से एक विशाल मानव तैयार कर सकता हूँ—जो एक प्रचंड शक्ति हो सकती है।'' कुछ ठहरकर उन्होंने कहा, ''हम सभी ने आम खाए हैं, लेकिन हममें से कितने लोगों ने आम के वृक्ष रोपित किए हैं? ऐसा मात्र इसलिए है कि हर पीढ़ी में मात्र दस लोग आम के वृक्ष रोपित करते हैं जिससे हर कोई आम खा पाता है। इसलिए आध्यात्मिक पथ को इसकी अखंडता में आगे बढ़ाते रहने के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। यह बात बड़ी अहमियत रखती है कि कुछ ऐसे लोग हैं जिनके लिये सत्य का महत्त्व उनके जीवन से भी बढ़कर होता है। जब आप एक आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास कर रहे

हैं, जो आपके बाद पीढ़ियों तक अस्तित्वान रहेगा, तो यह ब्रह्मचर्य की ठोस परंपरा के बिना संभव नहीं है।''

वह संकेत करते हैं कि कौमार्यव्रत तो इस तसवीर का एक छुद्र भाग है। ''ब्रह्मचर्य समाहित करने का जीवन है, निषेध करने का नहीं, जैसा कि लोग इसे समझते हैं। ब्रह्मचारी 'तुम-मैं' के संबंध से हटकर देखता है क्योंकि वह स्वयं के भीतर सर्वस्व-समाहित होने का भाव स्थापित करना चाहता है। ब्रह्मचारी ऐसे लोग हैं जिन्होंने यह निश्चय कर रखा है कि वे किसी चीज या किसी व्यक्ति से कोई खुशी हासिल करना नहीं चाहते। वे अपने अंदर की खुशी का स्रोत तैयार करना चाहते हैं। इस भाव से समस्त संसार को आंतरिक रूप से ब्रह्मचर्य की ओर मुड़ना होगा। यह कोई अभ्यास, कोई शपथ, कोई बाह्य जीवन शैली से सरोकार नहीं रखता। शादीशुदा होकर भी ब्रह्मचारी हो सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि आप अपनी प्रकृति से ही अत्यंत प्रसन्नचित्त हो सकते हैं और ऐसा ही होना चाहिए।''

एक बार उन्होंने किसी सूफी संत जलाउद्दीन रूमी की कहानी सुनाई।

जब रूमी ने अपनी प्रेयसी के घर जाकर दरवाजा खटखटाया तो उसकी प्रेयसी ने पूछा, ''कौन है?''

रूमी ने जवाब दिया, ''मैं हूँ।''

दरवाजा नहीं खुला। रूमी उससे इतना प्रेम करता था कि कई दिनों तक वह रोता रहा। बार-बार वह दरवाजे के पास जाता। हर बार यही आवाज आती, ''कौन है?''

रूमी ने कहा, ''मैं, रूमी, और मैं तुम्हारे लिए जान देने को भी तैयार हूँ।''

दरवाजा बंद ही रहा। एक दिन इस सब बखेड़े और परेशानी के बाद, उसके भीतर एक दूसरी अवस्था जाग्रत् हो गई। वह एक बार फिर अपनी प्रेयसी के दरवाजे पर पहुँचा।

अंदर से आवाज आई, ''कौन है?''

रूमी ने जवाब दिया, ''तुम्ही तो हो।'' और दरवाजा खुल गया।

सद्गुरु ने एक पक्के कथावाचक की तरह ठहराव लिया और कहा, ''संपूर्ण प्रक्रिया यही है। यदि आध्यात्मिक अभ्यास आपके जीवन का अंग है, तो यह कारगर नहीं होता। यदि यह स्वमेव हो गया है या आपमें समाहित हो गया है तो भी यह पर्याप्त नहीं है। इसे तो आपसे भी बढ़कर होना होगा, आपके जीवन से भी बढ़कर। यही तो ब्रह्मचर्य है।''

एक संन्यासी, जिसे 1996 के दूसरे बैच में ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी गई थी, अपनी इस दीक्षा के पीछे एक जोरदार घटना का वृत्तांत सुनाता है। वह तब भी अपने मित्र और संरक्षक के अचानक सद्गुरु होने के बखेड़े से जूझ रहा था। फिर भी उसके मन में जग्गी के प्रति गहरा विश्वास अभी भी बरकरार था। एक दिन सद्गुरु ने उसे बुलाया और पूछा कि उसने दक्षिण भारतीय सिने-प्रेमियों की धड़कन, रजनीकांत की फिल्में देखी थीं। जब उसने 'नहीं' में जवाब दिया तो सद्गुरु ने कहा कि ब्रह्मचर्य रजनीकांत की फिल्में देखना छोड़ देने से बढ़कर नहीं है। यहीं पर बात बन गई। युवक का ब्रह्मचर्य दीक्षा हेतु पंजीयन हो गया।

और सामुदायिक जीवन के झंझटों का क्या; नियम और विधान, गुरु के निर्देशों के अनुसार जीवन जीना, संस्थागत आदेश अधीनता? वह स्वीकार करता है, ''बेशक कुछ समय कुंठा के रहे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य को मैं एक प्रक्रिया के रूप में देखता हूँ, ऐसी प्रक्रिया भी नहीं जिसे तोड़ा न जा सके। इससे मदद मिलती है। इसके अलावा इस जीवन का बड़ा लाभ यह है कि आपकी आध्यात्मिक प्रक्रिया, आपकी आंतरिकता का ध्यान पूरी तरह सद्गुरु द्वारा रखा जाता है। कोई सही मिजाज का व्यक्ति भला यह सब क्यों छोड़ने चला?'' क्या ऐसी आज्ञाकारिता का जीवन जिसमें हम कोई प्रश्न न उठा सकें, उसके अधीन रहने में खीझ नहीं होती? वह बड़ा तार्किक जवाब प्रस्तुत करता है, ''मैं सद्गुरु पर इसी तथ्य के कारण आस्था रखता हूँ कि वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपनी स्वतंत्रता का मूल्य जानते हैं। इसीलिए मुझे विश्वास है कि वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे मुझे अपनी स्वतंत्रता से समझौता करना पड़े।''

'संपूर्णता कार्यक्रम' के दौरान आश्रम के नियमों की तेजी से बढ़ती सूची से सोमू घबरा गया था। ''यह देखकर मैं डर-सा गया। एक दिन मैं सद्गुरु के पीछे-पीछे उनके कमरे में चला गया। वहाँ अँधेरा था और मुझे याद है, उनके हाथ में

एक टार्च थी। हम दरवाजे के पास रुक गए।''

उन्होंने मेरी ओर देखा और बिना कुछ सोचे-समझे मैंने उनसे कहा, ''जग्गी, मुझे कोई नियम-कानून नहीं चाहिए।''

उन्होंने मेरे चेहरे पर टॉर्च की रोशनी डाली। उन्होंने मेरी आँखों में आँसू देखे होंगे। उन्होंने धीरे-से कहा, बहुत धीरे-से, ''ठीक है, तुम्हारे लिए कोई नियम-कानून नहीं है।''

सोमू के लिए वह क्षण इसलिए यादगार बन गया, क्योंकि सद्गुरु कभी अपने वचन से डिगे नहीं। सोमू (अब स्वामी गुरुभिक्षा) कहता है, ''आज भी सद्गुरु सभा में नए दीक्षा लेनेवालों से कहते हैं कि उन्होंने वचन दिया है कि उन पर कोई भी नियम बाध्यकारी नहीं होगा।'' सोमू कहता है कि आश्रम व्यवस्था में बाह्य की अपेक्षा आंतरिक दल का प्रजातंत्र चलता है। सद्गुरु अब भी कहते हैं, ''जो भी दिशा-निर्देश तुम्हें अनुचित लगते हैं, उन्हें उचित मंच पर बयान करें, हम उन्हें बदल देंगे।'' अब मैं उन पर और ज्यादा विश्वास करता हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि वह अपने वचन से डिगते नहीं हैं।

कविता, एक युवती, जिसने हाल ही में ब्रह्मचर्य में प्रवेश किया है, उसके लिए यह प्रतिबद्धता नए अनुभव की राह है न कि नियम-कायदों का संकीर्ण बंधन। यह पैनी धार पर संभलकर चलने की तरह है। इससे आपको हर क्षण सचेत रहने की चुनौती मिलती है। ''मैंने सदा ऐसी स्थिति के ख्वाब देखे हैं, जहाँ हर किसी में अति उत्साह हो और वे अपने व्यक्तित्व की सीमाओं को समाप्त करने के लिए, समर्पित हों। और ऐसी स्थिति यहाँ है।''

सद्गुरु के साथ यू.एस. में कुछ कोर्स करने के पश्चात्, अरकांसास की स्कूल शिक्षिका कविता ने कुछ समय आश्रम में रहकर बिताने का निश्चय किया है। ''मुझे पहले से ही ऊर्जा सुबोधता और स्पंदन का उच्च स्तर महसूस हो रहा था। और मुझे लगता था कि मैं स्वयं को अतिमानव में बदलकर वापस लौट जाऊँगी। यहाँ स्वयं-सेवियों को देखकर मैं भौचक्की रह गई— उनकी प्रतिष्ठा, सादगी और भद्रता। सद्गुरु की बराबरी में आने की चेष्टा महत्त्वाकांक्षी लगी। लेकिन इन लोगों की बराबरी में आने का प्रयास तो प्रेरणादायी प्रत्याशा महसूस हुई।''

उसने टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम के विषय में जाने बिना, इसमें अपना पंजीयन करा लिया था, लेकिन उसकी उच्चाकांक्षा धराशायी हो गई। ''यह बहुत दीन-हीन सा महसूस हुआ।

''मैंने ऊपर उठने, जीतने और सर्वोत्कृष्ट होने के विषय में सोच रखा था। लेकिन शिक्षक बनने का तात्पर्य है, ज्ञात को छोड़ना, द्रवीभूत होना, प्रवाहित होना। पहले मैं स्वयं को योग्य व्यक्ति बनाना चाहती थी। अब मैं स्वयं को जो हूँ उसे मिटाना चाहती हूँ ताकि योग्यता की झलक मुझमें आ सके।''

सद्गुरु ने सदा कहा है, ''मैं जितना अनौपचारिक लगता हूँ, उतना ही ज्यादा गंभीर होता हूँ।'' जिन्होंने उनसे वार्त्तालाप करने के पश्चात् जीवन-परिवर्तनकारी निर्णय लिया है, वे इस कसौटी पर स्वयं को जाँचते हैं। एक अन्य शिष्य (अब ब्रह्मचारी) जिसने हाल ही में दीक्षा ली है, उसने बताया कि कैसे सद्गुरु ने अकस्मात् उससे पूछ लिया कि क्या उसका ब्रह्मचर्य का इरादा था? शिष्य ने जवाब दिया ''नहीं''। ''क्यों''? सद्गुरु ने पूछा, ''अभी भी खूबसूरत बीवी की तलाश है?'' शिष्य ने झिझकते हुए जवाब दिया कि उसे अपनी सुबह की चाय की चुस्कियों में इतना मजा आता है कि वह इसे छोड़ने की नहीं सोच सकता। इस पर उसके गुरु ने धीरे से कहा, ''ओह, तब तो हम तुम्हारे लिए बेहतर शराब तैयार करेंगे।'' इतना काफी था, और वह शामिल हो गया। यह ब्रह्मचारी स्वीकार करता है कि उसे प्राय: गरमागरम मसाला चाय की याद आती है लेकिन इसकी चाहत की तीव्रता बिलकुल समाप्त हो गई।

यदि उनके पहले के शिष्यों के लिए मित्र से सद्गुरु रूपांतर में ढलना कठिन रहा है, विजी पर जाहिर तौर पर इसका प्रभाव कहीं ज्यादा था। एक सामान्य महत्त्वाकांक्षी महिला— मात्र पत्नी और माँ बनने की— के लिए उसकी बड़े प्रेम से संजोई इच्छाओं के लिए उसे बड़े खतरे का सामना करना पड़ा।

एक भावुक और आवेगयुक्त और अपने पति पर अत्यधिक अधिकार समझने वाली महिला ने अचानक अपने प्रिय पति को एक सामूहिक संपत्ति के रूप में बदलते देखा। इसके अलावा उसे स्वयं विशेष तौर पर आध्यात्मिक कभी नहीं

माना। साधना के प्रति विशेष भाव कभी नहीं रखा। और यद्यपि वह अपने पति को पूजती थी, फिर भी उसे यह बड़ा विचित्र लगा कि दूसरे उसे गुरु के रूप में देखें। उनका एक प्रारंभिक शिष्य कहता है, ''हममें से कई लोगों को लगा कि वह उनकी राह में सबसे बड़ी बाधा, और सबसे बड़ी सीमा है। हम स्पष्ट तौर पर जान गए थे कि वह गुरु हैं, लेकिन विजी के लिए वह अभी भी पति ही थे और वह उन पर एकाधिकार मानती थी। हममें से कुछ को महसूस हुआ कि वह उनकी इस नई भूमिका में बहुत सहायक नहीं हो रही थी।''

भारती जैसी व्यावहारिक और समझदार महिला के लिए विजी का मिजाज समझ से परे था। वह अपने गुरु की पत्नी के साथ स्वयं को असहज पाती। ''एक बार मैंने विजी से पूछा, तुम बैंक में सांसारिक कार्य करके पैसा क्यों कमा रही हो? तुम यहाँ कोयंबतूर में रहकर अपने पति के महान् कार्य में हिस्सा क्यों नहीं लेती?'' जब विजी ने उत्तर दिया कि वह अपने पति के वित्तीय अनिश्चितता वाले जीवन के कारण अपनी नौकरी से त्यागपत्र नहीं दे पाएगी तो भारती निराश हो गई। ''मेरे लिए यह इतना स्पष्ट था कि इस आदमी के पास जो कुछ था वह अंतिम और सर्वोत्तम संभावना थी। लेकिन मुझे यह जानकर बड़ा दु:ख हुआ कि वह यह सब नहीं देख सकती थी। उसने कहा कि, इस मिशन को हाथ में लेने से पूर्व, अपने पति के इसके पहले के जीवन में वह साथ नहीं रही। लेकिन मैं हमेशा सोचती थी; निश्चित ही यह संपूर्ण अभियान उससे काफी विशाल है जो हममें से कोई कुछ जाना है। वह इसमें उत्साह के साथ हिस्सा क्यों नहीं लेती?''

दूसरी ओर सद्गुरु वर्षों पूर्व ही विजी की मानसिक गड़बड़ी के इस दौर को भाँप गए थे। पहले की एक मुलाकात में उन्होंने उसकी हथेली देखकर कहा था कि ग्यारह वर्ष बाद वह भावनात्मक परेशानियों के दौर से गुजरेगी। वह यह भी समझ गए थे कि यह नया परिदृश्य उनकी पत्नी के लिए सहज नहीं होगा। ''वह हमारे जीवन में आए बदलावों की तीव्रता से घबराई हुई थी। मैं उसे हमेशा चेतावनी देता रहता कि परिस्थितियाँ बदलेंगी, और जब ये बदलाव शुरू हों तो उसे अपना मानसिक संतुलन बनाए रखना होगा। लेकिन वह इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं हो सकी। हमारे संबंध की निकटता इतनी थी कि एक समय तो उसने यह सोचना शुरू कर दिया था 'यह मेरा आदमी है।' परिवर्तन की गति, यात्रा का स्तर, एक बच्चे को रखकर महीनों बेघरबार रहने की स्थिति से वह तंग आ चुकी थी। औरों के घर में गुरु की पत्नी के रूप में रहना सरल काम नहीं था; और मैं जानता था कि उसके स्वभाव से हटकर, मेरे साथ लोगों का बरताव हुआ करता था। फिर उसे यह भी मालूम था कि मेरा समय करीब आता जा रहा था, और मेरे साथ उसका समय बहुत कम रह गया था। यह अत्यधिक दबाव की स्थिति में थी। मैंने उसे कठिन परिस्थितियों में अपने साथ रखा। लेकिन आगे चलकर जब वह ध्यानलिंग के संस्कारीकरण के लिए आँखें बंद करके बैठी तो, उसमें सकारात्मक परिवर्तन आए।''

विजी में धीरे-धीरे बदलाव आया। 1996 के प्रारंभ तक उसने बंगलोर में अपनी बैंक की नौकरी से त्यागपत्र देकर कोयंबतूर आने का निर्णय ले लिया था। लगभग इसी समय, सद्गुरु ने अपने माता-पिता की संपत्ति में अपना हिस्सा छोड़ दिया। उनके निकट मित्रों को ये दोनों निर्णय अव्यावहारिक और असंसारिक लगे। लेकिन उनके दिमाग में कुछ और बातें चल रही थीं।

कोयंबतूर आने के बाद, अपने दैनिक अभ्यास में विजी की कटिबद्धता और बढ़ गई। वह सुमन के साथ ध्यान कक्ष में सुबह चार बजे सबसे पहले प्रवेश करती थी। वह ज्यादा शांत, अपने पति के प्रति कम व्यग्र रहने लगी और पत्नी, माँ और शिष्य के रूप में अपेक्षाकृत अधिक सहजतापूर्वक अपनी भूमिकाएँ निभाने लगी। ऐसा लगने लगा कि एक बचकानी पत्नी से वयस्क तक का संक्रमण हो चुका था। यह पूरी तरह अप्रत्याशित नहीं था। इसी दौरान उसके जीवन की सर्वाधिक अह्म घटनाओं में एक घटना सामने आने लगी। वह सद्गुरु के मिशन में अपनी भूमिका की केंद्रीयता महसूस करने लगी।

विजी और भारती का सहयोग ही था कि सद्गुरु ने ध्यानलिंग की स्थापना हेतु अपने जन्म के उद्देश्य का प्रस्ताव रखा। एक तरह से इन दोनों का चुनाव बड़ा स्पष्ट था। उनके (भारती और विजी) जीवन एक जन्म पूर्व कुडाप्पा के एक छोटे मंदिर में तय हो गए थे। सद्गुरु कहते हैं, ''उनके जीवन तय हो चुके थे। उनकी अपनी जिंदगियाँ नहीं थीं, कभी भी

नहीं थीं—बचपन में भी नहीं। यद्यपि वे कई बातों से जुड़े हुए थे, फिर भी उनका एक भाग कभी भी सम्मिलित नहीं था। उनका एक भाग पूरी तरह कहीं और था। और जब ध्यानलिंग की संभावना उनके समक्ष आई, वे समझ ही गए कि उन्हें पूरी तरह अपने जीवन से हटना पड़ेगा।''

तीन जन्मों की तैयारियों के बाद, उन्हें (सद्‌गुरु) जो किया जाना था, उसके प्रति संदेह नहीं था। उन्होंने बड़ी सहजता से बड़ी उन्नत यौगिक प्रक्रिया समझा दी, ''संपूर्ण प्रक्रिया में ध्यानलिंग की ऊर्जाओं को इतना सूक्ष्म बनाना था कि उसके परे कोई और रूप ही न हो। सूक्ष्मता के एक बिंदु से परे ऊर्जा का कोई भी रूप नहीं रह पाएगा इसलिए ऊर्जा को सूक्ष्मता के उस अंतिम बिंदु पर ले जाने का विचार था और एक निश्चित तरीके से इसके अंदर बंद करके रखना था ताकि यह सदा वहाँ रुकी रहे। इसे एक विशेष विधि से बंद किया जाता है। इस संस्कारीकरण की प्रक्रिया में किन्हीं मंत्रों या कर्मकांडों की जरूरत नहीं रहती। यह शुद्ध रूप में ऊर्जा प्रक्रिया है जिसमें लोगों को शामिल किया जाता है...। यह आपके जीवन को ऊर्जाओं में ढालने से संबंधित है। अभी यह एक व्यक्ति के रूप में स्थापित है। इसलिए इस प्रक्रिया में जुटे लोगों को विकसित करना, उन्हें वर्षों की साधना में लगाना, उन्हें गढ़ने योग्य बनाना, और इन ऊर्जाओं का प्रयोग करके ही हमने एक स्थिति तैयार की; जहाँ उस स्थान पर कुछ अपेक्षाकृत ज्यादा विशाल, आमंत्रित किया गया। इसी तरह से संस्कारीकरण किया गया।''

जून 1996 में सद्‌गुरु ने एक घनीभूत अभ्यास हेतु विजी और भारती को दीक्षा दी—एक ऐसी दीक्षा जो ऊर्जा स्तर पर दोनों के बीच की सीमाओं को धुँधला कर दे। ''समय! समय की ही तो बात थी। इसलिए मैंने एक ज्यादा प्रभावी कदम उठाने की बात सोची—तीन लोगों के साथ अभ्यास शुरू करने की। यह अत्यधिक जोखिम भरी प्रक्रिया थी, लेकिन दो लोगों को नियंत्रण में रखना चौदह लोगों को पूर्ण नियंत्रण में रखने की अपेक्षा सरल प्रक्रिया थी।''

उनकी ऊर्जाओं के त्रिकोण निर्मित करने का विचार था; विजी और भारती दो बिंदु होने थे और सद्‌गुरु शीर्षतम् बिंदु। संख्याओं की सुविधा के अतिरिक्त दोनों भिन्न-भिन्न और एक-दूसरे के पूरक मिजाजों का प्रतिनिधित्व करते थे, जहाँ एक ओर विजी अस्थिर और भावुक थी, वहीं भारती उदासीन और तार्किक थी। विजी को स्त्री ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करना था, भारती को पुरुष ऊर्जा का। उन दोनों की ऊर्जाओं को पूर्व जन्म में स्थापित करके, उन्हें उनके कारगर होने में कोई संदेह नहीं रह गया था। भारती की ऊर्जाएँ पहले ही एक विशेष तरीके से अध्यारोपित की जा चुकी थीं, इसलिए उसके पास दो पिंगलाएँ थीं, चूँकि उन्होंने प्रत्याशा कर रखी थी कि ध्यानलिंग के संस्कारीकरण में एक ऐसी महिला की आवश्यकता पड़ेगी जो आदमी की तरह कार्य कर सके।

''शुरू-शुरू में मैंने सोचा कि मैं इस अभ्यास की प्रक्रिया चौदह लोगों के साथ करूँगा—सात महिलाएँ, सात पुरुष। नब्बे दिन के संपूर्णता कार्यक्रम का यही उद्देश्य था। लोगों को बहुत घनीभूत क्रियाओं और अन्य प्रकार की साधनाओं का अभ्यास कराया गया। हमें कुछ कर्मों को करने, कराने की जल्दी थी, हमारे पास इन बातों को उनके जीवन में घटित होने तक इंतजार करने का समय नहीं था, इसलिए उनके लिए सबकुछ फास्ट फार्वर्ड विधि से रखा गया। ऐसे चौदह लोगों को निर्मित करने का प्रयास—जो ऐसी दशा में रहें कि शरीर के साथ उनके संबंध न्यूनतम हों, फिर भी वहाँ बैठने के लिए स्थिर रहें, और जिसकी जरूरत है वह करें—भारी प्रयास के बाद भी सफल न हो सका। ऐसे चौदह लोगों को तैयार करना, जो शरीर, मन और भावना से एक हों और जो तत्परता की प्रचुर दशाओं में हों, सरल काम नहीं था। मैंने शायद एक साल से अधिक समय तक इसका प्रयास किया। मैंने इन लोगों को पहचान तो लिया लेकिन ये कौन हैं, किसी को नहीं बतलाया। मैंने उनके साथ प्रक्रिया शुरू करने का प्रयास किया लेकिन महसूस किया कि इसमें कठिनाई आएगी। या तो उनके पास ऊर्जा होती लेकिन दिमाग नहीं होता। या दिमाग होता, यह प्रक्रिया इसमें भाग लेनेवाले सभी लोगों के लिए जोखिम भरी हो सकती थी।'' सद्‌गुरु स्वीकारते हैं, ''जब आप उस तरह की कठोरता से गुजरते हैं तो आपका ऊर्जा शरीर आपसे अलग हट सकता है। आप जानते हैं यदि मैं उनसे ध्यान करवाने के लिए बैठाता था, तो यह अवधि छह घंटे, सात घंटे या आठ घंटे की होती थी। बिना हिले-डुले वे रातभर बैठे रहते थे। हर दिन यह प्रक्रिया शाम

के छह या सात बजे शुरू होती और सुबह तीन या चार बजे तक अविराम चला करती। ऐसा हर कोई बिना आवश्यक साधना के नहीं सहन कर सकता। ये ऐसे लोग थे, जिन्होंने आरामतलब जिंदगी जी थी। उनकी पूर्व की साधना के कारण वे आगे चलते रहे, लेकिन फिर भी बड़ा जोखिम था।''

इस योजना के प्रति विजी की प्रारंभिक प्रतिक्रिया आशंका और गहरे प्रतिरोध की थी। लेकिन धीरे-धीरे वह सहमत हो गई। भारती कहती है, ''शायद तब तक वह यह देखने लगी थी कि यदि आप सद्गुरु के जीवन के भाग बनना चाहते हैं, तो आपको उनके कार्य का हिस्सा भी बनना पड़ेगा।'' विजी ने सद्गुरु को बतलाया कि बचपन में उसे तीन लोगों के त्रिकोण आकार में बैठकर किसी क्रियाकलाप में जुटे रहने के सपने बार-बार आते थे। सारी योजना और इसमें उसकी भूमिका पूर्व निर्धारित महसूस होती थी। इसका प्रतिरोध करना व्यर्थ जान पड़ता था।

भारती को इस संस्कारीकरण की क्रिया का हिस्सा बनने के लिए औपचारिक तौर पर कहा जाना स्पष्ट तौर पर याद नहीं है। उसे मात्र यही याद है कि एक पूर्णमासी की शाम को सद्गुरु और विजी के साथ ध्यान प्रक्रिया में शामिल होने के लिए कहा गया। वह कहती है, ''शुरू में अपनी भूमिका के प्रति आशंकित होकर मैं ध्यान में बैठ गई। लेकिन सद्गुरु की उपस्थिति में, एक बार मैंने आँख बंद कीं तो कोई भी आशंका या संदेह नहीं रह गया। कोई और शक्ति जो मेरी अपनी नहीं लगती, मुझ पर हावी हो जाती और मैं लगभग तुरंत ध्यान में चली जाती। वैसा ही या उससे भी कुछ अधिक उस पूर्णमासी को हुआ। एक अदम्य शक्ति और ऊर्जा का उफान-सा महसूस हुआ, एक ऐसी शक्ति जिसे मैं धारित नहीं कर सकी। मेरा पूरा शरीर ऐंठने-मुड़ने लगा, और शारीरिक संवेदनाओं पर मेरा नियंत्रण समाप्त हो गया। हालाँकि मैं बहुत सचेत थी। यह प्रक्रिया सफल रही और मैंने अपने अंदर स्वच्छता महसूस की और बहुत सी अनावश्यक आंतरिक उठापटक से छुटकारा मिल गया। शरीर इतना संवेदनशील हो गया और अंत-अंत में मैंने एक ऊर्जा रूप धारण कर लिया जिससे मैं परिचित नहीं थी। ऊर्जा का जो गहरा संपर्क मैंने अनुभव किया, उससे मेरा शरीर इतना अशक्त हो गया कि मुझे खड़े होने और चलने के लिए विजी की मदद की जरूरत पड़ी।''

जब सद्गुरु ने विजी और भारती को इस प्रक्रिया को सुचारू बनाने के लिए एक-दूसरे के साथ और समय बिताने के लिए कहा, तो किसी में भी उत्साह नहीं था। ''मेरे लिए तो विजी हमेशा सद्गुरु की पत्नी थी।'' स्पष्टवादी भारती कहती है। ''हमने सार्वजनिक तौर पर कभी बातें नहीं कीं। मैं भावुक लोगों के साथ कभी भी सहज नहीं रही हूँ।'' इन महिलाओं के मन में एक-दूसरे के खिलाफ कुछ भी नहीं था। लेकिन सद्गुरु के प्रति उनकी श्रद्धा के अलावा, दोनों में कोई समानता नहीं थी। शुरू में रुक-रुककर बातचीत हुई। ऐसे भी अवसर आए जब मतभेद हुए और मिजाज भड़क गए। क्योंकि जिस चीज का प्रस्ताव रखा जा रहा था, वस्तुत: वह अत्यधिक साधारण और साथ ही भारी चुनौतीपूर्ण थी, एक अस्तित्व की रचना को सुचारु बनाने के लिए निजी व्यक्तित्व का स्वैच्छिक त्याग। वस्तुत: व्यक्तिगत पहचान की हत्या ही करनी थी।

सद्गुरु कहते हैं, ''लोगों में प्रतिरोध की अनेकानेक गहरी परतें होती हैं।'' मैंने उनके कर्मों को अक्षरश: काटकर एक ओर रखकर दोनों को मिला दिया, अन्यथा किसी तरह ये लोग साथ नहीं आ पाते। वे मित्र बनने के इच्छुक हो रहे थे, इसके परे वे साथ नहीं रह पाते। क्या कोई ऐसा है, जिसके साथ आपकी विलय होकर एक होने की इच्छा है? ऐसा नहीं है। कुछ निश्चित क्षणों में आप ऐसा करने में यकीन रखते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। यह सरल नहीं था। व्यक्तित्व के स्वैच्छिक त्याग के बावजूद, तीन लोगों के बीच सीमाओं के मिटने का अर्थ व्यक्तिगत गोपनीयता को खोना और तमाम विचारों और यादों की विरासत का अचानक अधिग्रहण था। सद्गुरु कहते हैं, ''दो लोगों को मेरे केंद्र बिंदु पर त्रिकोण निर्माण करने के लिए तैयार करने के बाद, उनका मन, भावना और ऊर्जा से एक होना जरूरी था। अब यदि यह व्यक्ति (सद्गुरु) अपने बाएँ घुटने पर कुछ महसूस करता वे अन्य दोनों भी उनके बाएँ घुटने पर कुछ महसूस करते, चाहे वे जहाँ भी होते। जो तुम्हारा जीवन था और जो उनका जीवन था, वह सब तुम्हारे दिमाग में मिश्रित हो गया था। हम यह कह सकते हैं कि तुम, मैं व कोई और इसी समय एक त्रिभुज स्थिति में है। दस वर्ष पहले मेरे जीवन में क्या हुआ था,

यह तुम्हें नहीं मालूम लेकिन अचानक अब तुम जानते हो। और बीस साल पहले जो तुम्हारे जीवन में हुआ था, वह मुझे नहीं मालूम था, लेकिन अचानक अब मैं जानता हूँ। यह सबकुछ बहुत मिश्रित सा हो गया; हम नहीं जानते थे कौन सी स्मृति किसकी थी। दिमाग एक हो गया, भावनाएँ एक हो गईं। ऊर्जा शरीर भी एक हो गया...।''

जैसे-जैसे प्रक्रिया गहराई, भारती को अचानक विजी के जीवन की ऐसी बातें मालूम हो गईं जो उसे कभी नहीं बताई गईं थीं। विजी किसी समय विशेष पर जो कुछ सोच रही होती वह उसे ज्यादा स्पष्टता के साथ मालूम हो जाता। ''जब मैं कोयंबतूर में अपने घर में भी होती तो, मुझे प्राय: सही-सही यह मालूम रहता कि वह कब खा रही थी, या वह कब नहा रही थी। लेकिन चूँकि तब तक हम कुछ प्रक्रियाओं में बिलकुल जुट चुके थे, इसलिए वास्तव में मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।''

वह प्रक्रिया जिसमें सद्‌गुरु ने उन्हें संस्कारित किया था, वह उन्हीं के अनुसार काफी प्रभावी थी। ''यह दैवज्ञता को आमंत्रण के तौर पर ऊर्जा का त्रिकोण निर्मित करने जैसा था। एक बार यदि आप त्रिकोण तैयार कर लेते हैं, तो यह एक बवंडर की तरह हो जाता है। यह निश्चित ही एक भयंकर संभावना है, यह सबकुछ अपने भीतर सोख लेती है।''

उनके सामूहिक ऊर्जा के उफान में सीखने की प्रक्रिया में प्रतिभागियों ने जितना तय किया था उससे ज्यादा अपनी ओर खींच लिया। एक दिन भारती और विजी, ध्यान के दौरान अपने आस-पास कर्कश आवाजें सुनकर घबरा गईं। ''पूर्णिमा और अमावस्या, ध्यानलिंग के संस्कारीकरण से संबंधित महत्त्वपूर्ण दिन होते हैं,'' भारती बताती है। ''एक अमावस्या को जब मैं सद्‌गुरु और विजी के साथ पूजास्थल पर ध्यान कर रही थी, तो मुझे कानाफूसी सुनाई दी और अपने चारों ओर धक्का-मुक्की महसूस हुई। मैं यह सोचकर विश्वस्त नहीं थी कि यह मेरी तीव्र कल्पना होगी। लेकिन ये दबी हुई आवाजें जारी रहीं। कुछ दिनों के बाद जब ये कानाफूसी सी आवाजें बढ़ गईं तो मुझे अपने कंधे पर एक हाथ का आभास हुआ और दूसरा शरीर उसके शरीर को धकेल रहा था। मैंने अपनी आँखें खोलीं और साफ-साफ देखा कि आकृतियों के एक समूह का मेरी बगल में जमावड़ा लगा हुआ था।''

तब सद्‌गुरु ने बतलाया, ''ये 'शरीरहीन आकृतियाँ' हैं, जो अपनी मुक्ति की संभावना से (जो अचानक निर्मित हो गई थी) इस स्थान पर खिंची चली आई थीं। ये ऊँचाई तक उठे हुए लोग थे लेकिन उनमें कुछ कर्म की संरचनाएँ अब भी शेष थीं। कर्मों की संपूर्ण समाप्ति अभी नहीं हुई थी। तो एक बार यदि आप ऊर्जा के उस आयाम तक उठ जाते हैं तो आपको उनके कर्मों की सरंचनाएँ टेप रिकॉर्ड में बजती हुई-सी सुनाई देने लगती हैं। दोनों (विजी और भारती) अनेक लोगों को एक ही समय बातें करते हुए स्पष्ट रूप से सुन रही थीं। कोई भी मनुष्य भयभीत हो सकता था लेकिन उस स्थिति में यह बड़ा स्वाभाविक-सा लगा, क्योंकि दोनों ऊर्जा के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर तक उठ चुकी थीं। मुझे उनसे इतना अच्छा करने की कभी उम्मीद नहीं थी। वे पूर्ण चेतनावस्था में इस तरह के अनुभवों से गुजरीं। वे मतिभ्रम की शिकार नहीं थीं, वे सम्मोहित नहीं थीं, और वे किन्हीं नशीली वस्तुओं के प्रभाव में नहीं थीं। वे पूर्ण चेतना की अवस्था में थीं। सामान्य रूप से जितनी चेतना में कोई हो सकता है उससे अधिक।''

भारती के लिए, उनके चारों ओर शक्तिशाली ऊर्जा क्षेत्र का होना एक ऐसा वास्तविक अनुभव था कि कोई भी तार्किक दलील अब तुच्छ और असंबद्ध ही लगती। ''मैंने हमेशा ही तर्क से परे की बातों को हँसी में उड़ाया है। लेकिन धीरे-धीरे मैंने मन को एक ओर रखना शुरू कर दिया और स्वयं को संस्कारीकरण प्रक्रिया को समर्पित कर दिया।''
अपनी पूर्ण सतर्कता से भारती और विजी दोनों अपने तुच्छ मतभेदों से ऊपर उठकर एक अहम उपक्रम में हाथ बँटाने के लिए आतुर थीं। यह प्रक्रिया सद्‌गुरु की उम्मीद से कहीं ज्यादा त्वरित रूप में होनी शुरू हो गई। अक्तूबर तक, गति इस सीमा तक बढ़ चुकी थी कि उन्हें यकीन हो गया था कि तीन जन्मों का लक्ष्य अब दूर नहीं था। ''मैं नहीं जानता था कि प्रक्रिया कितनी तेज या कितनी धीमी होगी। लेकिन एक बार हमने उन्हें साथ रखा, तो सबकुछ मेरी प्रत्याशाओं से परे होना शुरू हो गया। वे अब दो विपरीत ध्रुवों की तरह हैं। एक व्यक्ति पूरी तरह तर्क था, तो दूसरा पूरी तरह प्रेम था...।
''जब ये दोनों गुण साथ मिले तो इससे सर्वगुण संपन्न एक खूबसूरत व्यक्तित्व का निर्माण हो गया; वे एक पूर्ण मनुष्य

की तरह हो गईं...। लेकिन तब यह काफी तीव्र हो गया। इन दोनों को उनके शरीरों में स्थिर रखना कठिन हो गया। इसलिए हमें कुछ समय के लिए प्रक्रिया रोकनी पड़ी...। एक बात यह थी कि इन दोनों को अपने परिवार और अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों की देख-रेख भी करनी होती थी जिसमें उन्हें पूरी तरह शामिल होना पड़ता था। दूसरी बात यह थी कि उन्हें ऊर्जा का उच्च स्तर बनाकर रखना होता था, और पूरी तरह से स्वयं को संस्कारीकरण की प्रक्रिया में समर्पित करना होता था। इसलिए दोनों को अपने भीतर आवश्यक परिपक्वता, संतुलन और स्वतंत्रता हासिल करने की जरूरत थी, ताकि वे इस कार्य को संभाल सकें।''

कठिनाइयाँ समाप्त नहीं हुईं लेकिन अब वे नियंत्रण में थीं। सद्‌गुरु कहते हैं, ''ये दोनों पूर्णत: विपरीत थीं। सामान्य रूप से दोनों साथ-साथ बैठ भी नहीं सकती थीं, क्योंकि दोनों की दो बिलकुल अलग दुनियाएँ थीं। अब आपको दोनों का एक में विलय करना है। एक तो शुद्‌ध तर्क था, दूसरा शुद्‌ध भावुकता। हालाँकि उन्होंने एक साथ संस्कारीकरण की प्रक्रिया में अच्छा साथ दिया, किंतु इसे सहज करने के लिए वे अपने रवैये से नहीं हटीं। मैंने इस बात का आनंद भी लिया, यह एक बड़ी चुनौती थी।''

भारती को विजी में स्पष्ट परिवर्तन तब नजर आया जब बड़े परिदृश्य में वह अपनी भूमिका महसूस करने लगी। वह कहती है कि ''विजी की आश्चर्यजनक बात यह थी कि यदि एक बार उसने सहयोग देने का निश्चय कर लिया तो वह पूरी तरह इन प्रक्रियाओं में जुट जाती। शायद वह उतनी ही एकांगी हो चुकी थी जितनी मैं थी। मुझे नहीं पता। शायद उसमें अब भी अपनी असुरक्षा की भावना रह गई थी। लेकिन जब हम साथ बैठते, तो हम दोनों पूरी तरह शामिल होते थे। कई मायनों में वह मुझसे ज्यादा समर्पित थी। मुझे यकीन है कि कुछ ऐसे भी क्षण होते थे जब वह मुझसे भयभीत रहती और घृणा करती। लेकिन वह मुझे पसंद भी करती थी। शायद विजी की तरह भावुक होने का फायदा यह है कि आप प्रेम को अपने दिल में उतार सकते हैं और तब शायद काम होने लगे।''

साथ ही, तार्किकता-पसंद भारती को भी आभास था कि उसके भीतर भी एक परिवर्तन आ रहा था। वह स्वीकारती है कि ''उस समय तक मुझमें विजी के प्रति सदा तिरस्कार भाव रहता था। ऐसा लगता था कि जैसे शादीशुदा होने के कारण मेरे गुरु ने स्वयं को किसी ऐसे के अधीन कर रखा था, जो बेतुका था। लेकिन इस प्रक्रिया से दृष्टिकोण में सूक्ष्म परिवर्तन हुआ, वह अपनी तरफ से नम्र हुई। हम दोनों भिन्न-भिन्न तरह से गुरु के प्रति अधिकार भाव रखती थीं। जब हम इस प्रक्रिया के लिए बैठ जाती थीं तो हमारे व्यक्तित्व बाधक नहीं रह जाते थे। सद्‌गुरु के माध्यम से हमारे बीच गहन स्तर के संबंध बढ़ने लग गए। एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव जाग गया। इसके अतिरिक्त ये प्रक्रियाएँ इतनी शक्तिशाली थीं कि विजी मुझे मनुष्य कम और एक विशेष तरह की ऊर्जा ज्यादा नजर आती थी। मैंने हमेशा स्वयं को सद्‌गुरु के लिए एक यंत्र की तरह परखा है। इसमें किसी तरह की व्यक्तिगत पसंदगी नहीं थी। मेरे अहं और झक्कीपन के बाद भी, प्रक्रिया के दौरान मैं स्वयं को खाली करके वहाँ बैठा करती और जो जरूरी होता, उन्हें करने देती। और विजी भी वैसा ही करती। मेरे मन में इसी कारण उसके प्रति एक सम्मान था।''

फिर भी, यह सब इतना ज्यादा सहज और संगतपूर्ण लगता कि यह सच्चा नहीं हो सकता था। सद्‌गुरु कहते हैं, ''मैं जानता था कि कोई न कोई त्रुटि होगी। मुझे मालूम था कि ध्यानलिंग की स्थापना जैसा विशाल कार्य कहीं, बिना किसी त्रुटि के संपन्न किया ही नहीं जा सकता था।'' यह प्रत्याशित बाधा सामाजिक बाधा थी। पूर्व जन्म में भी यहीं पर बातें बिगड़ गई थीं। सद्‌गुरु ने अपने शिष्यों को बाहरी दुनिया से संपर्क के विषय में सावधानी बरतने के निर्देश दे रखे थे। इस उपक्रम के लिए सामाजिक ख्याति आवश्यक थी। उन्हें आभास भी नहीं था कि इस समस्या के बीज घर के काफी करीब ही पड़े हुए थे।

लगभग दो दशक पहले, जब जग्गी कॉलेज के बिंदास छात्र थे, तब वह अपनी मोटरसाइकिल पर कर्नाटक की पहाड़ियों की सैर पर निकल पड़े। उनके पास खाने-पीने की चीजें समाप्त हो गईं, लेकिन यह उनके लिए कोई नई बात नहीं थी। वह पहले भी ऐसी स्थितियों से गुजर चुके थे। लेकिन लगभग पाँच दिनों तक भूखा मरने जैसी स्थिति के बाद,

उन्होंने अपने लिए भोजन की व्यवस्था करने का निश्चय किया। इसी समय उनकी नजर एक पहाड़ी पर बनी आश्रम जैसी संरचना पर पड़ी। उन्होंने तुरंत अपनी मोटरसाइकिल उसी दिशा में दौड़ा दी। जब वह उस भवन के नजदीक पहुँचे तो, मोटरसाइकिल से उतरने के बदले, उन्होंने करीब पंद्रह सीढ़ियाँ ऊपर तक इसे चढ़ा दिया। यह अशोभन प्रवेश था। इतने दिनों तक वीराने में रहने के बाद उनके मैले-कुचैले, बिना धुले हुए कपड़े, सिकुड़ व धूल-धूसरित हो गए थे। जग्गी कोई विशेष चित्ताकर्षक नहीं लग रहे थे।

आश्रम के गुरु, स्वामी निर्मलानंद (जिन्हें उन क्षेत्रों में संत की तरह आदर दिया जाता था।) सीढ़ियों के ऊपरी हिस्से में खड़े थे। अपनी तात्कालिक स्थिति में जग्गी को विशेष सम्मान की अपेक्षा नहीं थी। लेकिन उन्हें तब बड़ा ताज्जुब हुआ जब स्वामीजी मुसकराकर उन तक चलकर आए और जग्गी तब भौचक्के रह गए जब स्वामीजी ने उनके पैर छुए। यह देखकर जग्गी के मुँह से एक शब्द न निकला। वे इसके प्रत्युत्तर में किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रह गए। उस समय उनके भीतर कुछ मरोड़ सी महसूस हुई। उन्हें पता ही नहीं था कि हो क्या रहा था। लेकिन वह जान गए कि किसी अबोध्य कारण से उनका स्वागत इस संत पुरुष द्वारा किया गया था, जिससे वह अभिभूत हो उठे।

वह स्मरण करते हुए कहते हैं, ''जब तक बहुत जरूरी न होता, मैं मोटर साइकिल से उतरता ही न था। इसलिए मैं सीढ़ियों पर ऊपर की ओर गाड़ी चलाता उनके निवास के पास पहुँच गया। मैं सिर से पैर तक कीचड़ में लथपथ। यह आदमी लगभग साठ साल की उम्र का था, और मैं लगभग बीस साल का। वह महान् ज्ञानी संत माने जाते थे। मुझे साधु-संतों में कोई रुचि न थी। मुझे तो जमकर भूख लगी थी, और भोजन के अलावा मैं और क्या चाहता भला। कोई और जगह ही न थी, जहाँ मैं चला जाता। आसपास कोई रेस्टोरेंट नहीं था। मैंने कहा, 'मुझे बहुत भूख लगी है, मुझे कुछ खाने को चाहिए।' मेरी जेब में कुछ पैसे थे, मैं भुगतान कर सकता था। वह मेरी ओर देखकर हँस पड़े, और उनकी आँखों से आँसू झलक आए। और अगले ही क्षण वह मेरे पैरों पर गिर पड़े। यह देखकर मैं हिल गया। मैं अपने जीवन में किसी के आगे नहीं झुका था। अब तो मैं किसी चीज के आगे झुक सकता हूँ, एक चींटी के आगे भी। लेकिन उस समय मैं किसी के आगे नहीं झुकता था, और इस आदमी द्वारा मेरे कीचड़ भरे जूतों को छूने से, मैं थोड़ा परेशान हो गया। लेकिन मैंने झट से इस बात को झाड़ दिया और कहा, 'ठीक है, मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को है?' उन्होंने कहा, 'आइए' और मुझे बैठाया। वह मेरे जूते के तसमे खोलना चाहते थे। मैंने कहा, 'ऐसा मत करो।' वे गंदे थे। उन्होंने मेरे लिए रोटियाँ सेकीं, बहुत अच्छी रोटी तो नहीं थी, लेकिन कुछ और था भी तो नहीं उनके पास। मैंने सारी रोटियाँ खा लीं। वह वहाँ बैठे हुए एक छोटे बच्चे की तरह मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने इन सब बातों को नजरअंदाज किया और वहाँ से चला आया।''

स्वामी निर्मलानंद मौन संत थे। उन्होंने कई वर्ष मौन रहकर बिताए थे और लिखकर विचारों का आदान-प्रदान करते थे। इस मुलाकात के बाद, जग्गी कई बार उनके पास गए, हमेशा अपने साथ फलों की भेंट ले जाया करते। चूँकि उन्होंने स्वयं को एक आध्यात्मिक साधक के रूप में नहीं देखा था, इसलिए उन्होंने कभी भी उनसे कोई दिशा निर्देश नहीं लिया। लेकिन उनके संबंध बढ़ते गए और दोनों ने काफी मधुर समय साथ बिताया।

''मुझे याद है कभी-कभी वह मुझसे बात करते थे। लेकिन अधिकतर समय वह कागज पर लिखकर मुझसे वार्त्तालाप करते थे। वह हमेशा खुश रहते थे और मैं भी उन्हें खुश रखता था। मैंने उन्हें यह पूछकर कभी परेशान नहीं किया कि वह निर्वाण प्राप्त थे या नहीं। इस बात से मेरा कोई सरोकार न था। मैं यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं था कि मैं किसी आध्यात्मिक व्यक्ति के पास जा रहा था क्योंकि आध्यात्मिकता और मैं दोनों साथ नहीं रह सकते थे। लेकिन यह शख्स मुझे अच्छा लगने लगा। यह एक तरह का मौन प्रेम संबंध था। वह एक अद्भुत इनसान थे। वह सज्जनतापूर्वक रहते थे। यदि उन्हें अपनी दैनिक पूजा के लिए फूलों की जरूरत पड़ती तो फूलों के गिरने की प्रतीक्षा किया करते थे। वह पौधों से फूल कभी नहीं तोड़ते थे। केवल गिरे हुए फल ही उठाकर खाया करते थे। पेड़ों से फल कभी नहीं तोड़ते थे। इस तरह के व्यक्ति थे वह।''

सद्‌गुरु का आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होने के बाद, वह इतने व्यस्त हो गए कि वह स्वामी जी से संबंध कायम नहीं रख सके। लेकिन अपने विवाह के शीघ्र बाद वह विजी को स्वामी जी के बी.आर. हिल आश्रम ले गए। स्वामी जी ने मौन रहते हुए उनका स्वागत किया। शुरू में वह सद्‌गुरु को पहचान नहीं सके; क्योंकि उनकी वेशभूषा पिछले दशक के दौरान काफी कुछ बदल चुकी थी। ''मेरी दाढ़ी अब पूरी बढ़ी हुई थी। विजी मेरे साथ थी। मैं अब अपेक्षाकृत सज्जन प्रकृति का हो गया था। जोशीले स्वभाव के युवक की जगह अब मैं थोड़ा नियंत्रित-सा हो गया था।'' सद्‌गुरु ने रहस्यमय ढंग से कहा।

लेकिन जब सद्‌गुरु ने स्वयं को जग्गी कहकर परिचित कराया, तो स्वामीजी की आँखें अचानक चमक उठीं। ''मोटर साइकिल मैन।'' उन्होंने कहा। सद्‌गुरु ने हाँ में सिर हिलाया। तत्पश्चात् स्वामी ने कागज के टुकड़े पर कुछ लिखा और उन्हें दे दिया। इसमें लिखा था, 'मैंने तुम्हारी मुसकराहट पहचान ली।' (स्वामीजी, मुस्कराहट को किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके आध्यात्मिक विकास का महत्त्वपूर्ण पैमाना मानते थे।) सद्‌गुरु कहते हैं, ''उन्होंने हमारा स्वागत किया और बैठाया। इसके बाद, जब कभी भी मैं उनके पास गया, पहले भी जब मैं गया, तो आप जानते हैं, वह मुझे एक टिन शहद दिया करते थे। यही एक ऐसी चीज थी, जो वह मेरे लिए उपहार स्वरूप रखे रहते थे। वह हमेशा मुझे दो या तीन लिटर शहद घर ले जाने के लिए देते थे। हमारी वार्त्ता लंबी चला करती थी— वह अपने प्रश्न लिख देते थे और मैं बोलकर पूछा करता। प्रतिदिन वह कम-से-कम अस्सी से सौ के बीच पत्र लिखते थे। इसी तरह वह लोगों के संपर्क में रहते थे। उस मुलाकात के बाद उन्होंने मुझे पत्र लिखना शुरू कर दिया। ज्यादातर समय मैं घूमता रहता था इसलिए प्राय: मैं उनके पत्रों का बहुत कम जवाब दिया करता था। मेरी अपनी मेज नहीं थी—न घर, चूल्हा, कुछ भी नहीं। उस समय मैं यात्रा बहुत ज्यादा कर रहा था। एक बार यों ही मैंने उन्हें जवाब लिखा। वह कभी भी यात्रा नहीं करते थे। उन्होंने लगभग बीस वर्षों से यात्रा नहीं की थी। वह उस दो एकड़ क्षेत्रवाले आश्रम से बाहर कदम नहीं रखते थे। वह उसी सीमा में ही रहा करते थे।

''उनका आश्रम एक खड़ी चट्टान के ऊपर बना हुआ था। कभी-कभी वह किनारे जाकर पर्वतों व घाटियों को निहारते और वापस आ जाते! बस।

''यह मुलाकात कई तरह से महत्त्वपूर्ण थी। यह विजी की एक ऐसे व्यक्ति से मुलाकात थी जो उसके जीवन के लक्ष्यों को इस तरह बदल देता था; जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। वह एक ही बार में उन्हें पसंद करने लगी और जब कभी हम मैसूर में होते तो उनसे मिलने के लिए उत्सुक रहा करती थी। यह मुलाकात उनके वहाँ से लौटते समय रास्ते में हुई एक खतरनाक घटना के कारण भी एक यादगार है। जब हम जंगल से होकर मोटरसाइकिल पर तेजी से घर की ओर लौट रहे थे, तभी अचानक एक जंगली हाथी के करीब पहुँच गए। डरकर विजी मुझसे चिपक गई। हमारे और उस जानवर के बीच तीन फुट से भी कम दूरी रह गई थी। हाथी कुछ पेड़ों की ओर मुँह करके खड़ा हुआ था, और अभी तक उसने हमें नहीं देखा था। ठीक पीछे एक छोटा सा ढालदार रास्ता था। हाथी मानव उपस्थिति को भाँपकर घूमा। यह, अभी नहीं तो कभी नहीं वाली स्थिति थी। मैंने अपनी बाइक हाथी के ठीक बगल से सनसनाते हुए पहाड़ी की ढाल पर उतार दी।

''हाथी ने तेज चिंघाड़ लगाई और हमारी ही दिशा में बढ़ता-सा लगा। विजी को इस तरह मुड़ने की उम्मीद नहीं थी, वह मेरे दुस्साहस पर हैरान रह गई। उसे बहुत गुस्सा आया और वह रो पड़ी। और मुझे पीटते हुए कह रही थी, 'पागल हो गए हो क्या, ऐसा तुमने क्यों किया?' वह इतनी डर गई थी कि उसने अपनी पैंट में पेशाब तक कर दिया था!'' हँसते हुए सद्‌गुरु ने कहा। उन्होंने उस अवसर पर भी इस बात को हँसकर उड़ा दिया था।

जून 1996 में सद्‌गुरु और विजी अपनी बेटी के साथ एक बार फिर स्वामी निर्मलानंद से मिलने गए। अब वह ज्यादा बूढ़े हो गए थे और कुछ थके हुए व सुस्त लग रहे थे। वह अपने मौन की अवस्था से बाहर आ गए थे। उन्होंने सद्‌गुरु को बताया कि वह एक योगी की तरह जिए थे और योगी की तरह ही मरना चाहते थे। अपंग की तरह जीते रहने की

अनिच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने बताया कि अगले ग्रीष्म तक वह अपना जर्जर होता शरीर त्यागने के इच्छुक थे। उन्होंने पहले ही अपने लिए एक छोटी सी समाधि बना रखी थी। मुलाकात के दौरान, उन्होंने सद्गुरु से महासमाधि दशा के विषय में कई प्रश्न पूछे। उनकी प्रमुख अभिरुचि यह थी कि बिना कष्ट या दु:ख-दर्द के शरीर कैसे त्यागा जाए। सदगुरु कहते हैं, ''उन्होंने बताया कि वह तिहत्तर वर्ष के हो गए थे और एक योगी की तरह मरना चाहते थे, न कि एक रोगी या अपंग की तरह।'' वह जानना चाहते थे कि क्या ऐसा हो सकता है, वस्तुत: होंगे क्या इससे जुड़े हर तरह के विवरण। पहली बार मैंने इस विषय पर खुलकर बात की, और उन्हें एक पूर्णत: अलग आयाम के विषय में बतलाया— वह क्या है जो किसी व्यक्ति को जाने (शरीर छोड़ने) से रोकता है, और इन बाधाओं से कैसे निबटा जाए। मैं कुछ विवरणों पर गया।

जब सद्गुरु स्वामीजी की शंकाओं का समाधन कर रहे थे, विजी बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रही थी। वह इस अत्यधिक ऊँचे दर्जे के गुप्त वार्त्तालाप की प्रयोजनहीन गवाह बन गई थी—एक ऐसा वार्त्तालाप जो किसी नए शिष्य के सामने कभी नहीं किया गया था। सद्गुरु को स्मरण आता है, ''यह सबकुछ सुनते हुए वह रोने लगी। वह रोती गई, और रोना बंद ही न किया। मैं उसे नजरअंदाज करके, लगातार बोलता गया, क्योंकि विजी किसी भी कारण से रो सकती थी—खुशी, या कुछ और भी। जो मैं कह रहा था, वह उससे इतनी अभिभूत हो गई कि वह रुकी ही नहीं। निर्मलानंद भी बीच-बीच में रो पड़ते थे। और वह लगातार मुझसे प्रश्न पूछते जाते। उन बातों के विषय में, जिन्हें मैंने कहीं भी नहीं बोला, हम बहुत विस्तार में चर्चा करते रहे।''

वापसी की यात्रा पर विजी असामान्य तौर पर शांत थी। उसका मन बहलाने के लिए सद्गुरु ने कार रोक दी और उसे पिछली यात्रा के दौरान हाथी से बाल-बाल बचने की याद दिलाई। लेकिन उसके चेहरे पर मुसकान नहीं आई। ''मैं उन बातों से उसका ध्यान हटाकर उसका मन हल्का करना चाहता था लेकिन वह एक अलग तरह के मिजाज में थी। मैं रास्ते पर खड़ा था। मेरे सामने यह अविश्वसनीय दृश्य था। मेरी बेटी पास ही खेल रही थी। अचानक विजी मेरे पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, 'मैं भी उन्हीं की तरह जाना (मरना) चाहती हूँ।'

''मैंने कहा, 'तुम जाना (मरना) चाहती हो? पहाड़ी से कूद जाओ; तुम्हारी ऐसी क्या समस्या है?' मैं मजाक में सबकुछ उड़ा देना चाहता था। उसने कहा, 'नहीं, नहीं। मैं उन्हीं की तरह मरना चाहती हूँ—सचेत रहते हुए। मैं उसी तरह जाना चाहती हूँ।'

''मैंने कहा, 'अच्छा, तो कब जा रही हैं आप? यह खुशी का समाचार मुझे भी तो बताओ।' मैं अभी भी उससे मजाक कर रहा था। लेकिन वह अति भावुक थी और उसकी आँखों से आँसू झर रहे थे। उसने कहा, 'नहीं, मैं सचमुच गंभीर हूँ। आपको मेरी मदद करनी होगी।''

तभी ऐसा हुआ कि खतरे की घंटी बजने लगी। ध्यानलिंग के संस्कारीकरण में विजी की केंद्रीय भूमिका थी। महासमाधि की इच्छा इससे ज्यादा असामयिक नहीं हो सकती थी। सद्गुरु जानते थे कि इसे (महासमाधि की इच्छा) नियंत्रण से बाहर जाने नहीं दिया जा सकता लेकिन यह तो शुरुआत ही थी। तदुपरांत विजी महासमाधि के विषय पर अपने पति से प्राय: चर्चा करती रहती थी। वह देखते कि वह पूरी तरह गंभीर रहा करती थी और ध्यान भटकाने से इनकार कर देती थी। यह बाध्यकारी था, लेकिन सद्गुरु जानते थे कि वह अब भी आध्यात्मिक नौसिखिया थी। उसमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की न तो परिपक्वता थी, न ही तीव्रता। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें साधना की आवश्यकता थी और विजी ने कभी भी सतत अभ्यास के लिए अपना रूझान व्यक्त नहीं किया था। सौभाग्य से वह अभी भी अपरिपक्व और अतत्पर थी।

किंतु जिस चीज की उन्होंने सौदेबाजी नहीं की थी, वह था उसका निश्चय क्योंकि उस दिन के बाद, विजी में बदलाव लक्षित हुआ था। उसके चेहरे पर नई चमक थी, उसका जीवन एक नए उद्देश्य के भाव से मिश्रित था। ''उस दिन से वह पूरी तरह एक अलग व्यक्ति थी। जो लोग उसे जानते थे, वे यही जानते थे कि वह कितनी हलके मिजाज की थी,

ज्यादातर समय वह एक छह साल की बच्ची की तरह हरकतें करती रहती थी। लेकिन अचानक पिछले आठ-नौ महीने में वह पूरी तरह केंद्रित हो गई। यह सब उसी दिन से शुरू हुआ। मैंने कहा, 'ठीक है, तो क्या तुम कुछ साधना करने की इच्छुक हो? देखते हैं, तुम कितनी गंभीरतापूर्वक यह करती हो।' मैंने कभी नहीं सोचा था कि उसमें हमेशा के लिए इसमें डट जाने की दृढ़ता होगी। इसमें चौबीस घंटे का मनोयोग और प्रतिबद्धता आवश्यक है।''

सद्गुरु पहले ही ध्यानलिंग के लिए वास्तु योजना में इतने व्यस्त थे कि किसी तरह के चेतावनी संकेतों पर ध्यान नहीं दे सकते थे। विजी का निश्चय भाव बढ़ने पर, वह इस परिवर्तन के प्रति ऊपरी तौर पर ही सजग हुए। किसी भी स्थिति में, उन्हें विश्वास था कि वह ऐसा चमत्कार अपने से नहीं कर सकती। ''मैं सोचता था कि यदि कोई ऐसा था जो यह कर सकता था तो वह थी भारती, क्योंकि उसमें उसके प्रति कुछ उदासीनता थी। लेकिन विजी हमेशा मुझसे चिपकी रहती, मैंने कभी नहीं सोचा कि वह इसके लिए सक्षम थी।'' उन्होंने अपने आसपास के कुछ लोगों से इसकी चर्चा भी की, लेकिन उन्होंने इसे हँसी में उड़ा दिया। यदि एक भी कोई महासमाधि के लिए असक्षम लगता था, तो वह थी विजी। यह (महासमाधि) सर्वाधिक एक दृष्टिकोणीय आध्यात्मिक साधक के लिए रूखा और अप्राप्य लक्ष्य महसूस होता था। अपनी नई-नई हासिल की गई परिपक्वता के साथ भी विजी इतनी सनकी और त्रुटिपूर्ण लगती थी कि वह एक अभ्यर्थी के रूप में आर्हता भी प्राप्त नहीं कर सकती थी।

वह कहते हैं, ''मैंने उसे कुछ बिलकुल साधारण साधना करने के लिए दिया, लेकिन उसने इसमें काफी एकाग्रता से प्रवेश किया। कुछ ही महीनों में मैंने देखा वह सचमुच काफी आगे जा रही थी। वह अगले छह या आठ महीनों में जाने (मरने) के विषय में बड़े विश्वास से बातें करने लगी। तभी मैंने उसे निरुत्साहित करना शुरू कर दिया, उसकी रफ्तार थोड़ी धीमी कर दी। मैंने उसे याद दिलाया कि आखिर इन बारह महीनों तक सड़क पर रहने के लिए एक स्थान था। पहली बार उसके पास कोई जगह थी जिसे वह अपना कह सकती थी। वह भोजन तैयार करना और घर सँभालना जानती थी। मैं जानता था कि ये बातें उसके लिए बड़ी अहमियत रखती थीं।

''हमारी बेटी सात वर्ष की होने जा रही थी। और विजी स्वयं भी खिलती जा रही थी। उसके भीतर की अपरिपक्वता, समस्याओं और संघर्षों के लंबे चरण के बाद उसके लिए परिस्थितियाँ बदलती जा रही थीं। इसलिए मैंने कहा, अब क्यों? जल्दी क्या है?

''उसने कहा, 'अभी तो अंदर से मैं पूरी तरह खूबसूरत महसूस कर रही हूँ और बाहर से हर कोई मुझे अद्भुत नजर आ रहा है। मुझे नहीं मालूम, मैं कितने समय तक यह कायम रख पाऊँगी। जीवनभर तो मैं उलझन में रही हूँ; मैं उठा-पटक में रही, भावनात्मक उतार-चढ़ाव आए। अब मैं उस मुकाम पर हूँ, जहाँ मैं रहना चाहती हूँ। यदि कल मेरे बच्चे को या तुम्हें कुछ हो गया, तो मैं पुन: उसी दशा में लौट जाऊँगी। लेकिन अभी मुझे किसी से कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं ऐसी स्थिति में हूँ। यह मेरे जाने का समय है।'

''मैंने इस पर कोई बहस नहीं की, क्योंकि मैं जानता था कि यह सच था। मैंने कहा, 'कुछ साल इंतजार करो, इसका आनंद लो, फिर जाओ।'

''लेकिन उसने कहा, 'अभी तुम नहीं चाहते कि मैं जाऊँ। लेकिन कुछ वर्षों बाद शायद तुम चाहोगे।'''

इसे स्मरण करके सद्गुरु हँस पड़ते हैं। ''ऐसे ज्ञान के विरुद्ध मेरे पास कोई तर्क नहीं था! इसलिए एक पति के रूप में मैंने उसे निरुत्साहित करने का प्रयास किया। लेकिन गुरु के रूप में मैं उसे रोक नहीं सका।''

संस्कारीकरण के अभ्यासों ने विजी के निश्चय को और बल देने में अपनी भूमिका निभायी और उसके सपने उसकी पहुँच तक आ गए। सद्गुरु कहते हैं, ''ध्यानलिंग में सम्मिलित लोगों से मैं चाहता था कि वे समाधि की कुछ अवस्थाओं में रहें। समाधि का एक पहलू यह है कि आपका शरीर के साथ संबंध बिलकुल न्यूनतम हो जाए। इसे एकल बिंदु संपर्क तक लाया जा सकता है। हम इसे निर्विकल्प समाधि के नाम से जानते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आपके शरीर के साथ आपका संबंध न्यूनतम है, एक धागे की तरह। यदि आप वह धागा भी तोड़ देते हैं तो यह महासमाधि हो जाती है।

लेकिन एक धागे को पकड़े हुए जीवित बने रहना अच्छा है क्योंकि ऐसी स्थिति में आप लगभग शरीर से मुक्त और जीवित रहते हैं। तुम्हें कुछ चीजें करनी होती हैं, तुम्हें अब भी थोड़ा भोजन करना होता है, संडास जाना होता है। लेकिन अन्य हर तरीके से आप शारीरिक प्रक्रियाओं से मुक्त रहते हैं। जीने का यह अच्छा तरीका है। सामान्यत: जब लोग इस स्थिति में होते हैं तो हम उन्हें अक्रियता और सुरक्षा के निश्चित स्तरों पर रखते हैं। हम उन्हें संरक्षित वातावरण में रखते हैं। हम उन्हें बाहरी स्थितियों के संपर्क में नहीं आने देते, क्योंकि हलकी बाधा आने पर वे अपना शरीर हमेशा के लिए छोड़ सकते हैं। लेकिन जब हम ध्यानलिंग का संस्कारीकरण कर रहे थे, तब मैं जो लोग समाधि दशा में थे, उन्हें भी शारीरिक रूप से सक्रिय स्थिति में चाहता था। यह जोखिमपूर्ण था। लेकिन इस प्रक्रिया में यह जरूरी था। इसलिए मैं उन्हें सक्रिय रहना सिखा रहा था। इससे विजी को एक निश्चित क्षमता विकसित करने का बड़ा अवसर मिला। वह पूरी तरह इसमें जुट गई।''

अक्तूबर 1996 में, सद्‍गुरु जनवरी के लिए अपने कार्यक्रम तय कर रहे थे। उसी समय उन्हें अचानक अंतर्ज्ञान से आभास हुआ कि प्रस्तावित कक्षाएँ संभव नहीं हो सकेंगी। उन्होंने उन्हें रद्द करने का निर्णय ले लिया। ''मैंने राजा से कहा, 'मुझे लगता है कि जनवरी के अंतिम सप्ताह में कार्यक्रम नहीं होंगे। मुझे यह पसंद नहीं है। इन्हें बढ़ाकर फरवरी के पहले सप्ताह में कर दो।' राजा ने मुझसे पूछा कि कहीं मेरी कोई व्यक्तिगत व्यस्तता तो नहीं थी। मैंने कहा, 'नहीं, मुझे ऐसा लगता है कि उस समय में निर्धारित कार्यक्रमों को स्थगित करना पड़ सकता है।' उसके आस-पास के अन्य लोगों ने इसका कारण पूछा, लेकिन वह कोई जवाब न दे सका।''

नवंबर के अंत तक, लिंगम की संरचना आश्रम में आ चुकी थी। सद्‍गुरु ने संबलपुर (उड़ीसा) की यात्रा की। उन्हें वहाँ मुक्तेश्वर मंदिर का नवीकरण संस्कार करना था। वह विजी को अपने साथ ले गए। यह बड़ी विचित्र यात्रा सिद्‍ध हुई। एक वरिष्ठ शिष्य को स्मरण आता है कि मंदिर जाने के बाद, सद्‍गुरु आसपास के जंगलों से बड़ी तेज गति से चलकर गुजरने लगे। रात का समय था और कुछ लोगों ने उनका अनुसरण किया। जब वह एक छोटे-से जलाशय (जिसमें महानदी का जल आता है) के निकट पहुँचे, ठिठककर रुक गए। उन्होंने औरों को रुकने का संकेत दिया और स्वयं चलते गए। वह जलाशय के चारों ओर घूमे और बेतुकेपन के साथ एक पुराने वृक्ष के सामने रुक गए। बहुत देर तक वह इसे घूरते रहे, उनकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। तभी अचानक एक झटके से उन्होंने अपने गले से माला निकाली और पेड़ पर डाल दी। इस कृत्य से वहाँ खड़े लोग भी भावुक हो उठे। कुछ रोने लगे, दूसरे जमीन पर गिरकर लोटने लगे, मानो उन पर कोई प्रेत इत्यादि का साया हो।

जब वह कोयंबतूर लौटे तो सद्‍गुरु ने प्रकट किया कि वस्तुत: वह एक ऐसे मंदिर में आए थे, जिसे वह किसी जन्म में बहुत करीब से जानते थे।

बिल्वा अपनी जाति के एक बड़े समूह को संबलपुर लाने का ही प्रयास कर रहा था, और प्राय: अपने परिवार के साथ इसी पेड़ के नीचे शिविर लगाता था।

बड़े आश्चर्य की बात है कि यह वृक्ष इतनी शताब्दियों से कैसे बरकरार है। किसी ने इसे काटकर गिराया नहीं। पुराना वृक्ष खत्म हो गया था और उसकी छाल मात्र ही रह गई थी। इसकी संतति पुराने वृक्ष की खोल में ही उग गई थी, तो एक तरह से यह वही वृक्ष था।

दिसंबर 1996 में, सद्‍गुरु विजी और आश्रम के अनेक रहवासियों को स्वामी निर्मलानंद के आश्रम ले गए। वह (स्वामी) शारीरिक रूप से कमजोर लगते थे और यह स्पष्ट था कि उनकी महासमाधि का दिन दूर नहीं था। वह स्वयं में शांत व्यक्ति थे, और उनकी उपस्थिति उनके आगंतुकों को पवित्र लगी। कुछ की आँखों में भावुकतावश आँसू आ गए। स्वामी ने उन्हें सांत्वना दी। उन्होंने धीरे-से कहा, ''अगली बार जब तुम यहाँ आओ तो संभव है, मैं ना मिलूँ। लेकिन तुम मेरी उपस्थिति हर जगह महसूस कर सकोगे।'' उन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि उनके साथ एक गुरु है जो उन्हें सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों तक दिशा निर्देशन करने में सक्षम है। ''उनका विश्वास करो और अपनी साधना के प्रति सच्चे

रहो। बाकी सबकुछ वह स्वयं ही कर लेंगे।'' उन्होंने कहा।

स्वामी के लिए अंतिम कुछ महीने कठिनाई भरे रहे। उनकी महासमाधि की घोषणा से विवाद उत्पन्न हो गया था। कर्नाटक के रैशनेलिस्ट्स समूहों ने इसे आत्महत्या का प्रयास बतलाया और उनके इस कदम के खिलाफ जोर-शोर से विरोध की अगुआई की। आश्रम में पुलिस जाँच भी हुई। सद्‍गुरु कहते हैं, ''जब हम वहाँ पहुँचे, उस समय आश्रम में दो पुलिस कांस्टेबल थे। स्वामी मुझे पकड़कर रोने लगे। उन्होंने कहा, 'जरा देखो, मैंने इस आश्रम में जीवनभर एक फूल भी नहीं तोड़ा है, लेकिन यहाँ मेरे आश्रम में पुलिस लगा दी गई है।'

''मैंने कहा, 'आप क्यों परेशान होते हैं? यहाँ बैठे ये दो आदमी, आपका क्या बिगाड़ेंगे?' उन्होंने कहा, 'लेकिन वे सोचते हैं कि मैं आत्महत्या करने जा रहा हूँ।'

''मैंने कहा, 'आप परेशान न हों, आप तो जानते हैं, जो आपको करना है।' और जो किए जाने की आवश्यकता थी, मैं उसके विवरणों पर चला गया। लेकिन वह परेशान थे, क्योंकि पुलिस हर समय उन पर नजर रखे हुए थी, ताकि वह अपना जीवन न समाप्त कर लें।''

स्वामी ने अंतत: एक बयान जारी किया जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि एक ऐसा व्यक्ति जिसने दीर्घकालिक व आध्यात्मिक रूप से अपना फलदायी जीवन जी लिया, उसके लिए शरीर छोड़ने का निर्णय इतना स्वाभाविक है जितना एक पुराने पत्ते का पेड़ से गिर जाना। उन्होंने कहा कि एक आत्मज्ञान प्राप्त किए हुए व्यक्ति के लिए शरीर एक असहनीय बोझ बन जाता है, दूसरे इस बात को नहीं जान सकते कि ऐसे व्यक्ति के लिए अपने शरीर को धारण किए रहना कितना कष्टदायी है। उन्होंने कहा कि इस अहिंसात्मक और सचेत स्थिति में शरीर त्यागने के देश की आध्यात्मिक विरासत में कई सम्मानजनक उदाहरण हैं। उन्होंने आंदोलनकारियों से लोगों के दिमाग में कोई अनावश्यक उलझन निर्मित न करने के लिए कहा और अपनी अंतिम यात्रा को शांतिपूर्वक संपन्न होने देने के लिए कहा। तिहत्तर वर्षीय स्वामी ने अंतत: 10 जनवरी, 1997 को अपने शरीर का त्याग किया। सद्‍गुरु कहते हैं, ''जनवरी की एक शुभ दोपहर के समय वह आए और अपनी समाधि में बैठे। बतौर साक्षी लगभग पचपन लोगों की उपस्थिति में उन्होंने शरीर छोड़ दिया। पुलिस उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकी। रैशनलिस्ट्स लोगों ने तर्क दिया, उन्होंने कोई जहर खा लिया होगा, उनका पोस्टमार्टम किया जाना चाहिए। लेकिन जहर खाया हुआ व्यक्ति कैसे समाधि तक जाएगा, पालथी मोड़कर बैठेगा और मुसकराता हुआ इस तरह चला जाएगा।''

स्वामी से अंतिम मुलाकात का इशा साधकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह अरुद्र दर्शन (तमिल उत्सव जिसमें शिव के तांडव नृत्य का समारोह मनाया जाता है और यह साल की सबसे लंबी रात मानी जाती है) का दिन था। उस अवसर पर उन्हें साथ देखने से उसका महत्त्व और बढ़ गया, यह सूर्य और चंद्रमा को साथ-साथ देखने जैसा था।

दिसंबर के तीसरे सप्ताह में सद्‍गुरु ने भारती को फोन किया। उन्होंने उससे पूछा, क्या वह पंद्रह दिन की कार यात्रा पर विजी, उनकी बेटी और उनके साथ जाना चाहेगी? इसे पारिवारिक अवकाश समझकर अनिच्छुक होने के बावजूद वह तैयार हो गई। इसका मतलब उसे फिर से अपने परिवार की व्यवस्था करनी थी। वह मुसकराकर कहती है, ''लेकिन तब तक मैं युक्ति निकालना सीख गई थी। चूँकि यह क्रिसमस-पोंगल का समय था, मेरे बच्चों के स्कूल की छुट्टियाँ थीं, इसलिए मैंने उन्हें हैदराबाद अपने भाई के घर भेज दिया था।'' वह 26 दिसंबर को सद्‍गुरु और उनके परिवार के साथ चली गई। किसी को भी इस यात्रा के उद्‍देश्य की जानकारी नहीं थी और किसी को भी अंदाज नहीं था कि यह मील का पत्थर साबित होनेवाली थी।

यद्यपि ध्यानलिंग का कार्य तेजी से चल रहा था, किंतु सद्‍गुरु को अहसास था कि कर्मों की बाधाएँ बची हुई थीं जो कि दो प्रतिभागियों के पूर्ण खंड के मार्ग में दखल दे रही थीं। जहाँ विजी और भारती सहयोग देने के लिए बिलकुल इच्छुक थीं, कुछ अचेतन क्षेत्र की बाधा थी जिसे ठीक किया जाना जरूरी था। गहराई में पड़ी इन गाँठों को खोलने का आदर्श तरीका एक साथ उन स्थानों की यात्रा करना था, जो उनके पूर्व जन्मों में महत्त्व के थे।

भारती, जिसे विजी की तरह ही उद्देश्य की कोई जानकारी नहीं थी, यात्रा के दौरान का समय याद कर यह महसूस करती है कि यदि वह उनके साथ नहीं जाती तो यह ज्यादा सरल रहा होता। ''मुझे यह बात साफ होती जा रही थी कि विजी अपने पति के प्रति एकाधिकार स्वभाव की थी, और जिस तरह युवा वर्ग उन्हें भगवान जैसा मान रहा था और उनके लिए उनमें सनक थी, इससे वह स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रही थी। वह सद्गुरु से महासमाधि लेने जैसी, जिसे मैं मूर्खतापूर्ण हरकत समझती हूँ, बात करती थी। मुझे महसूस होता मानो कोई बच्चा बॉबी डॉल के विषय में बात कर रहा हो, और मैंने उससे पूछा, 'महासमाधि क्यों? मरना क्यों? जीवित रहकर उनकी मदद क्यों नहीं करना?' जब मैं ऐसी बातें करती तो वह स्वयं में संकुचित हो जाती। उस समय मुझे उस पर क्रोध आता। क्रोध इसलिए क्योंकि मेरे गुरु किसी ऐसी स्त्री से शादीशुदा हैं, जो उनके जीवन के मिशन की विशालता को समझ नहीं सकती थी। अब मैं सोचती हूँ कि मैं उसके प्रति कुछ सहज रह सकती थी। एक महिला के रूप में मैं उसका दर्द कभी नहीं समझ सकी और वरिष्ठ जैसा व्यवहार करती रही। लेकिन ऐसा इसलिए कि मैं यह नहीं समझ सकी कि वह उन्हें मात्र एक पति तक ही सीमित क्यों करना चाहती थी जबकि वह स्पष्टत: उससे कहीं अधिक हो सकते थे।''

यात्रा का पहला पड़ाव उड़ीसा की पश्चिमी सीमा पर स्थित संबलपुर था। आदिवासी (जनजाति) जनसंख्या की अधिकता वाला यह शहर हीराकुंड बाँध से सोलह किलोमीटर की दूरी पर है। यह हीरा व्यापार का पुराना केंद्र था और वर्तमान में वस्त्र उद्योग के लिए विख्यात है। यह वज्रयान बौद्धों का प्रसिद्ध केंद्र भी है। यह समूह संबलपुर से एक घंटे की यात्रा की दूरी पर स्थित मुक्तेश्वर मंदिर की ओर बढ़ गया।

उनके इस प्राचीन मंदिर पहुँचते ही भारती को यह स्पष्ट आभास हो गया कि वह स्थान उसके लिए नया नहीं था। इस जगह ने उसके मन में अभिलाषा और दु:ख का मिला-जुला भाव उत्पन्न कर दिया जो असहनीय तीव्रता के साथ बढ़ता गया। इस गहरे आभास से वह मौन होकर स्वयं में सिमट गई। ''यात्रा के दौरान सद्गुरु ने विजी को कई बातें समझाईं—मसलन हम जिन स्थानों पर जा रहे थे, उनका महत्त्व इत्यादि। मेरे मन में बहुत ज्यादा प्रश्न नहीं थे। सम्यम कार्यक्रम के दौरान मुझे पहले ही कई झलकें मिल चुकी थीं, जिससे कई दृश्यों से मैं तुरंत ही परिचित हो गई थी। तीनों ने तीन दिनों तक उस मंदिर में ध्यान किया। भारती आसानी से अपने ध्यान अभ्यास में प्रवेश कर जाती थी। उसे वह स्थान ऊर्जा से सराबोर लगा और यहाँ ध्यान सत्रों के बाद वह प्राय: खड़ी नहीं हो पाती थी।

एक वरिष्ठ शिष्य ने, जिसने संबलपुर की दोनों यात्राओं (पहले की और अभी की) का इंतजाम किया था, पाया कि पंद्रह दिन पूर्व जब विजी यहाँ आई थी तब और इस बार में उसमें काफी बदलाव था। अब सद्गुरु के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल चुका था। उनके प्रति अब गुरु की दृष्टि से सम्मान था। और उसकी उपस्थिति में ऐसी कुछ अवर्णनीय-सी बात थी जिसके कारण उसके प्रति सम्मान जागता था।

अब सद्गुरु ने बिल्वा के जीवन की दिशा का अनुगमन करने का निर्णय लिया। वह जानते थे कि उस सपेरे का गृहशहर कहीं आसपास ही होने की संभावना थी। लेकिन उन्हें उस कस्बे का नाम या वह किस दिशा में था, याद नहीं था। इन बातों से परेशान हुए बिना वे चारों अज्ञात ठिकाने की अनिश्चित खोज में जुट गए। उनके पास इसके लिए न तो कोई नक्शा था, न सुराग था, न मार्गदर्शन। यह ऐसा यात्रा अभियान था जिसके संपन्न होने में उन्हें महीनों लग सकते थे। फिर भी उन्हें किसी बंद गली का सामना नहीं करना पड़ा। वे जीप पर सवारी कर रहे थे, सद्गुरु ड्राइवर को पूरी तरह अपने अंतर्ज्ञान के आधार पर दिशा निर्देश दे रहे थे। अपने वाहन को वे मध्यप्रदेश (अब छत्तीसगढ़) के शहर रायगढ़ ले आए, जो कि उड़ीसा की सीमा के दूसरी ओर था।

जीप के यहाँ प्रवेश करते ही भारती को बेचैनी महसूस होने लगी। यह स्थान जाना-पहचाना-सा था। उसे तनिक संदेह नहीं था कि उसका कोई बहुत प्रिय यहाँ रहा करता था। वे सीधे एक छोटे-से शिव मंदिर की ओर बढ़े। जैसे ही उसने मंदिर में कदम रखा भारती जान गई कि यह वही मंदिर था जिसे उसने अपनी सम्यम साधना के दौरान उभरे दृश्य में देखा था। जब वह छोटी बच्ची थी तब मंदिर के घंटों की आवाज उसके स्वप्नों में बार-बार आती थी। इस मंदिर के घंटे

की टनटनाहट बिलकुल वैसी ही थी जिसकी वह अभ्यस्त थी। उसे याद आता है, ''बचपन से ही मेरे स्वप्नों में दूर कहीं एक छोटा-सा मंदिर नजर आता रहा है। इस शिव मंदिर को देखते ही मैं जान गई कि पहले जीवनकाल में मैं यहाँ बचपन में पूजा करने आया करती थी।''

सद्‌गुरु के लिए तो उनका अनुभव जीवित जैसा ही था। ''रायगढ़ की वह सड़क वैसी ही थी। हर कुछ वैसा ही था जैसा उन्हें याद था—वही ब्राह्मण कॉलोनी, मंदिर, सबकुछ। इसके शीघ्र बाद ही इस मंदिर का जीर्णोद्‌धार किया गया। लेकिन उस समय तो सबकुछ समय के अंतराल में जस का तस स्थित था मानो उन्हें हमारे पुन: आने और पहचाने जाने का इंतजार रहा हो।''

इस मंदिर में ध्यान करने के बाद सद्‌गुरु अपने दल को मंदिर से बाहर एक पेड़ के पास ले गए। यह एक नाले के सामने स्थित था, और हालाँकि यह दूसरे कई पेड़ों के बीच स्थित था फिर भी यह उनसे कुछ अलग था। यह तब भी अपरिपक्व ऊर्जा से स्पंदित था और आगंतुकों ने इसे शीघ्र ही पहचान लिया। चार सौ साल के बाद भी यह उन आगंतुकों को समय और स्थान के एक अन्य आयाम में ले जा सकता था। यहीं पर एक नौजवान ने अपने जीवन की अंतिम चंद साँसें ली थीं। सद्‌गुरु कहते हैं, ''जब बिल्वा गिरा था तो उसका चेहरा नीचे (मुँह के बल) था। जब हम उस पेड़ के नजदीक पहुँचे तो उस शरीर की ऊर्जा तब भी ज्यों की त्यों थी। कुछ भी बदला नहीं था।'' सद्‌गुरु ने बताया कि बिल्वा के जीवन के वे अंतिम कुछ मिनट, किसी दैवीय कृपा के हस्तक्षेप से पूर्ण चेतना में बीते थे। इसीलिए इशा में साँसों को देखना जहर युक्त-सा लगता है।'' सद्‌गुरु प्राय: कहते हैं, ''अन्य कहीं यह प्रक्रिया काफी शीतल होती है। इशा में यह अत्यधिक तपनभरी है। यहाँ बैठकर यदि तुम अपनी साँस पर नजर रखोगे, तो यह तुममें पागलपन-सा उन्माद पैदा कर देगा। ऐसा लगेगा मानो तुम जीवन और मौत के किनारे पर हो। ऐसा इसलिए था, क्योंकि इस आदमी ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी समाप्त हो रही साँसों पर नजर टिकाए रखी थी। उसकी चेतना का ज्ञान आसान नहीं था। यह तब आया जब उसकी साँस लगभग समाप्त हो चुकी थी।''

अपनी वापसी यात्रा के दौरान यह दल आंध्रप्रदेश के विशाखापत्तनम शहर से होता हुआ बढ़ा। यहाँ भी सद्‌गुरु ने कुछ अन्वेषण करने का निर्णय लिया। भाग्य पुन: उनके साथ था। हर घुमावदार रास्ता, बड़े करीब से मुख्य मार्ग से जुड़ा हुआ था, प्रत्येक विषयांतर लक्ष्य की दिशा की तरफ जानेवाला रास्ता सिद्‌ध हुआ। सद्‌गुरु प्राय: भारती से आंध्रप्रदेश के रायलसीमा क्षेत्र की बात करते थे, उसके विषय में पूछते थे। उन्हें इसका नाम मालूम नहीं था। चूँकि वह राज्य के तटीय क्षेत्र की रहनेवाली थी, इसलिए वह उनकी मदद नहीं कर पाती थी। अब इस दल ने फिर से अपनी योजना से हटने का निश्चय किया। बंगलोर होकर कोयंबतूर लौटने के बदले उन्होंने हैदराबाद जाने का निर्णय लिया। एक रात वहाँ बिताने के बाद उन्होंने पुन: यात्रा आरंभ की। चार घंटे के बाद वे कुडप्पा नामक छोटे से कस्बे में आ गए। पुन: सद्‌गुरु से अंतर्ज्ञान के राडार से मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए वे सीधे शिव मंदिर पहुँच गए।

मंदिर के नजदीक पहुँचने पर सद्‌गुरु पर मौन उतर आया। इसके भीतर प्रवेश करते ही भारती को चिरपरिचित ऊर्जा का उफान महसूस हुआ। वह तुरंत जान गई कि यही वह स्थान है जहाँ पर अपने पूर्व जन्म में उसने अपने गुरु के साथ समय बिताया था। यहीं पर सद्‌गुरु श्रीब्रह्मा और उनके शिष्य ने ध्यानलिंग के लिए ब्लूप्रिंट तैयार किया था, उन्होंने भविष्य के शिष्यों के जीवन, यहाँ तक कि उन गर्भों तक को निश्चित कर दिया था जिनसे उन्हें जन्म लेना था। इन यात्रियों ने कुछ देर तक यहाँ ध्यान किया। जिस स्थान को वे जानते थे, वह कई वर्षों से वीरान पड़ा हुआ था और हाल ही उसका जीर्णोद्‌धार हुआ था।

किसी कारणवश, विजी को लगा कि उनके मंदिर में रहने के दौरान वह भारती से आँख नहीं मिला पा रही थी। यद्यपि भारती इस बात को लेकर हैरान थी, फिर भी उसे अपने अंतर्मन के किसी कोने में इसकी वजह का अहसास था। मंदिर में उसके हाव-भाव में विशिष्ट परिवर्तन दिखाई पड़ा। ''मैं जानती थी कि यहाँ मेरे और सद्‌गुरु के बीच बहुत कुछ हुआ था, और मैं अचानक उनके प्रति रक्षात्मक रवैया महसूस कर रही थी। मुझे आभास था कि मैंने अपने गुरु को पहले भी

दारुण दशा और पराजय में देखा था, और मैं उन्हें फिर से असफल नहीं देखना चाहती थी। मैंने प्रचंड निश्चय का भाव महसूस किया, और जो कोई भी मेरे रास्ते में आया, वह तुच्छ ही लगा। एक खीझ भी मन में थी, मेरे स्वामी, मेरे गुरु, सम्राटों के सम्राट् ने इस जन्म में विवाह करने की क्यों सोची?''

यह तो उसने बाद में महसूस किया कि पूर्व जन्म में सद्‌गुरु श्रीब्रह्मा के साथ मंदिर में व्यतीत किया गया समय दोनों के लिए काफी कठिनाई भरा था। इस समय उसका दृष्टिकोण अपने स्वामी के लिए लड़ाकू होने की सीमा तक रक्षात्मक था। मंदिर की शक्तिशाली ऊर्जा से उसके मन की गहराई में छिपी यह भयंकरता और ज्यादा उत्तेजित हो गई थी। इस अवर्णनीय परिवर्तित मनोवृत्ति से विजी सहम गई थी। जब वे मंदिर से बाहर गए, तो आक्रमकता का उफान जिस तेजी से उठा था, उतनी ही तेजी से शांत पड़ गया।

इस यात्रा का त्वरित प्रभाव भारती के लिए यह था कि क्षुद्र-सी कुछ सुखद आसक्तियाँ, जो उसके संबंधों और घटनाओं से जुड़ी थीं, उनसे वह पूर्णत: मुक्त हो गई। इस यात्रा से उसके और विजी के बीच का तनाव बहुत हद तक समाप्त हो गया। यह समाप्ति मात्र मनोवैज्ञानिक स्तर पर ही नहीं हुई थी बल्कि कुछ ज्यादा गहरे स्तर पर हुई थी। और सद्‌गुरु की बेटी ने बतौर साक्षी इसे पुष्ट किया था। जब वे एक मंदिर में लंबे ध्यान से बाहर आए तो वह स्वाभाविक रूप से भारती की ओर, उसे 'अम्मा' संबोधित करती हुई दौड़ी गई। एक सेकेंड के बाद उसे अपनी गलती समझ में आई। यह घटना सूक्ष्म थी। लेकिन इस तथ्य की साक्षी थी कि अब दोनों ऐसी ऊर्जा उत्सर्जित कर रही थीं जो पहले से ज्यादा सामंजस्यपूर्ण थी।

यह बड़ी व्यस्त यात्रा थी। उन्होंने छह राज्यों और पाँच हजार किलोमीटर की विषम दूरी बारह दिनों में पूरी की थी, कई रातें तो गाड़ी चलाते हुए व्यतीत हुई थीं, और कई रातें तो गाड़ी में ही बितानी पड़ी थीं। लेकिन इन यात्रियों के लिए इस यात्रा का महत्त्व कुछ और ही था। वस्तुत: वे कई जन्मों के टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चले थे। उनकी यात्रा से उन्हें छोटे-छोटे वृत्तांत मिलते गए जिनसे मिलकर उनके जीवन की एक खूबसूरत कहानी बनती है। सद्‌गुरु ने यदि इसे 'कर्मयात्रा' कहा तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह किसी तीर्थ से कम नहीं था। अचेतन मन की गहराई में छिपे कर्मों को अपने बीते काल के इतिहासों में जाकर काटने का एक अवसर था।

उनकी वापसी यात्रा के दौरान ध्यानलिंग की स्थापना का कार्य अब ज्यादा दूर और कठिन नहीं लग रहा था। सद्‌गुरु स्मरण करते हुए कहते हैं, ''जब हम लौट रहे थे, मैंने विजी और भारती से प्रतिज्ञा कराई कि अगली पूर्णभासी (फरवरी की) तक, हम संस्कारीकरण का कार्य समाप्त कर लेंगे। मैंने कहा कि चाहे जो भी पारिवारिक मजबूरियाँ हों, चाहे कुछ भी करना पड़े, हम इसे पूर्ण कर लेंगे। वे तैयार हो गईं। मैंने कहा, इतना ही पर्याप्त नहीं है, तुम्हें सचमुच शपथ लेनी पड़ेगी। इसलिए मैंने उनसे तीन बार जोर-जोर से शपथ कहलवाई। और उन्होंने कहा भी।''

हालाँकि सद्‌गुरु थके हुए थे फिर भी उन्होंने शीघ्र ही एक सत्संग आयोजित किया। वह अपने शिष्यों को इस यात्रा के परिणाम बताने को उत्सुक थे। ''मुझे तुम्हें कुछ भी नहीं दिखाना है, लेकिन इतना तय है कि हम आपके लिए एक बड़ा उपहार लाए हैं,'' उन्होंने घोषणा की। उन्होंने कर्म यात्रा को इतनी परेशानियों से रहित निरूपित किया मानो सारा अस्तित्व ही इसे सफल बनाने के लिए हमारा इंतजार कर रहा था। उन्होंने विजी और भारती को हाल के एक-एक कोने में बैठकर त्रिकोण आकार बनाने के लिए कहा। इसके बाद उन्होंने एक सामूहिक ध्यान का नेतृत्व किया, जिसे उनके साधकों ने बहुत समय तक एक शक्तिशाली ध्यान के रूप में याद किया।

उन्होंने बाद में बताया, ''यह एक शक्तिशाली अनुभव था। ये दोनों लगातार एक के बाद दूसरे...जीवन से त्वरित गति में गुजरती गईं। उनके पूर्व के जीवन की कई घटनाएँ घटित हुईं...मैं शहर में प्रवेश करने से पहले ही संबंधित स्थान को बिलकुल सही-सही बतला देता था, ताकि इन दोनों के मन में भी तनिक संदेह ना आ सके। उन्हें यह न लगे कि वे इसकी कल्पना मात्र कर रही हैं। मैं उन्हें बता देता था कि ऊर्जा का स्पंदन कैसा रहेगा, जब तुम उस स्थान पर जाओगी तो कौन-सा चक्र जाग्रत् होगा...और उनके अनुभव में भी ठीक यही हुआ करता; यह उससे अलग हो भी नहीं सकता

था... चाहे वह कुंडप्या हो या संबलपुर, हमें जहाँ जाना होता था उसकी यथार्थ जानकारी हमें होती थी, क्योंकि ज्यों ही हम उस स्थान को पहुँचने लगते तो स्पंदन ऐसे होते हैं कि भूतकाल के संबंध तुम्हें वहाँ खींचकर ले जाते हैं। हम ऐसे कई स्थान चुन सकते थे जहाँ दोनों के भूतकाल जुड़े थे, जहाँ दोनों के भूतकाल अलग-अलग जुड़े थे। लेकिन हम उन स्थानों पर जाना चाहते थे जो आध्यात्मिक तौर पर महत्त्वपूर्ण थे। जब हम वहाँ पहुँचे, तो उन दोनों के लिए आध्यात्मिक आयाम एक जीता-जागता अनुभव हो गया। इसलिए जब वे इन प्रक्रियाओं से गुजरीं, तो वे सभी संरचनाएँ जो उन्हें रोक हुए थीं, हिलकर चरमरा गईं। इसके बाद संस्कारीकरण काफी सरल हो गया। इसके पहले भी कर्मों की परतों को खोलने की प्रेरणा रहा करती थी; इसके लिए साधना तो थी, लेकिन इससे अतिरिक्त जोर लग गया।''

इसलिए लक्ष्य पहले कभी की अपेक्षा ज्यादा करीब महसूस होने लगा। लेकिन परेशानियों के संकेत पहले से ही वातावरण में थे। कर्मयात्रा के शीघ्र बाद भारती अपने परिवार के साथ पोंगल मनाने विशाखापत्तनम चली गई। अपने पिता के गृहग्राम के पुश्तैनी मकान से लौटते समय उसकी एक ननद ने वेंकन्ना बाबू नामक एक स्थानीय संत से मिलने जाने का सुझाव दिया। यह संत गोदावरी नदी के किनारे रहते थे।

तांत्रिकों और मंदिरों के प्रति उसके मन में लंबे समय से चले आ रहे अविश्वास के कारण भारती उनके साथ नहीं जाना चाहती थी। चूँकि उस संत का घर रास्ते में ही पड़ता था, इसलिए इनकार करना कुछ अशिष्ट-सा जान पड़ा। वेंकन्ना बाबू को उस क्षेत्र में पवित्र आत्मा माना जाता था, और लोग उन्हें पूर्वज्ञान की शक्तियों से लब्ध मानते थे। वह हर शनिवार की शाम को आगंतुकों की एक छोटी सभा आयोजित करते थे। वह काफी देर तक प्रार्थना करते और उसके बाद सभा में लोगों से मिलते। वह उनके सामने आँखें बंद करके और हाथ में चाँदी की बाँसुरी लेकर खड़े हो जाते, उनके प्रश्न सुनते और सलाह दिया करते। भारती और उसकी ननदों की टोली ने उनके साधारण-से घर में प्रवेश किया। आगंतुक उनके सामने फर्श पर एक पंक्ति में बैठ गए। प्रत्येक व्यक्ति को एक प्रश्न पूछने का मौका दिया जाता था। जब उसकी बारी आई, तो भारती चुप रही। लेकिन उसकी एक ननद ने कोहनी से उसे इशारा किया तो ''मेरे गुरु कुछ स्थापित करना चाहते हैं,'' उसने अनमने ढंग से कहा। ''आपकी इस विषय में क्या राय है? क्या ऐसा होगा?''

वहाँ चुप्पी छाई रही। वेंकन्ना बाबू की आँखें कुछ समय तक बंद रहीं। तत्पश्चात् उन्होंने बोलना शुरू किया। उन्होंने कहा, ''सद्गुरु कुछ स्थापित करना चाहते हैं, लेकिन यह काम इतनी जल्दी नहीं होगा जितनी उनकी इच्छा है। कुछ कठिनाइयाँ आएँगी, कुछ विलंब होगा।'' वह थोड़ा रुके, फिर कहना शुरू किया, ''तुम्हारे गुरु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। वह तो सागर से भी विराट हैं। लेकिन वर्तमान परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं और इनका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ेगा।'' उनके अंतिम शब्द पुनर्राश्वसन के थे, ''तुम एक निश्चित रास्ते पर चल रही हो, और यह सही है।''

उस रात जब भारती विशाखापत्तनम पहुँची, तो उसने तुरंत विजी और सद्गुरु को फोन किया। उन्हें निरुत्साहित न करने के प्रति चिंतित होने के बाद भी उसने वेंकन्ना बाबू से हुई अपनी मुलाकात के विषय में बतलाया। ''मैंने सद्गुरु को बताया कि उन्होंने कहा था कि इस प्रक्रिया में कुछ बाधाएँ आएँगी। मैंने उनसे उनके स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहने के लिए भी कहा। विजी ने मुझे बताया कि सद्गुरु पहले ही कुछ विलंब की प्रत्याशा कर रहे हैं। जब विजी ने संस्कारीकरण के शीघ्र होने के विषय में पूछा था तो सद्गुरु मौन हो गए थे। उसने कहा, ऐसा लगता था उन्हें मालूम था कि कुछ गलत हो जाएगा। इससे वह चिंतित हो गई।'' भारती वेंकन्ना बाबू की भविष्यवाणी से व्यर्थ ही चिंतित नहीं थी। सद्गुरु स्थिति को नियंत्रण में रखे हुए-से लगते थे; संस्कारीकरण लगभग पूर्ण ही होता लग रहा था, और उसे उम्मीद नहीं थी कि ऐसी स्थिति में अनायास क्या गलत हो जाएगा। फिर भी वेंकन्ना बाबू ने सद्गुरु के विषय में जिस तरह सम्मानपूर्ण बातें कही थीं, वह उससे हैरान थी, जबकि वह कभी उनसे मिले भी नहीं थे।

इसी बीच सद्गुरु विजी को एक शादी में शामिल होने के लिए बंगलोर ले गए। ''हमारी शादी के बारह वर्षों के दौरान हम इतने व्यस्त रहे थे कि मेरे रिश्तेदारों (मेरे अपने निजी परिवार के अलावा) में कोई भी अभी तक मेरी पत्नी से नहीं मिला था। मैं कभी भी किसी पारिवारिक कार्यक्रम में शामिल होने नहीं जा पाया था। मैं किसी से मिलने भी नहीं जा सका

क्योंकि हर समय मैं यात्रा में होता या प्रशिक्षण दे रहा होता, एक तरह से पूरे नए परिवार का गठन करते हुए। इसलिए मैंने जाने का निर्णय लिया क्योंकि मैं चाहता था कि परिवार का हर सदस्य विजी से मिले। अब तक, कर्मयात्रा के पश्चात् वह पूर्णिमा के चाँद की तरह चमक रही थी। जो भी उसे उन अंतिम सप्ताहों के दौरान देखता, वह इस फर्क को स्पष्ट बता सकता था। हर कोई उससे मिला और सभी ने यही कहा, 'ओह, बड़ी खूबसूरत पत्नी है, तुम्हारी। इसमें कोई ताज्जुब नहीं कि तुम हमसे पहले मिलने क्यों नहीं आए!' इसी तरह की बातें।''

लेकिन यह पारिवारिक समारोह एक अवकाश ग्रहण भी था। हालाँकि सद्गुरु और विजी के अलावा किसी को भी इसका आभास नहीं था। ''मैं जानता था कि वह स्वयं की महासमाधि के लिए तैयारी कर रही थी और फरवरी-मार्च तक संस्कारीकरण समाप्त होने के बाद, वह जाना (मरना) चाहती थी।'' उसने इस ओर इशारा भी किया लेकिन किसी ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। वे इस बात का यकीन ही नहीं करते थे। वे कहते थे, ''क्या बकवास है! वह इतनी खूबसूरत और खुश है। वह अचानक चली (मर) क्यों जाएगी?'' दोनों (सद्गुरु और विजी) मैसूर में विजी और सद्गुरु के परिवार में भी गए। (उनकी माँ की महाप्रयाण सालगिरह उसी महीने अठारह तारीख को थी) ''मैंने परिवार के दोनों पक्षों को बता दिया कि विजी जाने (मरने) की बात करती रही है और वह बहुत समय तक जीवित नहीं रहेगी।'' सद्गुरु कहते हैं, ''मेरे पिता ने इसे व्यर्थ की बात समझकर उड़ा दिया जबकि दूसरे तो एकदम चकरा से गए।''

बाइस जनवरी 1997 का दिन भारती को अच्छी तरह याद है। तब तक वह विशाखापत्तनम से लौट चुकी थी। रात को दरवाजे की घंटी बजी। दरवाजे पर विजी थी। उसने कहा कि वह सत्संग करने के लिए कोयंबतूर आई थी और उसने भारती के पास बिना बताए पहुँचने का निर्णय लिया था। भारती ने उसे अंदर बुलाकर भोजन कराया। विजी ने बंगलोर से लाया हुआ पोंगल का प्रसाद भी उसे दिया। भारती कहती है, ''मुझे याद है, उस शाम वह बहुत खूबसूरत लग रही थी, और यह मैंने उससे कहा भी। वह कुछ तनावमुक्त भी लग रही थी। वह अपने आप के प्रति काफी सहज भी लगी।''

तेइस जनवरी, पूर्णमासी का दिन था। सद्गुरु ने उन्हें बता रखा था कि वह ध्यानलिंग का संस्कारीकरण या तो उसी दिन या अगली पूर्णमासी को चाहते थे। लेकिन उस दिन भारती को अपनी बेटी के स्कूल का नाटक कार्यक्रम देखने जाना था। हालाँकि उसने इस बात की चर्चा सद्गुरु या विजी से नहीं की थी, किंतु उसे उस दिन आश्रम पहुँचने को लेकर संदेह था। विजी ने मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं पूर्णमासी को आ रही थी या नहीं और मैने उसे अपनी बेटी के स्कूल प्रोग्राम में जाने की योजना के विषय में भी नहीं बतलाया। बाद में मुझे पछतावा भी हुआ। यदि उस दिन मैं आश्रम चली गई होती तो संभव है कि स्थितियाँ कुछ और रही होतीं।

उस समय हालाँकि किसी को नहीं मालूम था कि तेईस तारीख को क्या होनेवाला था। शायद उस व्यक्ति को भी नहीं जिसने घटनाओं के नाटकीय मोड़ को गति दी। उसके लिए, यह तब भी एक योजना ही थी। लेकिन योजनाएँ, जो वह और कोई और भी जानते थे, बुरी तरह अविश्वसनीय होती हैं।

उस दिन की घटनाएँ बड़े सामान्य तरीके से घटित हुईं। माँ गंभीरी को याद है कि विजी ने उस दिन सुबह जल्दी ही उसे एक डायरी थमाकर उसमें सद्गुरु के कार्यक्रम चिन्हित करने को कहा। इससे उसे कुछ अटपटा-सा भी लगा क्योंकि हमेशा विजी ही उनके कार्यक्रमों को तय करने के प्रभार में रहती थी और पहले कभी ऐसी डायरी की जरूरत भी नहीं होती थी। लेकिन इस बात को उसने अपने दिमाग से निकालकर स्वयं को रसोई के कार्यों में व्यस्त कर लिया। सद्गुरु ने देखा कि विजी ने उस सुबह जल्दी उठकर अपनी साधना कर ली थी। कुछ घंटों के पश्चात् उसने स्नान किया और पुन: साधना की। इस प्रक्रिया को उसने कई बार दुहराया। दस बजे उसने उनके साथ भोजन किया। उस दिन शिक्षकों से मासिक तौर पर मिलने का दिन था और प्रतिभागियों को याद है कि विजी ने ऐसे कुछ शिक्षकों की पैरवी की थी जिन्हें आलोचना हेतु अलग रखा गया था। इसमें कुछ खास बात नहीं थी। विजी प्राय: आश्रम के स्वयंसेवियों और शिक्षकों के पक्ष में स्वर मुखर रखती थी। राजा कहता है, ''मुझे याद है कि किसी बात पर मैं सद्गुरु का समर्थन कर रहा था और वह इसका तीखा विरोध कर रही थीं।''

उस दिन दोपहर बाद साढ़े चार बजे वह अपने घर चली गई। पूर्णमासी का विशेष ध्यान गोधूलि बेला में शुरू हो गया। स्वामी देवासत्वा कहते हैं, ''कुछ महीनों से यह विजी की साधना का हिस्सा था कि वह पूर्णमासी को भोजन तैयार कर ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को अपने हाथों से परोसा करती थीं।'' हम सद्गुरु के घर के मंदिर में एकत्र हो जाया करते और वे दोनों हमें मुट्ठी भर के बिसी-बेले-भात खिलाते थे। उसके बाद दही और चावल परोसा जाता था। लेकिन पहले ध्यान की क्रियाएँ चलती थीं।''

सद्गुरु को याद है कि विजी ध्यान के दौरान अचानक उठकर चली गई। वह परेशान से हो गए, क्योंकि किसी का भी इस तरह ध्यान में बाधा डालना उचित नहीं माना जाता था।

वह बताते हैं, ''मैंने अपनी आँखें बंद कर रखी थीं लेकिन मुझे मालूम था कि वह कब खड़ी हुई और चली गई। मुझे थोड़ी खीझ भी उठी। कोई भी ध्यान के दौरान उठकर जाने का साहस नहीं करता। एक बार बैठ गए, मतलब बैठ गए। आठ-दस मिनट में वह उठकर चली गई और पाँच मिनट बाद आकर वह फिर बैठ गई। उसने बाथरूम में जाकर अपने पैर की उँगली से लेकर नाक की नथ तक सभी गहने उतारकर वहीं रख दिए थे। ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें भारतीय महिलाएँ सामान्यतया कभी नहीं हटाती हैं। ये ऐसी चीजें हैं जिनके विषय में बोला या लिखा नहीं जाता, लेकिन यदि आपके शरीर के विशेष भाग में कोई धातु है तो आप अपना शरीर आकस्मिक रूप से त्याग नहीं कर सकते। इसलिए जब कभी भी कोई आश्रम आता है, और यदि हम उससे कोई तीव्र साधना कराते हैं, तो सबसे पहले हम एक साधारण ताँबे की अँगुठी उसे पहनने के लिए देते हैं। काफी देर के बाद जब सबकुछ समाप्त हो गया और मैं बाथरूम गया तो मैंने विजी के सारे गहनों को वॉश-बेसिन के पास रखे हुए देखा। वह उन्हें उतारने के बाद आकर बैठ गई थी। जब वह बैठ गई तो उसने महसूस किया होगा कि धातु के गहनों के कारण उसके रास्ते में बाधा आ रही थी। ऊर्जा का अचानक विस्फोट हुआ और सात मिनटों के अंदर वह चली गई।''

स्वामी देवासत्व को वह दृश्य स्पष्ट रूप से याद है, ''वह सद्गुरु की कुरसी पर बैठी थी। वह हम सभी के साथ गायन कर रही थी। अगले ही क्षण वह एक ओर लुढ़क गई। मुझे याद है, पर उसके चेहरे पर मुसकान थी।''

एकबारगी शोर-गुल मच गया। किसी ने सद्गुरु को बताया कि विजी जाग नहीं रही थी। क्षणभर में वह उसके निकट आ गए। वह लगातार उसके चक्रों पर प्रयास करते रहे, जबकि दूसरे यह सब देख रहे थे, उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। यह पूर्णरूपेण असामान्य नहीं था। लोग पहले भी ध्यान के समय अपने शरीर से अलग हो चुके थे लेकिन प्राय: वे लौट आते थे। एक घंटे बाद सद्गुरु ने ऊपर देखा। उनकीं आँखें भीग चुकी थीं। ''वह गई'' उन्होंने कहा। ''वह उसके अनहद (चक्र) से निकल गई।''

जब भारती स्कूल कार्यक्रम में थी, तभी यह खबर उसे मिली। ''ज्यों ही मैंने यह सुना तो मेरा पहला विचार यही था, हे भगवान्, इस औरत ने वही किया। मेरे मन में उसके लिए शिकायती भाव में प्रशंसा उठी। तत्पश्चात् गुस्सा आया, उसे यह सब अभी क्यों करना था? हम प्रक्रिया पूरी कैसे करेंगे?''

सद्गुरु की बेटी, जो उस समय सात वर्ष की थी, उस घटना का चित्रण बड़ी नाटकीय सुबोधता के साथ करती है। उसके बोर्डिंग स्कूल में यह संदेश पहुँचा कि उसकी माँ अस्वस्थ है। उसके आश्रम पहुँचने तक, उसे मालूम हो गया था कि कुछ गड़बड़ है। ''जब मैं अंदर आई, लोग चीख चिल्ला रहे थे। मैंने पिताजी को रोते देखा। मेरी माँ फूलों की सेज पर पड़ी हुई थी। शाम के तीन बजे थे। मैं थकी हुई थी। मैं अपने डैड से लिपट गई। मुझे याद है, मैंने कहा था, 'मुझे नींद आ रही है।' ''वह कहती है कि जो, हुआ था वह उसे महसूस हो गया था लेकिन नहीं, उसका अपना कोई प्रश्न नहीं था। वह कहती है, ''मेरे माता-पिता के आसपास असामान्य बातें हमेशा होती रहती थीं। खैर, मैं इनकी आदी हो चुकी थी।''

वक्ता मंच पर अपने पिता के निकट संपूर्णता कार्यक्रम एवं अनेक भाव स्पंदन कार्यक्रमों के दौरान बैठकर वह लोगों की बदली हुई चेतना की दशाओं में उन्हें रोते, लड़खड़ाते या अन्य हरकतों को देखने की आदी हो चुकी थी। वह कहती

है, ''अगले दिन मैंने देखा कि लोग चिता से राख निकाल रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ उन्हें हड्डियों और लकड़ी लट्ठों में भेद कैसे मालूम है?''

एक स्तर पर, उसकी माँ ने उसे इसके लिए तैयार कर दिया था। इस घटना के कुछ दिनों पहले ही जब वे उसे उसके ऊटी स्थित बोर्डिंग स्कूल ले जा रहे थे, विजी ने उससे कहा था कि मार्च में वह उसके जन्म दिन पर नहीं रहेगी। बेटी चुपचाप यह सुन रही थी। उसे याद है कि सद्गुरु उसके इस रवैये पर एतराज करते हुए कह रहे थे कि वह (विजी) उसे अनावश्यक चिंता में डाल रही थी। विजी ने उत्तर दिया था कि वह दो पूर्णिमा से ज्यादा अपने शरीर में नहीं रहेगी। यह वार्त्तालाप सद्गुरु को भी याद है। ''वह बेटी को बता रही थी कि वह मार्च के पहले ही प्रयाण कर जाएगी इसलिए उसकी जगह मैं आकर उससे मिलूँगा। वे दोनों काफी यथार्थता के साथ बातचीत कर रहे थे। मैंने कहा, 'तुम लड़की से ऐसी बात क्यों कर रही हो? उसे जरा अकेला छोड़ दो। तुम जाओगी या नहीं, तुम्हें कुछ नहीं पता', लेकिन उसने कहा, 'नहीं, नहीं, मुझे उसे बताना है। मैं निश्चित रूप से चली जाऊँगी।' उसने आठ महीने पहले ही घोषणा कर दी थी कि वह पूर्णिमा की शाम को चली जाएगी। और इस दिशा में उसने प्रयास करना भी शुरू कर दिया था। हम ऊटी से इक्सीस की शाम को लौट आए। तेईस की शाम को वह चली गई। यह परियों की कहानी-सी लगती है। लेकिन यही वास्तविकता है।''

सद्गुरु की बेटी विजी को माँ की प्रतिरूप छवि से कुछ अधिक मानती है। उसे अपनी माँ द्वारा उसके बालों को मदार की पत्तियों और सफेद फूल से सजाना याद आता है। वह अपने बाएँ हाथ से उसकी छुट्टी का गृहकार्य कर देती थी (ताकि कोई जान न सके कि उसने मेरे बदले इसे किया था।)

पैरेंट्स मीटिंग के दौरान वह उसके लिए घर में तैयार किया हुआ भोजन लेकर आती थी। वह कहती है, ''मुझे सचमुच यह नहीं मालूम था कि वह कौन थी लेकिन वह अंतर्ज्ञान से जान लेती थी कि मुझे क्या पसंद या नापसंद है।''

हाल ही में विजी की दसवीं पुण्यतिथि पर, उसकी माँ की पहचान का एक अन्य पहलू उसके सामने प्रकट किया गया। ''लोगों के प्रत्युत्तर सुनते हुए, मैंने सोचा, हे भगवान, शायद वह मेरी माँ या मेरे पिता की पत्नी ही नहीं थीं, मैंने अचानक महसूस किया कि वह इससे काफी बढ़कर रहीं।''

बहुत-से लोगों ने यह महसूस नहीं किया है कि विजी कितनी बढ़कर थी। उसकी महासमाधि से यह बात बिलकुल साफ हो गई। एक संन्यासी का कहना है, ''उसकी भावनाओं के पीछे, एक ऐसी तीव्रता है जिसका अनुमान हममें से किसी को नहीं था। मैंने उसे हमेशा ही एक विचारवान व्यक्ति के रूप में देखा। मुझे याद है, उसने मुझे सद्गुरु की एक गरम ऊनी कमीज दी थी, क्योंकि बिना जाड़े के कपड़े लाए मैंने आश्रम में प्रवेश लिया था। मुझे याद है, कैसे वह लिटिल हार्ट्स बिस्किट के पैकेट सद्गुरु के हाथों, जब वह बंगलोर से लौटते थे, भेजा करती थी, लेकिन वह बड़ी अस्थिर प्रकृति की भी थी। हममें से कई सोचते थे कि अपने पति के प्रति उसका प्रेम उसके आध्यात्मिक विकास में सबसे बड़ी बाधा थी। लेकिन संस्कारीकरण कार्य प्रारंभ होने के बाद उसमें परिवर्तन आ गया था। और अंत में जो उसे चाहिए था, वह मिल गया इससे पहले कि हममें से कोई उसे पा सकता।'' अन्य लोगों को उसकी हार्दिकता और अनुराग की महान् क्षमता याद आती है। श्रीनिवास कहता है, ''जब कभी सद्गुरु मुझे डाँटते थे—और प्राय: ऐसा होता—वह मेरे बचाव के लिए कूद पड़ती।'' ''उसने सप्ताह भर पहले ही मुझसे महासमाधि के विषय में बात की थी,'' राजा कहता है, ''हम हमेशा इस विषय पर बातें करते थे। मैं स्वामी निर्मलानंद के आश्रम भी गया था और उस मुलाकात से मैं भावुक हो उठा था। मैं उसे बताया करता था कि मैं भी यही प्राप्त करना चाहता हूँ।'' जहाँ एक ओर उसने कभी सोचा नहीं था कि वह इतनी जल्दी चली जाएगी, वहीं उसे बहुत आश्चर्य भी नहीं था। उन दिनों वातावरण अलग-सा था। सद्गुरु कहीं ज्यादा प्रचंड, और तीव्रतर लगते थे। हम छोटे थे। अप्रत्याशित घटनाओं से हमें आश्चर्य नहीं होता था। हम सभी आशा और विश्वास से भरे हुए थे। सबकुछ संभव लगता था।''

विजी की अंत्योष्टि यात्रा में लगभग एक हजार लोग शामिल हुए। इस कर्मकांड के बाद सद्गुरु लगभग दस दिनों तक

अपने घर में रहे। आश्रम के रहवासियों को याद है कि वह बरामदे में तेजी से टहलते रहते थे। उनके चेहरे से दु:ख झलकता था। ग्यारहवें दिन उन्होंने विशेष आराधना और स्मृति कार्यक्रम रखा। लगभग तीन हजार लोग इसमें शामिल हुए।

''मेरे लिए लोगों को यह बताना हमेशा कठिन रहा है कि विजी क्या है।'' उन्होंने सभा को एक संक्षिप्त किंतु मर्मस्पर्शी संबोधन में बतलाया, ''जब मैं विजी कहता हूँ तो मैं उसे न तो अपनी पत्नी, न एक औरत बल्कि एक प्राणी के रूप में संदर्भित करता हूँ। एक प्राणी के रूप में, वह मेरे अनुभव में हमेशा अद्‌भुत रही। लेकिन जैसा कि आप में से कई जानते हैं, वह अत्यंत भावकु प्रकृति की महिला थी। अपने भोलेपन में वह बिलकुल जानती ही नहीं थी कि लोगों के सामने क्या बोला जाना चाहिए और क्या रोककर रखना चाहिए। उसके भीतर जो भी भावनाएँ होतीं, स्थितियों की परवाह किए बिना वह उन्हें व्यक्त कर डालती।''

एक पति के नुकसान ने गुरु के गर्व से संघर्ष किया। ''यह बच्चों का खेल नहीं है,'' उन्होंने सभा को याद दिलाया। ''सक्षम योगियों को भी इस प्राप्ति के लिए संघर्ष करते देखा गया है जैसा कि आप में से कुछ लोग अब स्वामी निर्मलानंद को जानते हैं, अपना जीवन आध्यात्मिक साधना में बिताया। अपनी महासमाधि के अंतिम कुछ दिनों के दौरान उन्हें इस विषय में संदेह था कि ऐसा होगा या नहीं और जब अंतिम बार हम उनसे मिलने गए तो उन्होंने यही बात मुझसे व्यक्त की। दैवीय कृपा से उन्होंने महासमाधि प्राप्त की। एक ज्ञानी भी जिसने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक साधना में बिताया होता, उसे इस उपलब्धि के लिए संघर्ष करना पड़ता। इस शरीर से, बिना इसे कष्ट या चोट पहुँचाए जीवन को इससे निकाल लेने में कुछ और चीजों की आवश्यकता होती है। हमें ऊर्जा की प्रचंड मात्रा उत्पन्न करनी पड़ती है जिसके लिए सघन साधना की जरूरत पड़ती है। विजी को इसे हासिल करने की तरकीब मालूम थी। लेकिन इस सोपान में, हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बिना मेरी सहायता के वह आवश्यक ऊर्जा उत्पन्न कर पाएगी। जिस तत्परता के साथ उसने यह उपलब्धि हासिल की है, वह उसके प्रेम (शायद यही एक चीज जो उसके पास थी) के कारण संभव हुई है। जब मैं घटनाओं की तमाम श्रृंखला पर नजर डालता हूँ, तो यह बिलकुल साफ है कि इसमें दैवीय शक्ति का सीधा हस्तक्षेप था। लगता है शंभो (जिनके लिए उसका हृदय तड़प रहा था।) उसका हाथ पकड़कर अपने साथ ले गए। केवल प्रेम के कारण ही उसने इसे संभव कर दिखाया।''

उनका दर्द स्पंदनशील था। लेकिन वह यह बताने का अवसर नहीं खोना चाहते थे कि विजी की महासमाधि केवल एक व्यक्ति की विजय नहीं थी बल्कि कई लोगों के लिए प्रेरणा थी। ''सभी आध्यात्मिक साधकों के लिए महासमाधि अंतिम लक्ष्य है, उनकी साधना की पराकाष्ठा, ईश्वर से एकाकार होने का अवसर। जब कभी भी आपको अवसर मिलता है, तो लोग जान लें कि इस तरह के अवसर इनसान को मिलते हैं, कि जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया पर आधिपत्य हमारे हाथों में ही है। सामान्यत: लोग मानते हैं कि ये सभी बातें प्राचीन ज्ञानियों और ऋषियों के साथ समाप्त हो गई। लेकिन आध्यात्मिकता अपनी उच्चतम संभावना में अब भी जीवित है। आम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि असली संतों का युग समाप्त हो गया। लेकिन वर्तमान स्थिति इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि यह युग समाप्त नहीं हुआ है। और यह कभी भी समाप्त नहीं होगा। मेरी यह इच्छा नहीं थी कि इस अवस्था पर कोई भी शरीर छोड़कर जाए। लेकिन वह इसके लिए लालायित थी और वह महामंत्र 'शंभो' में समा गई। मेरा या किसी और का यह पूछना गलत है कि यह सही है या गलत।''उन्होंने शांत होकर आगे कहा, 'मैं इतना बड़ा नहीं हूँ कि उससे प्रश्न कर सकूँ।''

उन्होंने समर्पण को एक साधक के लिए तीव्रतम एवं सर्वाधिक बुद्‌धिमत्तापूर्ण रास्ता बतलाया है। श्रद्‌धालु शेष दुनिया को मूर्खों का एक समूह नजर आते हैं, लेकिन सबसे बुद्‌धिमान लोग हमेशा श्रद्‌धालु ही होते हैं। यह एक अलग तरह की बुद्‌धिमानी है जिसे तर्कशील मन कभी समझ ही नहीं सकते।''

यह स्पष्ट था कि जहाँ एक ओर सद्‌गुरु को मालूम था कि विजी अपना शरीर त्यागनेवाली थी, वहीं दूसरी ओर वह यह नहीं जानते थे कि ऐसा इतनी जल्दी होगा। वह कहते हैं, ''वह जाने को लिए दृढ़ संकल्पित थी। मैं उसे हमेशा

बताता था कि बारह वर्षों बाद अंततः हमारा अपना घर हो गया, एक बड़ी होती हुई बच्ची, हमारे जीवन में कुछ स्थिरता थी। लेकिन वह जाने पर ही अड़ी थी। और मैं जानता था कि मैं उसे रोक नहीं पाता। आखिर के कुछ महीने में उसकी साँस ही 'शंभो' हो गई थी। लेकिन मैंने सोचा शायद वह एक महीना बाद जाएगी। मुझे विश्वास था कि तब तक संस्कारीकरण हो चुका होगा।''

उन्हें याद है कि उसकी महासमाधि के कुछ दिन पहले जब वे ऊटी से लौट रहे थे, विजी, जो हमेशा की तरह 'शंभो' जप रही थी, अचानक रोने लगी। उसने उनका हाथ पकड़ लिया और कार रोकने के लिए कहा। जब उन्होंने कार रोक दी तो उसने कहा कि उसके जीवन में वही एक शंभो थे, जिन्हें वह जानती थी, और उनसे अपने सपने को सच करने में मदद की गुजारिश की। सद्गुरु ने ऊपरी तौर पर जवाब दिया कि भले ही वह शंभो को नहीं जानती थी, लेकिन शंभो निश्चित रूप से उसे जानते थे। ''तुम जो कर रहे हो, यदि तुम उसके प्रति निष्ठावान रहो तो निश्चित ही तुम्हें उसका अनुभव होगा और तुम उसे मेरे रूप से परे भी जान लोगे।'' उन्होंने बताया कि कोई भी उसके लक्ष्य को नकार नहीं सकता था। यह सुनकर उसे राहत सी मिली। ऊटी से आने के बाद वह अपने अभ्यास में ज्यादा उत्साहपूर्वक जुट गई।

लेकिन शायद विजी के महासमाधि लेने के निश्चय के पीछे एक और उद्देश्य था, अपने पति से ज्यादा जीवित रहने का डर। भारती कहती है, ''वह इस बात से भयभीत थी कि वह बयालीस वर्ष की उम्र में मर जाएँगे। मैंने उसे यह कहते हुए सुना था कि वह उनके बाद जीना नहीं चाहती थी।''

किसी को यह आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता कि सद्गुरु के स्तर का योगी विजी के इतनी जल्दी चले जाने के प्रति अनभिज्ञ था। वह कहते हैं, ''मुझे किसी बाधा की आशंका तो थी, लेकिन मैंने सोचा कि यह सामाजिक बाधा होगी।'' वह इस बात की ओर इशारा करते हैं कि सदियों से सामाजिक नियम-कायदे ध्यानलिंग की स्थापना की राह में पारंपरिक बाधा रहे हैं। ''इसलिए मैंने अपने आश्रम से जुड़े सभी लोगों को कहीं किसी तरह के झंझट में न पड़ने के लिए सावधान रहने, किसी का विरोध न करने की स्पष्ट चेतावनी दे रखी थी, क्योंकि मैं जानता था कि कुछ बाधा आने को है। मैंने सोचा कि मैंने अपने आसपास की स्थितियों को नियंत्रित कर रखा था...यद्यपि किसी स्तर से मैं जानता था कि बाधा आ रही थी। मेरे आसपास की परिस्थितियों, और उस समय मुझसे जो बातें प्रत्याशित थीं, उनसे मेरा सचेत बोध बाधित हो गया था।'' इसके अलावा, वह कहते हैं, ''विजी एक सधी हुई योगी नहीं थी, और उसका जाना उतना पूर्व निर्धारित नहीं था जितना यह संभव रहा होता। यद्यपि उसका जाना उसकी सचेत इच्छा थी किंतु जीवन ऊर्जाओं पर उसका प्रतिक्षण नियंत्रण नहीं था। लेकिन उसके जाने के अंतिम कुछ मिनटों में वह सतर्क थी और स्वयं का विसर्जन गहने के रूप में पड़ी हुई सभी धातुओं को हटाकर कर दिया। जब दैवज्ञता उतरती है तो आप उसे ग्रहण ही करते हैं।''

भले ही उसके पति को घटनाओं के क्रम का सुराग न मिला हो, लेकिन ऐसा लगता है कि ईश्वर ने उसकी एकांगी अभिलाषा के साथ साठगाँठ कर ली थी। सद्गुरु कहते हैं, ''उस दिन जिस तरह ऊर्जाएँ इस ग्रह पर गतिमान थीं, उस नजरिए से यह एक विशेष दिन था। उस दिन ग्रहों का अत्यधिक दुर्लभ पंक्तिबद्ध जमावड़ा था। आकाश में क्षणभर के लिए पूर्ण षष्टकोणीय तारे की अभिव्यक्ति हुई थी। यह रचना ठीक उसी दिन आती है, जहाँ तीन वाह्य ग्रह गुरु, यूरेनस और वरुण परस्पर संयुक्त हो जाते हैं। ऐसा योग दो सौ साल में एक बार निर्मित होता है। 23 जनवरी को ग्रहों का यह जमावड़ा कुंभ की पहली डिग्री पर हुआ, जिसमें सूर्य भी सम्मिलित हो गया और उन सबकी विपरीत दिशा में पूर्णिमा का चंद्रमा आ गया। ग्रह-नक्षत्रों की इस रचना को लंबे समय से चले आ रहे कुंभ के युग का उदय होने के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में भी देखा जा सकता है। यह थैपूसम भी है, एक ऐसा दिन, जिसे भूतकाल में बहुत से संतों ने स्वयं अपनी महासमाधि लेने के लिए चुना है।''

सद्गुरु की वाणी में अपने सर्वाधिक असंभावित शिष्य के प्रति परम हर्ष का पुट मिलता है, ''बतौर पति मैं सदमे और दु:ख में था। बारह वर्षों तक वह मेरी परछाईं बनकर रही। एक क्षण भी ऐसा नहीं होता था जब वह मुझसे अलग रहा करती। लेकिन बतौर गुरु, मुझे गर्व था। उसने अपनी महत्त्वाकांक्षा अपनी भावनाओं की सघनता के माध्यम से फलीभूत

कर ली। वह अपने प्रेम में समा गई और अपने शरीर को कोई हानि पहुँचाए बिना वह चली गई, अपने शरीर को पुराने वस्त्र की तरह उसने छोड़ दिया। जब कोई व्यक्ति पूर्ण चेतना में शरीर को बिना नुकसान पहुँचाए प्राण त्यागता है, वह व्यक्ति सही अर्थों में मृत्यु को प्राप्त होता है। अब वह प्राणी रूप में अस्तित्वान नहीं है। इसका अर्थ है वह सामान्य रूप से विलीन हो गई है। खेल खत्म हो गया—पूरी तरह।'' एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि विजी ने कोई व्रत या तप अपने जाने से पूर्व नहीं किया। सद्गुरु स्वीकार करते हैं, ''भले ही मुझे अपना ही शरीर त्यागना होता तो मैं इसके लिए तैयारी करता। मैं कम-से-कम चौबीस घंटे पहले से अन्न-जल त्याग देता। लेकिन उसने यह कार्य बिना प्रयास के, बिना किसी तैयारी के कर दिखाया। मैंने उसे साधना की इतनी सरल प्रक्रिया प्रदान की, लेकिन वह इसे इतनी ऊँचाईयों तक ले गई। यह बहुत दुर्लभ कार्य है।''

एक तैतीस वर्षीया, पूर्णत: स्वस्थ महिला का प्रयासहीन शरीर त्याग, बहुतेरों के लिए हैरानी की बात थी। लेकिन एक वास्तविक दु:ख भी था। अल्पभाषी श्रीनिवास उनकी याद में श्रद्धांजलि देते हुए कहता है, ''प्रेम की असामान्य मात्रा की क्षमतावान विजी एक सामान्य महिला थी।'' वह उन कई लोगों में एक है, जो उसे याद करते हैं। माँ कपूरी कहती हैं, ''वह सर्वाधिक प्राकृतिक व स्वाभाविक महिला थी। शुरू में उसके जाने पर मुझे क्रोध आया। मुझे आश्चर्य हुआ कि सद्गुरु ने उसे रोका क्यों नहीं। अब मुझे महसूस होता है कि शायद उसकी महासमाधि संभवत: सर्वोत्कृष्ट समय पर हुई। उसे आगे कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता था, क्योंकि सद्गुरु के क्रियाकलाप का पैमाना और महत्त्व कार्य बढ़ सकता था। लेकिन हमारे सभी के लिए उसके जाने से एक अपूरणीय क्षति हुई है।'' राजा कहता है, ''अब मुझे लगता है कि मैं एक महान् संगठन का हिस्सा हूँ, लेकिन उसने मुझे यह महसूस कराया कि मैं एक परिवार का हिस्सा था।''

विजी की अस्थियाँ उसके घर से सटे मंदिर में दफना दी गईं। बहुत से साधक अभी भी इस छोटे से सामान्य स्थल को अपना शांति का समय व्यतीत करने के लिए चुनते हैं। एक आश्रम रहवासी होडा कहता है, ''एक गुण है जो विशेष होता है। मैं उसे जानता ही नहीं था। लेकिन जब मैं वहाँ बैठता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि मैं उसे जानता हूँ। वहाँ एक भद्रता है, कुछ नम्र और शांति का महान् भाव है।''

इस बात को स्वयं सद्गुरु ने सत्यापित किया है। हालाँकि महासमाधि की धारणा का अर्थ वस्तुत: यह नहीं है कि व्यक्ति अवशेषहीन हो जाता है। वह कहते हैं कि किसी व्यक्ति की अच्छाइयों को भुलाया नहीं जा सकता। इस व्यक्ति के लिए अब शारीरिक दासता नहीं रही। उसका नाम विजया कुमारी है जिसका अर्थ है, ''विजय की बेटी—किसी भी प्राणी की संभवत, उच्चतम विजय उसी की है। लेकिन भले ही फूल न रहे, लेकिन फिर भी महक बनी रह सकती है। और इस फूल की महक तो सदा के लिए है। यह कभी समाप्त नहीं होगी। भौतिक महक समाप्त हो सकती है, लेकिन ऊर्जा की महक जिसकी हम बात कर रहे हैं, कभी भी समाप्त नहीं हो सकती। आश्रम के उस कोने में पूरी तरह अलग ऊर्जा पोषित है। यह अत्यधिक नम, अत्यधिक सूक्ष्म, अत्यधिक सुखकारी और खूबसूरत है। यदि आप कुछ ही देर के लिए वहाँ बैठें, तो आप एक तरह का शरीरहीन आभास पा सकते हैं। वह स्थान आधारभूत रूप से अनहद है। यह आपको धीरे-धीरे सूक्ष्म कर सकता है।''

एक अन्य अवसर पर, जब हम उनके घर के चारों ओर निर्मित आश्रम में घूम रहे थे, तभी उन्होंने कहा, ''उस महिला को आध्यात्मिक जीवन के विषय में कुछ भी पता नहीं था। उसके पास बड़ी उपलब्धियाँ भी नहीं थीं। वह जरूरत से ज्यादा सामान्य थी। जीवनभर वह समर्पण और उलझन, उलझन और समर्पण के झोंकों से गुजरती रही। जब कुछ देर के लिए उसने समर्पण के जादू पर अपनी पकड़ बनाई तो इसे इस तरह पूर्ण किया।''

उन्होंने यों ही फूल की एक कली उसकी समाधि की ओर उछाल दी। ''उसने मेरा घर तो खाली कर दिया, लेकिन हमारे दिल भर दिए।''



'स्वेच्छा से फल त्यागना पत्थरों के आघात कराना है'

समयाभाव, संकट, समाप्ति

विजी की महासमाधि एक विचित्र विडंबना है—उसके पति के लिए दु:ख और उसके गुरु के लिए विजय। और भाग्य-चक्र से, गुरु और जीवन साथी एक ही आदमी थे। गुरु के लिए भी यह अमिश्रित विजय नहीं थी क्योंकि जहाँ एक ओर विजी एक आदर्श शिष्य की तरह चली गई, वहीं दूसरी ओर इस घटना का समय इससे अधिक असुविधाजनक नहीं हो सकता था। उसके व्यक्तिगत सपने की प्राप्ति, उससे बड़े लक्ष्य के लिए बाधक सिद्ध हुई। ध्यानलिंग की स्थापना में अड़चन आ चुकी थी, जो उत्साह या कटिबद्धता के अभाव के कारण नहीं थी बल्कि इनकी अधिकता के कारण थी, सामाजिक अपरिपक्वता नहीं बल्कि आध्यात्मिक परिपक्वता का अतिरेक इसकी वजह थी। फल प्रत्याशा से पूर्व ही पक चुका था और उसके गिर जाने के अलावा दूसरा विकल्प भी नहीं रह गया था।

सद्गुरु के लिए इसका अभिप्राय व्यक्तिगत हानि के गहरे भाव को एक ओर रखकर, कई जन्मों के लक्ष्य-प्राप्ति पर पुन: जुटना था। उन्होंने कहा, ''विजी के महासमाधि प्राप्त करते ही हम फिर जहाँ के तहाँ आ गए। पच्चानवे प्रतिशत कार्य संपन्न हो गया था। एक सप्ताह में हम थोड़ा और काम करते, तो हम संस्कारीकरण पूर्ण कर लेते। लेकिन अब हम अटक गए।'' एक और घटक था, जिसके कारण यह कमी और बढ़-चढ़कर सामने आई। समय निकलता जा रहा था। उनतालीसवें वर्ष में सद्गुरु को मालूम था कि उन्हें और ज्यादा नहीं जीना था।

उन्होंने इस संभावना के लिए अपनी बेटी को पहले ही तैयार करना शुरू कर दिया था। उसकी शांति, स्वीकृति और समझ के अपवादजनक स्तर से स्वयं का भौचका रह जाना उन्हें याद है। ''उसकी माँ गुजर ही गई थी। मैं उसे घर वापस ले आया और कुछ दिनों तक अपने साथ रखा। जब तीन या चार दिनों बाद मैं उसे अपने साथ वापस स्कूल ले जा रहा था, मैंने देखा कि वह सहज थी। मैंने सोचा, जो हुआ है, शायद उसे इसकी समझ नहीं थी। शायद उसने इस बात को ग्रहण नहीं किया था। मैंने उससे पूछा, 'क्या यह अच्छा है कि विजी चली गई?'

''उसने कहा, 'मैं जानती हूँ वह चली गई। उसने मुझे बताया था कि वह चली जाएगी।'

''मैंने कहा, 'क्या तुम जानती हो कि तुम उसे दुबारा नहीं देख पाओगी?'

''उसने कहा, 'जग्गी, क्या मरे हुए लोग वापस आते हैं? मैं जानती हूँ वह वापस नहीं आएँगी।'

''तब मैंने पूछा, 'क्या तुम ठीक हो?'

''उसने कहा, 'मैं ठीक हूँ।'

''मैंने कहा, 'अगर मैं भी चला जाऊँ, तो ठीक है?'

''उसने कहा, 'मेरे बड़े होने तक ठहर जाओ, फिर चले जाना।'

'तभी मैंने सोचा, 'अच्छा, मेरे पास कोई सचमुच खूबसूरत निधि है।'''

अगले डेढ़ साल में, भारती ने अपने गुरु को कठिन दौर से गुजरते देखा। वह कहती है, ''जो संघर्ष उन्होंने किया मैं उसे भूल नहीं सकती।'' सबसे बड़ी जरूरत विजी का स्थानापन्न प्राप्त करने की थी। सद्गुरु ने कई साधकों पर प्रयोग किए, लेकिन कुछ हासिल नहीं हुआ। भारती को स्मरण आता है, ''उन्होंने कई लोगों को आजमाया, लेकिन वैसा कोई नहीं था। मैं यह भी जानती थी। मैं इसे महसूस कर सकती थी।''

तभी सद्गुरु को एक कठोर निर्णय लेना पड़ा। जिन तैयारियों से विजी गुजरी थी, किसी तीसरे व्यक्ति को उन से गुजारने का समय नहीं था।

उनके पास इस भूमिका को स्वयं निभाने के अलावा कोई और चारा नहीं था। वह कहते हैं, ''समय कम था। मुझसे

जुड़े हुए बहुत से लोग उच्च ऊर्जा की दशा में थे, लेकिन वह ऊर्जा की समुचित मानसिक परिपक्वता का आधार न था। संस्कारीकरण के लिए हमें तरल ऊर्जा की आवश्यकता थी। इससे आप क्या हैं, इसकी निर्धारित सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। यदि आप किसी व्यक्ति की ऊर्जा को तरल कर सकते हैं, तो वह परमाणु बम हो जाता है। लेकिन ज्यों ही आप यह करते हैं, तो लोग अपरिपक्व हरकतें करने लग जाते हैं। वे अपनी गोपनीयताओं के प्रति रक्षात्मक हो जाते हैं, वे अपने व्यक्तित्व के पहलुओं को संरक्षित करना चाहते हैं। यदि इसे कारगर करना है तो आपको अपने आपसे और अपनी विचार प्रक्रिया के बीच दूरी बनाकर रखनी होती है। मेरे साथ कई अच्छे लोग थे (ऊर्जा के अनुसार) लेकिन उनके दिमाग समुचित रूप से परिपक्व नहीं थे। अब भी वही बात है।''

विजी की भूमिका निभाने का तात्पर्य था उसके ऊर्जा शरीर को अपने शरीर में पुनर्निर्मित करना। यह पुनर्निर्माण इतना विस्तृत और पूर्ण था कि आनेवाले महीनों में कई लोगों ने विजी की उपस्थिति आश्रम के आसपास महसूस की थी। भारती इस बात को पुष्ट करते हुए कहती है, ''कई बार मुझे ऐसा लगा कि मानो विजी हमारे साथ थी। हम उसके शरीर और ऊर्जा की चिरपरिचित महक सूंघ रहे थे। लेकिन इसमें ऊर्जा की प्रचंड मात्रा की आवश्यकता थी, और ऐसा तब तक नहीं किया जाता जब तक यह पूरी तरह आवश्यक न हो। सद्गुरु के चरणों में बैठकर, कुछ भी असंभव नहीं लगता था।''

लेकिन प्रक्रिया में हर्जाना भुगतना पड़ा। पाँच घंटे की संस्कारीकरण प्रक्रिया के बाद सद्गुरु ऊर्जाहीन और शिथिल होकर बाहर आते थे। एक व्यक्ति की ऊर्जा से दो लोगों के शरीरों को सँभालने से उनके संसाधन रिक्त हो जाते थे। ''ग्यारह महीने के समय में मैंने पच्चीस से तीस वर्षों का समय बिताया।'' वह कहते हैं, ''मैं बूढ़ा और बीमार हो गया। हर तरह की भयंकर बीमारियाँ मेरे शरीर में थीं। जब अमेरिका में मेरा खून जाँच के लिये लिया गया, तो उन्हें विश्वास ही न हुआ...परिणाम ऐसे थे मानो मेरे शरीर में भयंकर बीमारियाँ थीं।''

जब भारती के गुरु प्रक्रिया समाप्त करने के लिए अवरोधों से आगे बढ़े तो भारती को कठिनतम व्यक्तिगत प्रक्रिया प्रणाली से गुजरना पड़ा। ''मैंने बड़ी साधना की। हम नहीं चाहते थे कि हमारे द्वारा निर्मित ऊर्जा क्षीण हो जाए। साथ ही, मैं उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य देख रही थी। यह गिरावट मैं देख रही थी। वह कमजोर और अक्षम हो जाएँगे। उनके गुर्दे फेल हो रहे थे, उनका यकृत क्षतिग्रस्त हो रहा था। उनके शरीर पर गाँठें हो गई थीं, उनका खून खराब हो चुका था।''

उस समय ली गई सद्गुरु की तसवीरों से यह साफ नजर आता है कि वह अचानक बूढ़े हो गए। ''उन अठारह महीनों में मैंने अपने जीवन के 20 से 25 साल खो दिए। आपको विश्वास ही न होगा। इस समय मैं बिलकुल ठीक होता, लेकिन यदि आप मुझे एक घंटे बाद देखते, मैं पूरी तरह चिकित्सीय तौर पर बीमार होता। केवल थका हुआ भर नहीं। चिकित्सीय तौर पर बीमार। आप मेरे खून का नमूना ले सकते थे और देखते कि सबकुछ गड़बड़ था। वे बताते कि मुझे कैंसर था। पंद्रह दिन के बाद वे जाँच करके पाते कि सबकुछ ठीक-ठाक था। यदि एक प्रक्रिया के लिए मैं यहाँ बैठता तो मेरे शरीर में बड़ी-बड़ी गाँठें आ जातीं। अगले तीन घंटे बाद आप देखते कि वे समाप्त हो जातीं। वह बड़ा अविश्वसनीय था। आपसे इस बात का यकीन करने की अपेक्षा नहीं है।''

इन शारीरिक रुग्णताओं से उन्हें एक बात संभाले हुए थी, वह यह कि संस्कारीकरण के पूर्ण होते ही वह शरीर त्याग देंगे। उनके शिष्यों के लिए यह तनावपूर्ण व कठिन दौर था। उन्हें मालूम था कि कोई बड़ा कार्य करने का प्रयास किया जा रहा था। लेकिन उन्हें यह भी मालूम था कि उनका अपने गुरु के साथ समय बहुत कम था। उनकी आँखों के सामने जब उनकी शारीरिक दशा तेजी से बिगड़ती तो वे देखते, चुप और अप्रभावी रहते। भारती कहती है, ''गड़बड़ी उनके दिन-प्रतिदिन के कार्य, उनकी हरकतों और पूरी तरह से शरीर पर नजर आती थी। कई बार असहाय-सी मैं उनके पास खड़ी रहती थी। कुछ सत्रों के बाद जब मैं उन्हें शारीरिक रूप से टूटी हुई हालत में पाती तो मुझे करने को कुछ सूझता ही नहीं था। कभी-कभी काफी कठिन परिस्थितियों में मुझे लगता कि ध्यानलिंग को पूर्ण करने के लिए सद्गुरु को जाना पड़

सकता है। लेकिन ऐसे विचार बहुत देर तक नहीं टिकते थे। मेरे अंदर कहीं से वह आवाज आती थी कि हमारे साथ सद्गुरु और ध्यानलिंग दोनों रहेंगे।''

लेकिन अगले अठारह माह में कुछ अपेक्षाकृत मनहूस और ज्यादा व्याकुल कर देनेवाली बातों से आश्रम के रहवासी और कोयंबतूर के निवासियों का ध्यान इसी ओर लगा रहनेवाला था—कुछ ऐसा जिसने इशा फाउंडेशन की नींव तक हिलाकर रख दी। विजी के जाने के बाद एक और संकट आ गया, लेकिन इस समय इसकी उम्मीद किसी को नहीं थी। बहुप्रतीक्षित सामाजिक विरोध जो कि जितना उपेक्षित था, उससे कहीं अधिक बर्बर और उग्र था। महीनों पहले वेंकैया बाबू ने इसकी भविष्यवाणी कर दी थी। सद्गुरु को भी इसका आभास था। ''मुझे अंतर्ज्ञानवश यह मालूम था कि यह होनेवाला था, लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था कि यह कब और कहाँ से शुरू होगा।''

विजी की महासमाधि के समय उन्होंने संभावित समस्या की ओर इशारा किया था। उन्होंने अपने साधकों को बताया था, ''यहाँ हम अलग वातावरण में रह रहे हैं। हमारे लिए यह स्थिति काफी स्वाभाविक है। लेकिन बाहर समाज में इस संपूर्ण घटना पर बहुत से संदेह और शक खड़े होंगे।''

वह सही कह रहे थे। इसकी शुरुआत तब हुई जब एक साधक के चाचा, किराये के गुंडे-बदमाशों के साथ मिलकर आश्रम पर टूट पड़े और उस युवक को जबरदस्ती घर ले गए। यह कहानी बड़ी दिलचस्प है; वह साधक आश्रम में रहना चाहता था; उसका परिवार इसके खिलाफ था। यह अपने आप में कोई नई घटना नहीं थी। नए साधकों एवं दीक्षा लेनेवालों के परिवार प्राय: विरोध में ही रहते थे। इसमें एक कोयंबतूर सोसाइटी का भी हाथ था। सद्गुरु के तेजी से बढ़ती शिष्यों की संख्या के प्रति संदेह था। सद्गुरु ने उस परिवार को साधक (एक 32 वर्षीय युवक) से विचार विमर्श कर उसकी सहमति से उसे घर ले जाने के लिए कहा था। लेकिन जब दलीलों और धमकियों से फर्क न पड़ा, तो उस परिवार ने ताकत का सहारा लेने का निश्चय किया।

बाद में उस साधक ने प्रकट किया कि कई महीनों तक उसे नशीली दवाएँ देकर रखा गया और उसे कुछ पता नहीं था कि उसके आसपास क्या हो रहा था। जब पुन: आश्रम में रहने के लिए उस साधक का निश्चय टस से मस न हुआ तो परिवार ने आक्रमक रवैया अपनाने का निर्णय ले लिया। उसके चाचा ने एक प्रभावशाली परिवार की मदद से चरित्र हत्या अभियान शुरू कर दिया। अपनी बेटी की अचानक मौत से हैरान और सदमे में विजी के माता-पिता भी उस व्यक्ति के प्रभाव आ गए। घटनाएँ तीव्र क्रम में जारी रहीं। पुलिस में सद्गुरु के खिलाफ अपनी पत्नी की हत्या करने की शिकायत दर्ज कराई गई। (विडंबना की बात है कि उसकी मौत को आठ महीने बीत चुके थे।) दहेज प्रताड़ना के आरोप लगाए गए। अभियान तीव्र और ठीक-ठीक निशाने पर था। इस लड़ाई में मीडिया भी कूद पड़ा, एक तमिल पत्रिका ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया।

इस उपद्रव के दौरान सद्गुरु विदेश में थे। लेकिन उन्हें तनिक संदेह नहीं था कि इशा के इतिहास का सबसे काला समय आ गया था। पिछले दशक की सावधानी से निर्मित की गई ख्याति, लगता था, कुछ ही सप्ताहों में तहस-नहस हो जाएगी। वह कहते हैं कि व्यक्तिगत तौर पर उन्हें बदनामी की कतई चिंता नहीं थी। लेकिन फिर भी दहेज हत्या के आरोप से उनके जैसा अत्यधिक स्वतंत्र व्यक्ति, जिसे अपनी पत्नी के काल-कवलित हो जाने का गम था, भी अछूता न रहा सका। लेकिन उनका ध्यान एक ही बिंदु पर केंद्रित रहता था। और वह जानते थे कि ध्यानलिंग के लिए इससे ज्यादा बुरा समय और कभी नहीं हो सकता था। ''हमें परेशानी की आशंका तो थी, लेकिन यह हर तरह से, हर दिशा से आ रही थी। हमने एक साल या अठारह महीने का समय प्रतिदिन के संकट प्रबंधन में बिताया। जब मैं संकट कहता हूँ तो मेरा मतलब यह है कि इन लोगों ने ऐसी स्थिति निर्मित कर दी थी जिससे हमारा अस्तित्व ही दाँव पर लगा हुआ था।''

कदम उठाने का समय आ गया था। सद्गुरु कहते हैं कि वह आश्रम लौट आए और उस कार्य में जुट गए, जिसे करने के लिए वह प्राय: अनिच्छुक रहते हैं। ''मैंने उन्हें निबटाया'', वह बड़े रहस्यात्मक तरीके से कहते हैं। एक ऐसा योगी जिसकी क्रियाविधि में अदृश्य और गुप्त दोनों सम्मिलित हैं, किसी को बिलकुल पता नहीं कि इसका क्या मतलब

है। लेकिन इससे एक संकेत तो मिलता ही है कि उन्होंने इस षड्यंत्र में इस तरह हस्तक्षेप किया, जिसे वह सामान्य परिस्थितियों में कभी न अपनाते। थोड़े समय में ही निहित स्वार्थ (जो रोष भड़काने और बदला लेने में लगे थे।) वालों को अपने स्वयं के जीवन में अप्रत्याशित विनाशकारी स्थितियों का सामना करना पड़ा। शिकायत वापस ले ली गई और यह अभियान अपनी स्वाभाविक मौत मर गया। ''और आज दस वर्षों से कम समय में'' सदगुरु अपनी आँखों में खुशी की चमक लिए हुए कहते हैं, ''हम तमिलनाडु की धड़कन हैं। हमारे कार्य की एकाग्रता इसी राज्य में है, और जो निहित स्वार्थ थे, वे शांत पड़ गए हैं।''

जहाँ एक ओर सद्गुरु को मानव मनोवृत्तियों का गूढ़ ज्ञान है, वहीं दूसरी ओर उन्हें कुछ ऐसे बाध्यकारी कृत्यों पर आश्चर्य होता है जिसकी क्षमता मानव प्रजाति में है। वह कहते है, ''ईर्ष्या एक ऐसा भाव है, जिसे मैं कभी नहीं समझ सका। यह एक ऐसा भाव है जिसे मैंने कई जन्मों के दौरान बहुत ज्यादा आकर्षित किया है।'' उनके आत्मकेंद्रण का भाव और दूसरों की धारणाओं की परवाह न करने के भाव के कारण ही लोगों को भय और क्रोध आता है। लेकिन बड़े करीब से इस भाव का सामना करने के बाद, वह कहते हैं कि इसका उनके लिए कोई अभिप्राय नहीं है। ''यह (ईर्ष्या) मुझे अंतरंग नहीं है। मैं कभी नहीं समझ पाया कि लोग ईर्ष्या को अपने जीवन में इतना बड़ा स्थान कैसे दे देते हैं कि वे इसके कारण किसी के विनाश पर उतर आएँ।''

इशा आध्यात्मिक प्रक्रिया में कुछ भी उबाऊ-सा नहीं है और वह जानते हैं कि इससे उन्हें अत्यधिक खतरा हो सकता है जो सप्ताहांत में अपेक्षाकृत विश्रामवाली आध्यात्मिकता को प्राथमिकता देते हैं। ''मैं सांत्वना देनेवाले व्यवसाय से नहीं जुड़ा हूँ जिसे हमेशा दुनिया में प्रशंसा मिलती है। जब आप जीवन में आधारभूत रूपांतरण की बात करते हैं, तो दुनिया में भारी प्रतिरोध मिलता है। यदि आप कठोर आध्यात्मिकता का पालन करना चाहते हैं तो यह बहुत कठिन है, क्योंकि यह मनुष्य में आमूलचूल रूपांतरण पर आधारित है। यह आध्यात्मिकता ऐसे लोगों के लिए नहीं है जो केवल अच्छा महसूस करना चाहते हैं, यह तो ऐसे लोगों के लिए है जो सचमुच एक आयाम से दूसरे आयाम में जाने की इच्छा रखते हैं। इसलिए सामान्यत: यह लोकप्रिय नहीं होती। बहुत से महान् गुरुओं ने बड़े आंदोलन इसीलिए नहीं किए क्योंकि जब आप एक विशाल आंदोलन शुरू करते हैं, तो आपको समझौता करना पड़ता है। जब शिव यहाँ थे, या जब अगस्त्य यहाँ थे, तो इस तरह का आध्यात्मिक रूपांतरण बड़े पैमाने पर होता था। लेकिन पिछले कुछ हजार वर्षों में ऐसी कठोर आध्यात्मिक प्रक्रिया ने गति नहीं पकड़ी। किसी तरह समर्पण, चालाकी और कृपा की बड़ी मात्रा से हमने इतना हासिल किया है। लेकिन यह बहुत दुर्लभ है।''

इशा के स्वयंसेवियों के लिए यह खासतौर पर कसौटी पर कसे जाने का समय था। उनमें से कई ने तो माता-पिता की इच्छाओं को नकार दिया और इस आंदोलन से पूर्णकालिक तौर पर जुड़ने के लिए पारिवारिक दायित्वों से पल्ला झाड़ लिया। लेकिन अब उनकी पसंद का सार्वजनिक जाँच परीक्षण कराया जा रहा है। पंथवाद, दुराचारी जीवनशैली और नशीली चीजों के प्रयोग के आरोप लगाए जा रहे हैं। राजा को स्मरण है, ''तभी हमने आक्रामक होने का फैसला लिया। अभी तक तो हमने साधना और आध्यात्मिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया था। अब हमने लोगों तक पहुँचकर यह बताने के लिए कि हमारे पास क्या है, समन्वित प्रयास करने का फैसला किया। हम लोगों के संपर्क में आना चाहते थे, हम क्या थे, हमारे पास उनके लिए क्या है, हम क्या कर सकते थे, यह उन्हें बताना चाहते थे। इसके विकल्प को जड़ से समाप्त किया जाना था।''

राजा और उसके इशा शिक्षकों के लिए यह प्रणाली पहले की अपेक्षा ज्यादा श्रमसाध्य थी। प्रत्येक शिक्षक के द्वारा तीन घंटे प्रति कक्षा की दर से तीन कक्षाएँ संपन्न की जाती थीं। संपूर्ण तमिलनाडु में प्रति साठ किलोमीटर में एक कक्षा संपन्न की जाती थी। प्रत्येक कार्यक्रम तेरह दिनों का होता था। ''कुछ रातों के दौरान हमें मात्र दो या तीन घंटे ही सोने को मिलता था। और जब एक के बाद दूसरे क्रम में चार कार्यक्रम होते थे, तो मैं दो-दो महीने घर नहीं आता था।''

कार्यक्रम में भाग लेनेवालों के संदेहों का सामना करना सरल नहीं था। पचास लोगों की कक्षाओं में दो लोग ऐसे होते

थे जो प्रश्न किया करते थे। राजा कहता है, ''वे सभी प्रश्न गुरु की विश्वसनीयता और नशीली दवाओं व सेक्स की अफवाहों के होते थे। यह बड़ी चालाकी का काम था।'' वह कहता है, ''दो उपद्रवी प्रतिभागियों का मतलब यह हो सकता था कि आपको शेष अड़तालीस की खोना पड़े। लेकिन शिक्षक निश्चयी तौर पर शांत करते और हर प्रश्न का उत्तर स्वाभाविक सच्चाई के साथ देते।''

शिक्षकों की कटिबद्धता उनके सम्मान का कारण बन जाती। वे स्थानीय साधकों के परिवारों के साथ रहते और उनकी अखंडता उन्हें स्पष्ट होती जाती जो उनसे करीब से बातें करते। धीरे-धीरे यह बात फैल गई कि इशा के साधक वस्तुत: जो कहते हैं, वह करते हैं। राजा कहता है, ''हमें तीन से चार दिन लगे लेकिन धारणाओं का उफान बदल गया।''

वह बताता है कि कैसे एक नाटकीय परिवर्तन के कारण इशा का स्टिंग ऑपरेशन करनेवालों में एक पत्रकार ने कई वर्षों के बाद ध्यान कार्यक्रम में हिस्सा लिया। यह वाकया 2001 में चेन्नई में हुआ। ''मुझे बताया गया कि वह भाग लेनेवालों में शामिल था। मैं उसकी उपस्थिति के प्रति सचेत था लेकिन मैंने उस पर कोई खास ध्यान नहीं दिया। तेरह दिवसीय कार्यक्रम के अंत में जब मैं चेन्नई से ट्रेन में सवार होने जा रहा था, वह मेरे पास पहुँचा, बहुत क्षमा-प्रार्थना करके रोने लगा। मेरी आँखों में भी आँसू आ गए। आज वर्षों बाद हम अच्छे मित्र हैं।''

इसी समय सद्गुरु और दो सौ साधक कुडप्पा के सोमेश्वर मंदिर पहुँचे। उस समूह को मालूम था कि उस मंदिर का उनके गुरु से विशेष संबंध था। श्री पालिनी स्वामी वहाँ थे। सद्गुरु श्रीब्रह्मा ने अपने जीवन के अंतिम महीने वहीं बिताए थे। इस यात्रा का स्पष्ट रूप से गहरा महत्त्व था। उनमें से कई लोगों ने अनुमान लगाया कि इसका उद्देश्य उनकी यात्रा के दौरान जुड़ गए कर्मों को काटना भी था। माँ कपूरी कहती है, ''मंदिर में शिवलिंग को अर्पित करने के लिए सद्गुरु एक सोने का सर्प भी ले गए थे।'' वह बताती है कि कुडप्पा में स्थानीय लोगों द्वारा भावमय व हार्दिक स्वागत किया गया।

लेकिन अब एक और चुनौती सामने आ गई। जब सद्गुरु मंदिर के पूजास्थल पर पहुँचे तो वहाँ का पुजारी अचानक उनके विरुद्ध हो गया। आपत्तियों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की गई। ''वे कहते थे, मैं ब्राह्मण नहीं था, वे अचानक जाति, गोत्र, कुल इत्यादि के विषय में बात करने लगे और कहा कि यदि मैं प्रवेश करता तो लिंग समाप्त हो जाता'', सद्गुरु कहते हैं, ''मंदिर के न्यासधारी ने उनसे तर्क-वितर्क करने की कोशिश की। उसने कहा, देखिए यह आदमी एक चढ़ावा लेकर आया है, उसका इस मंदिर से पुराना संबंध है, उसे अंदर आने दो। उसने यह भी कहा कि मेरा गोत्र शिव है। लेकिन ब्राह्मण लोग अडिग थे। तो यह भारी तर्क-वितर्क वहाँ चल रहा था। मैं यह सब देख रहा था, मेरे होंठों पर मुसकान थी। एक ओर यहाँ यह मंदिर और इसकी मेरे लिए अहमियत थी, दूसरी ओर ये लोग थे जो वेतन के लिए कार्य करते थे, और मुझे बता रहे थे कि मंदिर में प्रवेश करने का मेरा कोई अधिकार नहीं था। यह सब ढोंग-तमाशा देखते हुए मैं वहाँ खड़ा रहा लेकिन मैं कमजोर भी नहीं पड़ रहा था। और तभी अचानक भारती क्रोध से तमतमा गई और उन लोगों के समूह को चीरती हुई अंदर चली गई।''

माँ कपूरी को वह दृश्य बड़ी स्पष्टतापूर्वक याद है, ''भारती को मैंने इस तेवर में पहले कभी नहीं देखा। उसने पुजारियों को कह दिया यदि वे आड़े आए तो उन्हें इसके परिणाम भुगतने पड़ेगे। वह वस्तुत: यह कह रही थी कि अब उन्हें आने दो वरना! सभी पुजारी भाग खड़े हुए। अब यह किसी को नहीं मालूम कि वे डर के भागे या किसी और कारण से। यह मंदिर सद्गुरु और उनके साधकों को ऊर्जा से ओतप्रोत तीन दिनों के लिए उपलब्ध रहा।'' सद्गुरु कहते हैं, ''हमने शिव की पूजा की। और स्थिति बिलकुल विस्फोटक थी। वे अलग से दिन थे। मैं फिर कभी स्थिति को इतना ज्वलंत नहीं बनाऊँगा।''

अंतत: नाराज पुजारियों को न्यासधारी और कलेक्टर द्वारा मनाया गया और बहला-फुसलाकर मंदिर के भीतर लाया गया कि उन्हें अशुद्ध कर दिए गए शिवलिंग के शुद्धिकरण कर्मकांड का खर्च बतौर क्षतिपूर्ति दिया जाएगा। जहाँ एक

ओर साधकों के समूह को वह दिन भारती के क्रोध के कारण याद है, वहीं दूसरी ओर सद्‌गुरु उसे किन्ही और कारणों से भी याद रखते हैं। वह कहते हैं, ''वह एक बहुत बड़ा मजाक था क्योंकि एक जन्म पहले बिलकुल ऐसा ही हुआ, जब सद्‌गुरु श्रीब्रह्मा और विभूति ने मंदिर के भीतर प्रवेश किया था। तब भी ब्राह्मणों को आपत्ति हुई थी। लेकिन जब उन दो आदमियों ने जो उस समय क्रोध से जल रहे थे—उनकी ओर देखा तो वे भाग खड़े हुए। और यहाँ वही बातें भारती पुन: कर रही थी। मुझे जोर की हँसी आई। वही स्थिति पुन: दुहरायी जा रही थी।''

किसी को भी पूरी तरह मालूम नहीं है कि ऐसा सोमेश्वर मंदिर जाने के कारण हुआ था। लेकिन माँ कपूरी कहती है कि ध्यानलिंग के मार्ग में आनेवाली बाधाएँ बहुत हद तक समाप्त हो गईं। ''व्यक्तिगत स्तर पर भी हमारी आध्यात्मिक यात्राएँ अपेक्षाकृत सरल लगीं। स्थितियाँ सामान्य होने लग गईं।''

इशा आंदोलन के पहले व्यस्ततापूर्ण दशक का स्मरण करते हुए सद्‌गुरु कहते हैं, ''हमारे अस्तित्व के प्रथम दस वर्षों में, लोगों ने हम पर पत्थर फेंके। लेकिन लोग पत्थर इसलिए फेंकते हैं क्योंकि अचेतन में उन्हें ज्ञात होता है कि आपके परिणाम मूल्यवान हैं।'' वह आगे कहते हैं, ''फल देना पत्थर फेंके जाने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि फल पक्षियों, जानवरों और लोगों को भी आकर्षित करते हैं, केवल पत्थरों को नहीं। जो लोग पत्थर फेंकते हैं वे आपको कम नहीं आँकते। वे वही करते हैं, जो वे सबसे अच्छा जानते हैं—पत्थर फेंकना।'' कुछ ठहरने के बाद वह कहते हैं, ''और यदि आप अपने फल जान-बूझकर गिरा देते हैं, तो पत्थरों की संख्या कम-से-कम हो जाती है।''

शायद यही बात थी। एक ऐसा ख्वाब जिसका लक्ष्य सभी को स्व-रूपांतरण की उपलब्धि कराना था, जिसे स्थगित तो किया जा सकता था, लेकिन खत्म नहीं। सदियों से इसके फलित होने का इंतजार कर चुकने के बाद, इसे अब और नकारा नहीं जा सकता था। पत्थर तो यात्रा के हिस्से थे। लेकिन ये ऐसे वृक्ष के लिए कोई अहमियत नहीं रखते जो अपने फल बाँटना चाहता है, रोकना नहीं। किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाना था। हर किसी को बुलाया गया, हर किसी को चुना गया। ध्यानलिंग का समय आ गया- सा लगता था।

जिन्होंने इस प्रक्रिया को देखा, वे जान गए कि वे फिर वैसे ही नहीं रहेंगे। एक ब्रह्मचारिणी कहती है, ''यह आनंददायक क्षण था।'' उसकी आँखें इसका स्मरण करने से चमक उठती हैं और वह कहती है, ''ऊर्जा का स्तर कल्पना से परे था। हमें मालूम नहीं था कि हो क्या रहा था, लेकिन हम जानते थे कि हम किसी विशाल कार्य में हिस्सा ले रहे थे।''

शायद इस उपलब्धि की विशालता तभी स्पष्ट होती है, जब हम सद्‌गुरु को इसके पूर्व के प्रयासों के विषय में बताते हुए सुनते हैं, जो आपदाकारी और व्यर्थ सिद्ध हुए। तीन जन्मों के उनके अपने समन्वित प्रयास के अलावा एक और नाटकीय व तीक्ष्ण कहानी उस ध्यानलिंग की है जो लगभग एक हजार वर्ष पहले की घटना है। यह मध्यप्रदेश राज्य के भोपाल शहर के करीब स्थित भोजपुर की है। चौदह लोगों—सात पुरुष, सात स्त्री—को इस महत्त्वाकांक्षी योजना के लिए कई वर्षों में तैयार किया गया था। फिर भी संस्कारीकरण के अंतिम चरणों में, इसके पूर्ण होने की एक शाम पहले विजी की शताब्दियों बाद की महासमाधि की तरह ही एक स्त्री ने अपना शरीर त्याग दिया। सदगुरु ने बताया, ''शरीर त्यागने की आकांक्षा बहुत अधिक होती है। इस स्थिति में अपने शरीर को छोड़ने की तत्परता अत्यधिक होती है, क्योंकि ऐसे में आपके पास एक ऐसा अवसर होता है जिसमें शरीर के साथ संपर्क इतना न्यनूतम रहता है कि थोड़े ही प्रयास से आप शरीर छोड़ सकते हैं। यह पूर्णरूपेण विलयन है। शायद इसमें अंत देखने का सुखद अहसास भी था। उस औरत का प्रयास शिथिल पड़ गया, उसकी एकाग्रता अंतिम छणों में डगमगा गई और लक्ष्य चूक गया।

''इस प्रक्रिया का नेतृत्व करनेवाला योगी निराश हो गया, लेकिन उसने हार नहीं मानी।'' सदगुरु कहते हैं, ''उसने इडा और पिंगला का प्रयोग करते हुए पुरुष और स्त्री की भूमिका स्वयं निभाने की सोची जिससे इस शरीर क्षेत्र पर विकट दबाव पड़ता है। उसने यह भूमिका निभाई और उसने प्रक्रिया पूरी कर ली होती लेकिन थोड़ा काम ही रह गया था।'' यहाँ पुन: इशा जैसा ही परिदृश्य था। लक्ष्य लगभग नजर आ रहा था, तभी एक स्थानीय आक्रमण हुआ। आगे हुई भिड़ंत

में उस योगी का बायाँ पैर कटकर अलग हो गया। अब उसकी इडा बेकार हो चुकी थी और संपूर्ण प्रक्रिया एक बार फिर पूरी होते-होते रह गई।

यह स्थिति बड़ी निराशाजनक थी। इस कार्य के लिए बड़ी द्रुत गति से एक अन्य औरत को प्रशिक्षित किया गया। अब यह निश्चय किया गया कि योगी और वह औरत अपने-अपने शरीर त्यागकर लिंग में समाहित हो जाएँगे, जिससे संस्कारीकरण पूर्ण हो जाएगा। इसके अलावा कोई विकल्प ही नहीं था। उनके ऊर्जा से उत्सर्जित रहने के दौरान चक्रों को बंद करने का कार्य किसी एक शिष्य को दे दिया गया। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य था, चक्रों को बंद किए बिना ऊर्जा तितर-बितर हो जाती।

दृश्य तैयार कर दिया गया। इसमें भाग लेनेवाले पूरी तरह से तैयार थे और तभी फिर चूक हो गई। चक्र बंद करने के प्रभारवाला शिष्य इस स्थिति से अभिभूत हो उठा। उसके स्नेही गुरुजी को शरीर छोड़ते देखकर सामान्य और सतर्क बने रहना आसान न था। सद्गुरु कहते हैं, ''यह स्थिति बहुत ही अभिभूत करनेवाली और प्रबल थी। तुम्हारे गुरु, तुम्हारे स्वामी, तुम्हारे जीवन और तुम्हारी साँस ने अपना शरीर छोड़ दिया। तुम यह सब देखते हुए वहाँ बैठे हो। यह तो अति ही थी। वह ऐसा न कर सका। और इसलिए शिष्य हिचकिचा गया, चक्रों को समय पर बंद न किया जा सका और बड़े दु:ख की बात है, लिंग का संस्कारीकरण अधूरा ही रह गया।'' सद्गुरु कहते हैं, ''देखते ही देखते लिंग में लंबवत् दरार पड़ गई...सारी योजना धरी रह गई। यह पचानवे प्रतिशत पूरी हो चुकी थी, किंतु यह इसका दु:खद रूप है। दो लोगों ने अपनी जानें गवाँ दीं। उन्होंने इस पर काफी कार्य कर रखा था, लेकिन यह संपन्न न हो सका...लिंग वैसा ही है जैसा था, काफी शक्तिशाली, लेकिन इसका रूप कुछ विकृत हो गया है। इससे ऊर्जा समाप्त नहीं हो रही।''

यदि अभिमंत्रित करके इसका संस्कारीकरण किया गया होता तो यह समाप्त हो चुकी होती। एक हजार सालों का समय बहुत होता है, लेकिन यह (ऊर्जा) समाप्त नहीं हुई है। लिंग अभी भी अपूर्ण और खंडित पड़ा हुआ है।

ध्यानलिंग के संस्कारीकरण के समय जब सद्गुरु भारती के साथ भोजपुर पहुँचे तो उन्होंने कहा कि उनके मेरुदंड में भयंकर दर्द हो रहा था, जबकि उस समय वह उस मंदिर से लगभग आठ किलोमीटर दूर थे। जब वे मंदिर पहुँचे तो उनका बायाँ पैर अचानक सुन्न पड़ गया, और उन्हें कार से बाहर निकलने में कठिनाई हो रही थी। भारती के लिए लिंग इतना शक्तिशाली अनुभव था कि उसने तो लगभग अपना शरीर ही छोड़ दिया था। उसने सोचा कि वह कुछ ही मिनटों से ध्यानावस्था में है, किंतु पौन घंटा बीत चुका था। सद्गुरु को उसके आज्ञा चक्र पर प्रयास करके उसे वापस लाना पड़ा। दोनों ने अपने-अपने तरीके से इस खंडित और अपूर्ण लिंग के दु:खद इतिहास का अनुभव किया।

सद्गुरु ने बताया कि भोजपुर के लिंग की त्रुटियों को दूर करने का कार्य एक नया लिंग तैयार करने से भी ज्यादा चुनौती भरा रहा होता। इसके अलावा यह मंदिर पुरातत्व विभाग के कब्जे में था। इसमें किसी तरह की छेड़छाड़ पर भारी आपत्तियाँ हो सकती थीं। सद्गुरु और भारती को वहाँ से जाते समय यह अहसास बड़ा बेचैन कर रहा था कि भोजपुर के विकृत लिंग की कहानी अपने आपको पुन: दुहरा सकती है। इसने लगभग दुहराया ही था।

दर्ज इतिहास में अविश्वसनीय रूप से दुर्बोध यौगिक प्रक्रिया के संबंध में सद्गुरु का ध्यानलिंग का उल्लेख सर्वाधिक बोधगम्य है।

वह बताते हैं कि इसका उद्देश्य एक ऊर्जा रूप निर्माण करना था जिसमें सात चक्र अपनी-अपनी सर्वोच्च दशा में क्रियाशील हैं।

मानव के भीतर चक्र उनके कार्मिक तत्व से यथास्थान में कायम रहते हैं। किंतु ध्यानलिंग के लिए उन्होंने स्पष्ट कर रखा था कि किसी भी कार्मिक तत्त्व का प्रयोग नहीं किया जाना था। और फिर भी इसके बिना चक्र बंद नहीं किए जा सकते थे, जिसका तात्पर्य यह होता कि संपूर्ण ऊर्जा बिखर जाती। इसलिए इसमें तीनों प्रतिभागियों के प्राण तत्व के प्रयोग से चक्रों को बंद करने की चुनौती थी, हालाँकि इसमें कार्मिक तत्व की दृढ़ता का अभाव था।

उन्होंने बाद में बताया, ''यदि संस्कारीकरण में सम्मिलित अन्य दो लोग मेरे साथ होते तो मैंने इन्हें काफी सहजता से

बंद कर दिया होता। चूँकि एक व्यक्ति का अभाव था इसलिए तीन अलग-अलग शरीरों से बिना कार्मिक तत्व का प्रयोग किए प्राण तत्व के तीन धागे निर्मित कर उन्हें लेकर बुनना और एक निश्चित तरीके से बाँधना कठिन था... वस्तुत, ये तीन धागे नाड़ियाँ थीं, एक भारती की, एक मेरी और एक अन्य जो मेरी ही थी लेकिन विजी के पक्ष में तैयार की गई थी। किसी के शरीर (सूक्ष्म) तंत्र से नाड़ी लेना क्षतिकारक हो सकता था। इसे सावधानी से किया जाना था और क्षति को सीमित करने के लिए दिशा-निर्देशों का पालन करना था।''

उनकी स्वयं की एक से अधिक भूमिकाओं के कारण, क्षति को पूरी तरह टालना सरल नहीं था। इसका परिणाम यह था कि उनका शरीर बहुत-सी छोटी और बड़ी व्याधियों से पीड़ित हो गया। वह धीरे से कहते हैं, ''मुझे संगीत बजाने की इच्छा नहीं होती थी। शुरू-शुरू में मैंने सोचा कि इसमें चौदह लोगों की आवश्यकता होगी और मैं इसका संचालन करूँगा। लेकिन यहाँ तो संगीत बजाकर ही मैंने इसे समाप्त कर दिया। और विजी के जाने के बाद मुझे दोहरा संगीत बजाना पड़ता था। एक ही समय में दो वाद्य यंत्र।''

ऊर्जाओं को जोड़ने के वास्तविक कृत्य के अतिरिक्त जिसमें कुछ कर्म की मात्रा जरूरी थी, ध्यानलिंग में किसी अन्य व्यक्तिगत कर्म का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रत्येक चक्र को स्थापित करके इन्हें बंद कर दिया गया है, जो व्यवस्थित रूप से ऊपर से नीचे घूम रहे हैं। यद्यपि ऊँचे चक्रों को बंद करने की प्रक्रिया अधिक सूक्ष्म थी, फिर भी नीचे के चक्रों में अधिक भौतिक मेहनत लगी। सद्‌गुरु ने बताया, ''प्रमुख चुनौती नीचे के चक्रों के स्वाधिष्ठान और मूलाधार में थी। चूँकि एक व्यक्ति की कमी थी, इसलिए इस प्रक्रिया में मेरे शरीर पर विषम प्रभाव पड़ा, और मेरे मूलाधार और स्वाधिष्ठान कमजोर पड़ गए। अनुभव ऐसा लगता था कि मैं किसी भी क्षण जा सकता था।'' राजा उनके साथ चेन्नई गया जहाँ उन्होंने एक विशेष प्रकार के पत्थर को लिंग के लिए चुना। संस्कारीकरण का अधिकतर कार्य ताँबे के सरियों से किया गया, जिन्हें सद्‌गुरु ने अपने घर में रखा था। राजा कहता है, ''वहाँ खड़े लोगों को मालूम ही नहीं था कि क्या हो रहा था। हम यहाँ-वहाँ बैठकर उन्हें पत्थर के लिंग की स्थापना का निरीक्षण करते हुए देखते थे। लेकिन जब प्रक्रिया प्रारंभ हुई—जो सामान्यतया देर रात में होती थी—हमें जानने में देर न लगी। ऊर्जा काफी उच्च होगी। उन्होंने उस समय स्वयं को एक सैनिक की भूमिका में होना बताया, विश्वासपात्र लेफ्टिनेंट, जिसे होनेवाले कार्य की पूरी जानकारी नहीं थी, लेकिन उसे शत्रुवत दुनिया से अपने गुरु के मिशन की रक्षा के लिए जान लड़ा देनी थी।''

इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल, भारती को भी इससे जुड़ी तकनीकियों का सुराग नहीं मालूम था। जो कुछ वह देख रही थी वह इतना ही था कि वह संचालक के प्रभार में थी। ''मुझे याद है कि लिंगरंध्रम—ताँबे की ट्यूब जिसमें पारा भरा हुआ था और जिसे सातों चक्रों के गुणों से ऊर्जायुक्त किया गया—जिसे लिंगम में प्रवेश कराकर, संस्कारीकरण पूर्ण होने के पहले बंद किया जाना था। यह एक बड़ा कदम था। प्रत्येक चक्र को सघन साधना से ऊर्जावान किया गया, जो कई दिन चलती थी। हम रात और दिन के प्रति विस्मृत भाव धारण किए हुए थे क्योंकि ऐसी अवर्णनीय ऊर्जा की स्थितियाँ घटित होती थीं। विविध ऊर्जाएँ मेरे चक्रों और नाड़ियों में उछलती और नृत्य करती थीं जिससे मेरा शरीर फटा जा रहा था। प्रत्येक चक्र को ऊर्जाशील करने के बाद सद्‌गुरु उस प्रक्रिया के बारे में ब्रह्मचारियों और आश्रमवासियों को बतलाते थे। इन सत्संगों में शुद्‌ध आनंद की भावना होती थी। कई दिनों की साधना के विषय में उन्हें थोड़े समय में ही बताया जाता था।''

जिन्होंने यह प्रक्रिया देखी उनके अनुसार विशुद्‌ध चक्र (शक्ति आसन) को बंद करने की प्रक्रिया सबसे जटिल थी। सद्‌गुरु बताते हैं कि विशुद्‌धि ध्यान बहुत कम प्रोत्साहित किया जाता है क्योंकि इससे अनावश्यक रूप से शक्तिशाली लोग निर्मित हो जाते हैं जिनमें उस शक्ति को सँभालने की जिम्मेदारी और संतुलन का अभाव होता है। चूँकि समय कम था और विशुद्‌धि को ऊर्जाशील किए जाने की आवश्यकता थी इसलिए सद्‌गुरु ने अंततः किसी समय के योगी रहे व्यक्ति का इस्तेमाल इस प्रक्रिया में किया। ''वह एक शरीरहीन प्राणी था और स्व-विसर्जन की तलाश में था'', उन्होंने बताया।'' ''यह अमावस्या की देर रात्रि का समय था और लगभग पाँच या छह सौ लोग इस प्रक्रिया के साक्षी होने को

थे... हमने एक नारियल के प्रयोग से इस व्यक्ति (शरीरहीन योगी) को पकड़ने और जो किया जाना था, वह करने का प्रयास किया। वह अपनी इच्छा से ही, अनिच्छा नहीं, पकड़ा जा रहा था। एक बार उसे यह महसूस हो गया कि उसे कैसे प्रयोग किया जानेवाला था, तो वह और ज्यादा इच्छुक हो गया... इस तरह वस्तुत: हमने योगी को बस में कर लिया, उसे शुद्ध ऊर्जा में परिवर्तित करके विशुद्धि चक्र में रख दिया। वह ध्यानलिंग का हिस्सा बन गया।''

एक ब्रह्मचारी को स्मरण आता है कि जब नारियल को एक नियत स्थान में रख दिया गया तभी तुरंत एक छोटा-सा साँप इस पर चढ़ गया। सद्गुरु ने बाद में बताया कि सर्प एक विशेष प्रकार की ऊर्जा की ओर हमेशा आकर्षित होते हैं। यह आश्चर्यजनक बात नहीं थी। उस ब्रह्मचारी ने बताया कि उस रात ऊर्जा प्रचंड रूप से शक्तिशाली थी।

जब शरीरहीन व्यक्ति को पकड़ने की नैतिकता के विषय में पूछा गया तो उन्होंने रूखेपन से उत्तर दिया, ''जब तक किसी भी चीज से लोगों को मुक्त करने का प्रयोजन हल होता है, मेरे लिए सबकुछ उचित है। मैं कोई ऐसा नहीं हूँ जो किसी मूल्य संरचना या नैतिक बंधनों से सरोकार रखता है। जो मैं कह रहा हूँ, वह आपको खतरनाक लग सकता है, लेकिन कोई भी जो इस राह पर है, वह ऐसा ही होता है।''

उन्होंने यह भी कहा कि किसी भी आध्यात्मिक आकांक्षा के लिए साधना की सारी प्रक्रिया किसी भी शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक पहचानों के सीमित निर्धारण से हटने से जुड़ी है। व्यक्तिगत विसर्जन की इस प्रक्रिया में, पृथक होने के विचार को पूरी तरह खत्म किये जाने का लक्ष्य होता है। जब हमने उसे पकड़ा तब 'वह' था लेकिन जब हमने उसे वहाँ रख दिया, जब विशुद्धि का संस्कारीकरण कर दिया गया, तब ''वह रह ही नहीं गया। यह कुछ ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति बरतन बना रहा था, एक मिट्टी का बरतन। यह बरतन बना लिया गया लेकिन अभी पकाया नहीं गया था। मैंने इसे लिया और फिर से इसे मिट्टी बना दिया और फिर इससे लिंग बना दिया। आप 'ओह!' के अर्थ में सोच रहे हैं। वह व्यक्ति क्या वहाँ बंद है? उसका क्या होगा? उसके आगे के विकास का क्या होगा? अब 'वह' रह ही नहीं गया। अब मैंने उसे ध्यानलिंग में बदल दिया है। हमने उसकी ऊर्जा, जो विक्षिप्त की तरह यहाँ-वहाँ भटक रही थी, को एक व्यक्ति में बदल दिया है। मैंने उसकी पहचान को समाप्त करके उसे ध्यानलिंग में समाहित कर दिया है। इसलिए वास्तव में 'वह' नहीं है।'' लेकिन भाषा केवल इतनी दूर ही आ सकती है। और उस शरीरहीन व्यक्ति के कर्मों का क्या हुआ? उसने उनसे छुटकारा कैसे पाया? उसने इसे स्वयं पर ले लिया। सद्गुरु ने संक्षिप्त उत्तर दिया, ''इसे और कहाँ ले जाना है?''

समस्त संस्कारीकरण का सर्वाधिक विशिष्ट हिस्सा यह था कि इसमें किन्हीं कर्मकांडों या किन्हीं मंत्रों का प्रयोग नहीं हुआ। सद्गुरु ने प्राय: यह इशारा किया है कि यह अगस्त्य ऋषि से संबंधित योग की दक्षिण भारतीय परंपरा है। इसमें सबकुछ शुद्ध ऊर्जा से किया जाता है। ''हम मंत्रों के प्रयोग की परवाह नहीं करते। हम साधारणत: ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। सामान्यतया यह एक सीधी ऊर्जा है। यह पूरी तरह अलग रास्ता और दृष्टिकोण है। यह एक पूर्णरूपेण भिन्न आयाम है।''

जिन्होंने संपूर्ण ध्यानलिंग की प्रक्रिया देखी है, उन्हें सबसे ज्यादा जिस बात ने प्रभावित किया, वह थी सद्गुरु की स्पष्टता। निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों में भी वह न तो घबराए, न उत्तेजित हुए। और उन्होंने अत्यंत सूक्ष्म और परिष्कृत प्रक्रियाओं में भी कोई संशय या हिचक नहीं दिखाई। दो जन्म पहले उनके गुरु द्वारा अपने सटके से उनके मस्तक को छूने से उत्पन्न हुआ ज्ञान था। वह कहते हैं, ''जब कभी भी जीवन के किसी आयाम को जानने की आवश्यकता प्रस्तुत होती है, उस समय उत्तर सदा मेरे अंदर ही हुआ करते थे। मेरे लिए जीवन सदा ऐसा ही रहा है।''

जैसा कि उन्होंने हाल ही के एक सत्संग में कहा, ''एक ही बात जिसमें मैं वास्तव में अच्छा हूँ, वह यह है कि अपने आसपास की हवा को मैं ऊर्जा से तंरगित कर देता हूँ। मैं कोई महान् शिक्षक नहीं हूँ। मैं करता तो केवल वही हूँ, लेकिन हर समय मूर्खों सी बातें किए बिना दुनिया में काम नहीं चलता।'' उस समय जो वहाँ उपस्थित थे, वे इसकी पुष्टि करते हैं कि जो कुछ उन्होंने देखा था, वह वस्तुत: ऐसा था मानो कोई वातावरण की स्थितियों का प्रकांड जानकार अपने कार्य

में रत था। ऊर्जा की तरंग वहाँ अत्यधिक विद्यमान थीं।

दूसरा नाटकीय क्षण तब उपस्थित हुआ जब सद्गुरु ने लिंग की संरचना में केवल ताली की थपथपाहट से एक अत्यंत बारीक दरार पैदा कर दी। वहाँ उपस्थित दृष्टा हैरान रह गए। उन सभी को मालूम था कि लिंग उच्च घनत्व के ग्रेनाइट से निर्मित था (लगभग चार हजार दो सौ से अधिक यूनिट का), लेकिन इस चरण में ऐसा आकस्मिक चमत्कार मामूली ही जान पड़ा। सद्गुरु ने बाद में उन्हें बताया, ''संस्कारीकरण की प्रक्रिया के दौरान यदि मैं शरीर छोड़ देता तो हम जानते थे कि ऊर्जा को बंद करना एक बड़ी समस्या होगी। हम नहीं चाहते थे कि ऐसी कोई बात हो...मैंने इसे एक संभावना के रूप में हमेशा रखा है कि यदि संस्कारीकरण योजना के अनुसार नहीं होता है तो मेरे लिए इसमें समाहित हो जाने का ही रास्ता बच रहता, और किसी और को ऊर्जाओं को बंद करने की जिम्मेदारी निभानी पड़ती; यह भी बहुत हद तक संभव रहता कि ऊर्जाओं को समाहित न कर पाने के कारण लिंग खुल जाता। इसलिए एहतियात के तौर पर मैंने लिंग पर एक बारीक लंबवत् दरार पैदा कर दी।''

कुछ लोगों को स्वाधिष्ठान बंद करने के चुनौतीभरे कार्य के दौरान सद्गुरु का गिर पड़ना याद है। उस समय तो ऐसा लगा मानो उनका अंत ही आ गया था। भारती कहती है, ''प्रत्येक चक्र बंद कर दिय गया था। मैंने इसे अपने ऊर्जा शरीर में स्पष्ट महसूस किया। जब स्वाधिष्ठान की बारी आई— इस प्रक्रिया का सर्वाधिक कठिन भाग—तो चूँकि उनका भौतिक शरीर काफी अस्थिर था, उन्हें अत्यधिक शारीरिक कष्ट हुआ।''

इसमें जुड़े हुए जोखिमों से सद्गुरु अनभिज्ञ नहीं थे, ''इस बात की पूरी संभावना थी कि उस समय मैं अपना शरीर खो बैठता। मैंने सबकुछ तैयार कर रखा था, यहाँ तक कि मेरी बेटी की वैधानिक दत्तकता, आश्रम का रखरखाव कैसे किया जाए, सबकुछ लिखित में था। मैंने समाधि तैयार करा रखी थी और एक वाहन भी बाहर खड़ा करने को कह रखा था, यदि मैं पूरी तरह शरीर खो देता, उन्हें मालूम था, इसे कैसे सँभालना था। लेकिन मान लो यदि मैं असक्षम हो जाता और मुझे अंदर लाए जाने की आवश्यकता होती तो वाहन—एक पुरानी टाटा सिएरा-वहाँ मौजूद थी।''

राजा बताता है कि ब्रह्मचारियों को लिंग की दिशा में उसका सामना करते हुए बैठने के लिए कहा गया था, जबकि गृहस्थ शिष्यों को इसकी विपरीत दिशा में बैठना था। कुछ ध्यान प्रक्रियाओं के बाद सद्गुरु लिंग के आधार पर चढ़ गए। उन्होंने सभा को आँखें बंद कर लेने के लिए कहा। उन्होंने दम साधकर बात का अनुपालन किया। कुछ देर बाद उन्होंने कुछ गिरने की आवाज सुनी। जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो पाया कि वह गिर गए थे। संस्कारीकरण समाप्त हो गया था। लेकिन, ऐसा लगा कि इसकी कीमत सद्गुरु को चुकानी पड़ी थी।

रहवासियों ने ब्रह्मचारियों के एक दल को उनके निष्क्रिय शरीर को बाहर कार की ओर ले जाते देखा। वह जीवित लगे। लेकिन उन्हें मालूम था कि स्थिति बड़ी नाजुक थी। तीन दिनों तक तो वह खड़े नहीं हो सके। वह अपनी बोलने की शक्ति खो बैठे थे और केवल लिखकर अपनी बातें कहते थे। वह कहते हैं, ''मेरा शरीर इतनी बुरी तरह टूट चुका था कि इसकी मरम्मत भी नहीं की जा सकती थी। चिकित्सीय तौर पर इसे निश्चित ही ठीक नहीं किया जा सकता था। पुनः ठीक होना लगभग नए जीवन का निर्माण करने जैसा था।''

भारती ने उनकी बिगड़ी शारीरिक दशा को ठीक करने की पूरी कोशिश की लेकिन कोई उम्मीद नहीं लगती थी। वह मौन, कमजोर और प्रत्युत्तरहीन ही रहे। एक बार जब उसे कुछ न सूझा तो उसने उनसे पूछा, ''क्या हम सवारी करने चलें?'' यह अँधेरे में तीर की तरह था। यदि ऐसी कोई चीज थी जिससे उनके जीवन का उत्साह पुनः लौट आता तो यह उनका घुमंतूपन था। ''तभी उनकी आँखों में चमक लौट आई'' वह स्मरण करते हुए मुसकराती है।

एक ऐसा आदमी जिसने पिछले सत्रह वर्षों से बयालीस साल की उम्र में जाने की तैयारी कर रखी थी, उसने अचानक रुकने का विचार कैसे बना लिया? वह व्यंग्यात्मक लहजे में कहते हैं, ''इसलिए नहीं कि मैं जीने को आतुर था। स्थिति जितनी भी भयंकर एवं गंभीर होती है, यह मेरे लिए उतना ही बड़ा मजाक होता है। जब भारती ने मुझसे यह प्रश्न पूछा तो मैंने सोचा, ठीक है, देखते हैं, मजाक में ही अगर मैं अपने शरीर को फिर से सही कर सकूँ। बाद में यह एक चुनौती बन

गई।''

उनके जीने के प्रति मजाकिया अंदाज के अलावा शरीर तंत्र को ठीक करने का उनका निर्णय इस तथ्य पर भी आधारित था कि उनके शिष्यों के समूह के लिए 'सद्गुरु' का मतलब जीवन की साँस से कम नहीं था। शायद उनको यह भी अहसास था कि उनकी लगातार उपस्थिति से ध्यानलिंग को सामाजिक स्वीकृति मिलने में ज्यादा सरलता होगी। वह स्वीकारते हैं, ''इसमें सामाजिक कारण भी था। लेकिन सर्वोपरि यह था कि मेरे साथ बहुत से लोग जुड़ गए थे जो ऐसे मुकाम पर थे जहाँ उन्हें मेरे दिशा-निर्देश की आवश्यकता होती। इन लोगों ने मेरा साथ, जितना लोग समझते हैं, उससे भी अधिक तरह से दिया है। वे चट्टान की तरह मेरे लिए अडिग रहे। कुछ ऐसे भी लोग रहे हैं जो मेरा साथ भावनात्मक रूप से देते रहे हैं। मैं इसे कम नहीं आँक रहा हूँ। लेकिन आप भावनाओं के लिए मृत्यु में हस्तक्षेप नहीं करते। ये अलग तरह के लोग थे। ये लोग मेरे लिए जीने या मरने को तैयार थे। ऊर्जा स्तर पर वे इतने अधिक जुड़ गए कि वे मुझमें और स्वयं में कोई अंतर नहीं समझते थे। वे मेरी जीवन प्रक्रिया के साथ ही घुल-मिल गए हैं। मेरा पीछे हट जाना उनके लिए था, उन्हें लक्ष्य तक पहुँचते-देखने के लिए।''

जहाँ अब उनका स्वास्थ्य बहुत बेहतर है, वहीं वे यह कहते हैं, कि वह अब भी 'लाइफ सपोर्ट' पर हैं। ''मैंने संस्कारीकरण प्रक्रिया में अपनी इतनी ज्यादा ऊर्जा लगा दी कि इससे मेरे शरीर तंत्र को गंभीर क्षति हुई है। मेरा ऊर्जा तंत्र बुरी तरह अपंग हो गया। तभी से जीवित रहने के लिए मुझे कुछ लोगों पर आश्रित रहना पड़ता है। मैं अभी भी सौ फीसदी ठीक नहीं हुआ हूँ। अभी ऐसा लग सकता है कि मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ और अगले ही क्षण में मैं गंभीर रूप से बीमार हो सकता हूँ—चिकित्सीय रूप से बीमार। लेकिन बहुत हद तक मैं उस स्थिति से बाहर आ चुका हूँ।''

उनसे हमेशा उस सर्प के आकार के तांबे के कड़े के विषय में पूछा जाता है जो वह अपने बाएँ पैर के टखने पर पहनते हैं। बताते हैं, ''बेड़ी यह मुझे शरीर से बाँधे रखता है। इस शरीर की पुनर्रचना एक बड़ी चुनौती रही है। कई लोगों ने सचमुच मेरे लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया इसलिए मैं उनकी ऊर्जा का प्रयोग करके धीरे-धीरे इस शरीर की पुनर्रचना कर रहा हूँ। अब मैं लगभग अस्सी प्रतिशत बिलकुल ठीक हूँ और बाकी मैं ठीक कर सकता हूँ यदि मुझे मात्र एक महीने का अंतराल मिल जाए। लेकिन मुझे समय ही नहीं मिलता। चूँकि मेरे स्वास्थ्य में उतार-चढ़ाव होता रहता है, इसलिए मेरे आसपास के लोग डरे रहते हैं। मैं कहीं चला न जाऊँ। इसलिए उन्होंने यह बेड़ी मुझे पहना दी है। इससे शरीर व ऊर्जा तंत्र स्थिर होता है। यह मुझे अचानक चले जाने की अनुमति नहीं देता।''

और लगातार 'लाइफ सपोर्ट' पर रहने से आपको कैसा लगता है? एक बार मैंने उनसे पूछा। वह हँसने लगे, ''इसका मतलब अत्यधिक स्वतंत्रता है। लेकिन इसका अर्थ गुलामी भी है।'' उन्होंने आगे कहा, ''जिस दिन मैं इसे हटा दूँगा, तो तुम जान लो कि मेरे पास बहुत कम समय रह जाएगा। चालीस दिनों के अंदर मैं चला जाऊँगा।''

ध्यानलिंग का संस्कारीकरण 23 जून 1999 को पूरा हो गया था। यह मंदिर उसी वर्ष नवंबर में लोगों के लिए खोल दिया गया। सहस्राब्दी के अंतिम वर्ष को सद्गुरु के जीवन का सबसे काला अध्याय कहा जा सकता है उसके अंत के रूप में सामने आया और इशा के इतिहास का यौवनकाल। जहाँ एक ओर इशा का मिजाज हर्षोन्मत्त था, वहीं दूसरी ओर दुनिया अभी भी इस उपलब्धि के ऐतिहासिक महत्त्व से अपरिचित व अनभिज्ञ थी। सद्गुरु ने प्राय: इस बात को कहा है कि 'आम मानवता के लिए ध्यानलिंग' क्या है, यह समझने में संसार की कुछ पीढ़ियाँ लग जाएँगी।

और ध्यानलिंग वस्तुत: है क्या? यह उनके लिए भी एक पहेली है जो इससे गहनतम रूप से द्रवित और परिवर्तित हुए हैं। प्रत्येक दर्शक को यह एक प्रभावशाली काले रंग का दीर्घ वृत्तज महसूस होता है। लेकिन सद्गुरु ने हमेशा कहा है कि बिना इस रूप के भी काम चल सकता है, इसके अस्तित्व का एकमात्र कारण यह है कि अधिकतर लोगों को ध्यान करने के लिए दृश्य केंद्र की आवश्यकता होती है। वास्तविक लिंग तो एक पूर्ण सक्रिय सूक्ष्म शरीर है, जोकि पूरी तरह अदृश्य है और जिसके सभी सातों चक्र पूर्ण गति से क्रियाशील हैं। इसकी कार्यविधि मुख्यत: ध्यानात्मक है। जहाँ देश के विभिन्न भागों में विख्यात ज्योतिर्लिंग स्वास्थ्य और भौतिक सुख-सुविधाओं के कारक हैं, वहीं ध्यानलिंग एकमात्र लिंग

है जो एक साथ सभी सातों चक्रों का कारक है। इसकी दीर्घा में बैठना किसी जीवित गुरु की उपस्थिति में बैठने जैसा है — जो अपनी कृपा निरंतर स्वतंत्र रूप से, बिना पक्षपात के, चुपचाप बरसाता रहता है। सद्‌गुरु कहते हैं, ''यह दैवज्ञता का सर्वोत्तम प्रकटीकरण है। यह एक जीवित व्यक्ति की तरह है, जिसके सभी सातों चक्र स्वयं को उनके चरमोत्कर्ष पर प्रकट करते हैं। यह जीवित है।''

लिंग के विषय में बार-बार कुछ प्रश्न आते हैं जिनके उत्तर सद्‌गुरु बड़े धैर्य के साथ देते हैं, मानो वे उनके साथ पहली बार समझौता वार्त्ता कर रहे हों। शिवलिंग रूप ही क्यों? इस प्रश्न को बारंबार पूछा जाता है। वह जवाब में कहते हैं कि ध्यानलिंग के सघन रूप से तरंगित स्थान में बैठने से किसी विशेष मान्यता प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती। ''तुम्हें किसी मान्यता की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें केवल स्वयं को खुला रखने की जरूरत है, बस। जैसे मान लेते हैं कि कोई नास्तिक कार चलाता है। क्या यह चलेगी? यही तो तुम पूछ रहे हो। या कोई नास्तिक यहाँ बैठ जाता है तो क्या इस प्रकाश से तब भी उसे दिखाई देगा? प्रश्न उसकी प्रकृति का है। इससे बिलकुल फर्क नहीं पड़ता कि तुम आस्तिक हो या नास्तिक। ज्यों ही तुम बिजली का प्रकाश चालू करते हो, तो इससे सबको उजाला मिलता है। आस्तिकों को कोई अतिरिक्त प्रकाश तो नहीं मिलता।'' वह कहते हैं कि प्रथम मौलिक ऊर्जा का रूप अनाकार या दीर्घ वृत्तज है। विसर्जन के पूर्व अंतिम ऊर्जा का रूप भी इसी आकार को धारण करता है। इसीलिए लिंग भी इसी आकार में है। भारतीय संस्कृति अस्तित्व के आयाम की गहन समझ का प्रतिनिधित्व करने के लिए शिव की आकृति को सामने लाती है। शिव जैसा कि सद्‌गुरु दुहराते हैं, का अर्थ वह जो नहीं है, होता है—एक व्यग्र कर देनीवाली धारणा और उससे ज्यादा भयकारी वास्तविकता। जब कोई इसे अपने जीवन में स्थान देता है। ''हम शिव का प्रयोग करते हैं क्योंकि उससे आसक्त होना बड़ा कठिन है। तमिलनाडु में तो तुम्हें बताया जाता है कि शिव का रूप घर में नहीं रखना चाहिए... यदि वह वहाँ है, तो उसका रूप ही ऐसा है कि तुम्हारी सारी आसक्तियाँ समाप्त हो जाएँगी और तुम वह चाहते नहीं हो। आपने अपनी आसक्तियों में काफी विनियोग कर रखा है, और भले ही उनसे तुम्हें बड़े दर्दनाक लाभांश मिलते हैं, फिर भी तुम उन्हें फेंक नहीं सकते। ये विनियोग तुम्हारे यह जाने बिना ही पिघलकर खत्म हो जाएँगे, कि हो क्या रहा है। इसीलिए वे तुम्हें अपने घर से शिव को निकालने के लिए कहते हैं।''

ध्यानलिंग एक ऐसी योजना है जो भारतीय देवी-देवताओं की प्रथा में सर्वाधिक क्रांतिकारी, सर्वाधिक भयावह और प्रकाशमय दैवज्ञता है। यह एक ऐसी योजना है जो 'वह तो नहीं है' को 'वह तो है' में बदलती है— उस सीमा तक जहाँ ऐसा विरोधभास संभव है। सद्‌गुरु कहते हैं, ''ध्यानलिंग लगभग शिव को पकड़कर उसे वहीं नियत रखने की तरह है। वह आसानी से नहीं आता है। वह अपनी कीमत अपने तरीके से माँगता है। यह बहुत गहरा विज्ञान है।''

क्या लिंग एक लिंग पूजन का प्रतीक है? यह एक अन्य प्राय: पूछा जानेवाला प्रश्न है। सद्‌गुरु बताते हैं कि लिंग स्त्रीलिंग व पुल्लिंग का समन्वय है—जो कि पूर्वी आध्यात्मिक संस्कृति का सर्वाधिक अनुपम विचार है। ''जब स्त्रीलिंग और पुल्लिंग निम्नतम स्तर पर मिलते हैं तो इसका अभिप्राय शिव और शक्ति का एकीकरण होता है। इस मेल में शिव रूप है और शक्ति शून्य। शिव पुरुष है, शक्ति प्रकृति है, जो प्रकृति की अभेदकारी ऊर्जा है। शिव-शक्ति के प्रकटीकरण के सिद्धांत के रूप में लिंग-योनि सभी विपरीत जोड़ों की दृढ़ता दर्शाती है। इस दुनिया में कुछ भी बिना इसके विपरीत या उलटा के अस्तित्वान नहीं हो सकता।''

लिंग भैरवी के हाल ही में किए गए संस्कारीकरण के दौरान उन्होंने इसे आगे भी समझाया, ''ध्यानलिंग मंदिर एक गर्भ की तरह है; यह देवी की योनि है। जब हम योनि कहते हैं तो हमारा अभिप्राय गर्भ से है जो कि एक पवित्र स्थान के रूप में माना गया। जहाँ हम अपने रचनाकाल की जटिल अवस्था में रहते हैं... जहाँ कहीं शक्ति और शिव है लिंग और योनि को हमेशा प्रस्तुत किया जाता है। आप जो देख रहे हैं वह गर्भ के अंदर का भाग है, बाहर का नहीं। इसलिए जब आप ध्यानलिंग के स्थान पर प्रवेश करते हैं, तो योनि या गर्भ के अंदर होते हैं।''

और ध्यानलिंग किन्हीं कर्मकांडों से क्यों नहीं जुड़ा है? क्या यह उन लोगों की संवेदनाओं को संतुष्ट करने के लिए है जो

इसे बहु-धार्मिक मंदिर समझकर यहाँ आते हैं? सद्गुरु बताते हैं कि कर्मकांड एक पवित्र स्थल की ऊर्जा के नवीनीकरण का एक पारंपरिक स्रोत है। लेकिन ध्यानलिंग का संस्कारीकरण विशुद्ध ऊर्जा कार्य के रूप में हुआ है और इसके रखरखाव या पुनर्जीवित करने की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी कर्मकांड को संपादित किया जाना पूर्णत: अर्थहीन होगा क्योंकि ध्यानलिंग प्राण प्रतिष्ठा से होकर गुजरा है। यह सभी रूपों में उच्चतम स्तर की सघनता से निर्मित है। ''यदि आप ऊर्जा को इससे ज्यादा घनीभूत करते हैं तो यह निराकार हो जाएगी... यह ऊर्जा की पूर्ण प्रणाली है...इस तरह के स्थान पर कर्मकांडों का कोई महत्त्व नहीं होगा और वे प्रयोजनहीन सिद्ध होंगे।''

अगस्त्य ऋषि से संबंधित योग की दक्षिण भारतीय परंपरा, इस तरह की प्राण से जुड़ी विद्वत्ता के विशिष्टीकरण के लिए स्पष्ट तौर पर जानी जाती है। सप्तऋषियों में सात ऋषि जो शिव के शिष्य थे और जिन्होंने योग प्रारंभ किया—अगस्त्य ऋषि क्रिया योग में पूर्णत: निपुण थे। सद्गुरु कहते हैं, ''जब आप क्रिया कहते हैं तो इसका अभिप्राय अगस्त्य होता है। वह सबकुछ जो मानव ऊर्जा के स्तर पर हो सकता है उसे इस व्यक्ति के द्वारा करिश्माई तरीके से बताया और किया गया है। इसलिए जो भी क्रिया की परंपरा से जुड़ा है, स्वाभाविक रूप से वह अपने को अगस्त्य का वंशज बतलाता है— वह अपने वंशज होने का दावा नहीं करता बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करता है जो जीवन से काफी विस्तृत था। माना जाता है कि वह चार हजार वर्षों तक जीवित रहे थे। हम इन सबके विषय में नहीं जानते। लेकिन वह निश्चित ही असामान्य अवधि तक जीवित रहे होंगे ताकि आध्यात्मिक प्रक्रिया को दक्षिणी पठार पर रहनेवाले सभी मानवों के लिए वास्तविक रूप से सुलभ बना सकें। उन्होंने योग को लोगों के जीवन में बिना किसी छाप, बिना किसी प्रारूप के दिन-प्रतिदिन की साधारण जीवन प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया। भारत का दक्षिण भाग अब भी उनकी कृति का लाभ ले रहा है।''

सद्गुरु इस मंदिर को गंभीर लेखकीय गर्व के अंदाज में 'अभियांत्रिकी चमत्कार' निरूपित करते हैं। ''ध्यानलिंग के मंदिर के अंडाकार गुबंद को हमने छिहत्तर फुट व्यास का और तैंतीस फुट ऊँचा निर्मित किया। इसमें लोहा, सीमेंट और कंकरीट का उपयोग नहीं हुआ है, केवल ईंट और गारे के साथ स्थिरता देने के लिए चूना, रेत, फिटकिरी और वनस्पति से संबंधित चीजें प्रयुक्त की गई हैं। धरती पर अपनी तरह की यह एकमात्र संरचना है। यह प्रयुक्त हुई साधारण तकनीक इस तरह है कि सभी ईंटें एक समय पर ही गिरने का प्रयास करती हैं लेकिन जिस विधि से गुंबद बना है, उससे वे कभी भी नहीं गिर सकतीं। इस डिजाइन की प्रकृति से यह सुनिश्चित होता है कि यह गुंबद कम-से-कम पाँच हजार वर्ष टिकाऊ रहेगा। और इसे रेत की नींव पर खड़ा किया गया है जो यह सुनिश्चित करता है कि यह भू-गर्भीय हलचलों से अप्रभावित रहेगा।''

एक बात आगंतुक को शीघ्र ही ज्ञात नहीं ही पाती। वह यह है कि एक औसत इशा स्वयंसेवी ने इस मंदिर के लिए कितना योगदान दिया है। माँ कपूरी कहती हैं, ''मंदिर के निर्माण का कार्य तक स्वयंसेवियों ने अपने जिम्मे ले रखा था। दो सौ पचास श्रमिक और एक हजार हमारी संख्या थी; और हमने ईंट-ईंट करके संरचना पर काम किया है। वे जानते थे कि हरेक ईंट कड़ी मेहनत की कमाई से आई है, क्योंकि इसके पूर्व के महीनों में जोशपूर्ण वित्त संग्रह में वे बराबरी से शामिल थे। सद्गुरु का कार्य उनका कार्य बन गया था, और उनके सभी शिष्य अपना योगदान देने के प्रति दृढ़संकल्पित थे। इसमें एक स्कूल की छात्रा भी शामिल थी जो अपने घर से पैदल स्कूल जाकर बस का किराया बचाती और उस राशि को इस निर्माण हेतु समर्पित करती थी।'' माँ कपूरी अपने साथी स्वयंसेवी भारती और ललित के साथ प्रतिदिन एक दुकान से दूसरी दुकान जाकर तरह-तरह के व्यापारियों-परचून दुकान से लेकर चाय दुकानवाले—को इस उद्देश्य का महत्त्व समझातीं और पाँच रुपए की राशि भी यदि उन्हें प्राप्त हो जाती तो उनमें विजय भाव का उफान-सा महसूस होता।

एक ऊर्जा के रूप में सद्गुरु ने ध्यानलिंग को शुद्ध चेतना और उन्माद का निचोड़ कहा है। ''भविष्य में, यदि किसी दिन कुछ जागृत संवेदनशील लोग उस स्थान पर ध्यानलिंग के समीप जाएँगे तो वे उन्मत्त होकर हँसने लगेंगे...यह एक स्तर पर तो बहुत ज्यादा गंभीर है और दूसरे स्तर पर उतना ही चुलबुला...इसे धीरे-धीरे इसी तरह से बनाया गया था।

एक तरह से यह जीवनधारक है। दूसरे स्तर पर यह जीवनहर्ता भी है।''

जिन्होंने सद्‌गुरु को गुरु के रूप में अनुभव किया है उन्हें ध्यानलिंग और उनमें कोई भेद ही नजर नहीं आता। एक खून-माँस का बना है तो दूसरा पत्थर का। लेकिन उपस्थिति की गुणवत्ता—योगिक शब्दों में सूक्ष्म शरीर— बिलकुल वैसी ही महसूस होती है। दोनों में अंतर क्या है? (जो सद्‌गुरु से प्रायः पूछा जाता है) यह एक अलग बात है। इसके जवाब में सद्‌गुरु बड़े स्पष्ट तौर पर 'कुछ नहीं' कहते हैं। वह कहते हैं, ''यह अंतर केवल इतना है कि मुझे अभी भी खाना और सोना पड़ता है, लेकिन उसे (ध्यानलिंग) नहीं... एक दूसरा अंतर यह है इस तरह बनने में मुझे तीन जन्म लगे। उसे तीन साल ही लगे...सर्वोपरि, यदि आप भौतिक शरीर धारण किए हैं, तो इसके परे की बात को महसूस करने की आपकी योग्यता कम हो जाएगी। क्योंकि जब आप किसी व्यक्ति को देखेंगे आप उसे समझना शुरू कर देंगे— कि उसमें सही क्या है, और गलत क्या है। आपको क्या अच्छा लगता है, क्या नहीं। ये सभी निर्णय (समझ) आपको उस प्राणी को समझने की योग्यता से दूर कर देंगे... जब आप जीवित गुरु के समक्ष बैठते हैं, तो आपकी कई सुझाव, निर्णय पसंद-नापसंद हुआ करते हैं क्योंकि आप हमेशा उनके व्यक्ति की ओर देखकर अपना काम पूरा कर लेते हो...ध्यानलिंग के समक्ष बैठकर आपके सामने ये समस्याएँ नहीं रहती हैं, क्योंकि उसका कोई शारीरिक या मानसिक रूप नहीं है। यदि एक बार आपको यह अनुभव हो जाए, तो हर बार जब आप बैठेंगे, आप सम्मानपूर्वक उसकी ओर देखेंगे। यदि उसका भौतिक स्वरूप होता तो एक बार आप उसकी ओर सम्मानजनक ढंग से देखते और फिर अगले क्षण आप उन्हें समझने लगते और किसी बात के लिए उसकी निंदा करने लगते... इसलिए इसका एक अतिरिक्त लाभ है।''

और यह इस भेद का एक विडंबनापूर्ण और शुद्‌ध सार है। वे लोग जो उन्हें जानते है और उनसे अभिभूत हुए हैं—भौतिक शरीरधारी गुरु—वह चाहे कितने ही प्रभावशील, कितने ही चुनौतीपूर्ण हों—वह सूक्ष्म शरीरधारी गुरु जैसे निर्विकार नहीं लगेंगे। ध्यानलिंग इशा के साधक अपनी पीढ़ी को सौभाग्यशाली मानते हैं कि उनके पास एक ही जन्म में दो गुरुओं को जानने और उनका सान्निध्य प्राप्त करने का विशेषाधिकार है।



'जीवन की घाटी में चरना'

गुरु, मनुष्य और उनका संदेश

स द्‌गुरु से मेरी मुलाकात का सबसे लुभावना पहलू शायद, उन्हें क्षण-प्रतिक्षण के आधार पर व्यक्ति और आदर्श, आदमी और गुरु के बीच रहते हुए देखना था। हमारे तर्कों में मैंने प्राय: उन्हें विरोधाभासी माना है। लेकिन एक अन्य स्तर पर उन्हीं विरोधाभासों को मैंने एक ही समय में भ्रमकारी और पहेली-सा गूढ़ पाया है।

एक सघन विचार-विमर्श के बीच में ही रुककर वह मेरा ध्यान कहीं धूप की स्वच्छता की ओर खींचते या दोपहर को हवा में नीचे गिरती किसी पंखुड़ी की ओर। एक बार हम उनके पूर्व के जन्मों पर बात कर रहे थे जब अचानक वह बीच वाक्य में ही बगीचे में एक पेड़ पर अर्द्ध छिपी स्थिति में बैठे उल्लू की ओर इशारा करने के लिए रुक गए। मैं उनके साथ लंबी पैदल सैर पर थी, निर्विकल्प समाधि के बारे में बात कर रहे थे, और बीच में ही उन्होंने एक विचित्र-सा चुटकुला सुनाया, बादल के परिवर्तित होते रंगों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया और एक आदिवासी महिला से बड़े लगाव के साथ उसके कार्य की प्रकृति के विषय में चर्चा की। यह सबकुछ ही मिनटों के क्रम में हुआ। एक अन्य अवसर पर जब हम उनकी कार में थे और किसी मुद्‌दे पर बात कर रहे थे तभी, अचानक अपनी बात के बीच में ही उन्होंने कार के पिछले भाग में दो सर्पों के होने की बात कही। मेरी तर्क करने की क्षमता सहसा कमजोर पड़ गई।

उनके साथ बिताया जानेवाला समय बड़ा विचित्र लोचदार गुण रखता है। बहुतेरे यह महसूस करते हैं। उनके साथ हुई पाँच मिनट की मुलाकात भी अंतर्दर्शिता वाले गुणों से ओत-प्रोत और उसमें भविष्य में मनन करने योग्य बहुत-सी बातें हो सकती हैं। जैसा कि एक बार उन्होंने बताया, ''मैं प्रत्येक शब्द होशोहवास में बोलता हूँ, आदतन नहीं। इससे उन शब्दों को शक्ति मिलती है। आध्यात्मिकता का अभिप्राय है किसी भी बात या घटना को अपने साथ बेसुध अवस्था में न होने देना।'' यह जीवंतता का उच्चतम स्तर ही है, जो हर क्षण उनके साथ रहता है और जो उनसे हुई प्रत्येक मुलाकात को ऐसा कार्य बना देता है जिसके बारे में पहले से कुछ कहा नहीं जा सकता।

आप अंदर किसी पुस्तक के विषय में विचार-विमर्श करने जा रहे हैं— जैसा एक बार मेरे साथ हुआ— और स्वयं को ध्यान करता हुआ पाएँ।

इशा योग कोर्स में, विशेष रूप से उच्च स्तर के सम्यम कार्यक्रम में तो वह पूरी तरह गुरु ही होते हैं। किसी सार्वजनिक व्याख्यान या किसी सत्संग में वह आकर्षक वक्ता होते हैं और हर तरह के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। एक अनौपचारिक व्यक्तिगत वार्त्ता में, वह शरारती, खीझ पैदा करनेवाले और लुभावने अंदाज में किसी लड़के-से हावभाव में हो सकते हैं। किसी गंभीर विषय से जीवन की किसी चुलबुली बात पर पहुँच जाने की उनकी क्षमता उनके व्यक्ति की आकर्षक विशेषताओं में एक है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि एक ब्रह्मचारी से मोबाइल की 'कालर टोन' के विषय में बात करता व्यक्ति वही व्यक्ति हो सकता है जिसने मुझे जब मैं मुबई में अपने जीवन के बुरे दौर से गुजर रही थी, उससे बाहर निकाला और मुझे अपने स्वयं के साथ ऐसा न करने की सलाह दी। या ऐसा व्यक्ति जिसने एक दिन दोपहर को मुझे फोन किया (जब पूर्व रात्रि मैंने की गई बात की चिंता में बड़ी बेचैनी से बिताई थी) और कहा कि मैंने उनके गोल्फ खेलने में बाधा क्यों पहुँचाई। मुझे आश्चर्य होता है कि अपनी कार को एक किशोरवय बालक की तरह बहुत तेज गति से चलानेवाला व्यक्ति वही हो सकता है जिसने मेरी बिल्ली की मौत पर मुझे फोन करके मर्मस्पर्शी संवेदना दी (यह ऐसी घटना थी जिससे हमेशा-हमेशा के लिए मेरे गुरु के प्रति सभी संदेह समाप्त हो गए।)।

वह किसी अपनी कही बात के प्रति इतने पक्के हो सकते हैं कि वह घमंडी से लगने का जोखिम भी उठा सकते हैं। उन्होंने अपनी तानाशाही के भाव को स्वीकार भी किया है। ''हाँ, मैं अधिनायकवादी हूँ क्योंकि मैं किसी की नहीं सुनता।

जीवन की साधारण बातों के लिए यदि एक बच्चा भी बोलेगा तो मैं बड़े सम्मानपूर्वक सुनूँगा। लेकिन बात यदि जीवन के कुछ पहलुओं पर आती है, तो भले ही भगवान् क्यों न आ जाए, मैं उसकी भी नहीं सुनूँगा क्योंकि मुझे बेहतर जानकारी है। यह पूर्णत अहंवादी और मूर्खतापूर्ण जान पड़ता है... लेकिन मैं कर क्या सकता हूँ? यह सच है। आप मेरे सामने ग्रंथों का दृष्टांत देंगे तो मैं इसे नकार दूँगा। आप अपने पंडित्य को मेरे पास लाएँगे, मैं उसे नकार दूँगा। आप बुद्ध को उनकी कब्र से उठाकर मेरे पास लाएँगे तो मैं उन्हें भी नकार दूँगा, जब तक कि वह मुझसे सहमत न हों। तो बात जब जीवन के आधारभूत सिद्धांतों पर आती है तो मैं पूर्ण अधिनायकवादी हो जाता हूँ।''

और जब इन स्वेच्छाचारी रवैये से आप खीझने-से लगते हैं तो अपनी असाधारण विनम्रता से वह आपको शांत कर देते हैं। हाल ही के एक सत्संग में उन्होंने कहा, ''यह कहने में मुझे झिझक होती है क्योंकि बात फैलेगी और मेरी प्रतिष्ठा पर आँच आएगी! लेकिन मैं एक भक्त हूँ। आप कहेंगे, 'अरे सद्गुरु, रहने भी दो, आप और भक्त? आप घमंडी हैं।' मैं आपको बता सकता हूँ कि घमंडी दिखना आसान नहीं होता। तो आप पूछेंगे, 'आप किस तरह के भक्त हैं? अच्छा तो आप शिव के भक्त होंगे।' नहीं, शिव तो मेरे साझेदार हैं। इसे पचाना आपके लिए बड़ा कठिन होगा, लेकिन मैं आपका भक्त हूँ...भक्ति का अर्थ यह नहीं कि मैं आपका अभिवादन करूँ या आपके पैर छुऊँ या आपका गुणगान करूँ। हर नजरिए से मैं आपके लिए ही रहता हूँ। यही भक्ति है। मैंने यह जन्म आपके लिए ही लिया है और यही भक्ति है।''

उन्हें प्राय: इस घोषणा के लिए जाना जाता रहा है, ''उन सभी लोगों के लिए जो इच्छुक हैं, मैं उन सब तरीकों से उपलब्ध हूँ जो उनकी तार्किक समझ के परे है।'' लगभग प्रत्येक शिष्य ने इस सहानुभूतिपूर्ण उपलब्धता को किसी न किसी तरह महसूस किया है।

मंजू के पिता, जिन्होंने कभी भी सद्गुरु को नहीं देखा था, इस बात पर अड़े रहे कि पगड़ी पहने हुए यही वह व्यक्ति था जो कि रात में, जब वह मुंबई अस्पताल में बहुत बीमार थे, बहुत देर तक उनके बिस्तर के पास बैठा हुआ था। उस रात के बाद मंजू के पिता ने बहुत तेजी से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया।

शहनाज को वह समय याद है जब उसे अपने स्तन पर गाँठ देखने को मिली। उसने बहुत निराश स्थिति में इस बात की चर्चा पहले ही अवसर पर की। उनका उत्तर जैसा कि उम्मीद थी, छिछोरा सा ही था। ''तुम्हें स्तन की जरूरत है किसलिए?'' लेकिन अगले दिन जब उन्होंने उसे बुलाया, तो उन्हें गाँठ का पता सही-सही मालूम था। उन्होंने उसे कच्चा बिना पका हुआ भोजन शुरू करने की सलाह दी और कोयंबतूर में एक विश्वसनीय विशेषज्ञ भी तलाश दिया। दिन बीतते गए। वह यात्रा में लगे हुए थे और शहनाज की उनसे कोई बात नहीं हुई। लेकिन फिर भी उसने पाया कि वह गाँठ धीरे-धीरे दिन-प्रतिदिन छोटी होती जा रही थी और पूरी तरह गायब हो गई। पंद्रह दिनों बाद यात्रा से लौटकर उन्होंने उसे बुलवाया। उन्होंने सामान्य लहजे में कहा, ''अब तो डॉक्टर की कोई जरूरत ही नहीं है न?''

एक अमेरिकी डॉक्टर, जिसे हृदय की बीमारी थी, साधकों के साथ वार्षिक यात्रा पर हिमालय जाने को बहुत उत्सुक थी, लेकिन वह जानती थी कि यह संभव नहीं था। उसकी इस हालत के अतिरिक्त, उसे श्वास यंत्र की सहायता की जरूरत थी और बिना वेंटिलेटर के वह कार्य करने में सक्षम नहीं थी। जब उसने सद्गुरु को अपनी इच्छा बतलाई तो उन्होंने उसे यात्रा पर चलने को कहा। कुछ दिनों के बाद वह आश्रम में आई, तो उसने वेंटिलेटर हटा रखा था। आश्रम में एक सप्ताह रहने के बाद वह हिमालय यात्रा के समूह के साथ शामिल हो गई।

उसने न केवल अस्सी किलोमीटर की सारी दूरी चलकर तय की बल्कि 14,000 फुट की ऊँचाई की दशाओं का भी सामना किया।

एक अन्य साधक जिसे विशेषज्ञों द्वारा शीघ्र से शीघ्र फटी हुई उपास्थि के कारण घुटने की सर्जरी कराने का सुझाव दिया गया था, उसे सदगुरु द्वारा कहा गया, ''अपना पैर छोड़ो और चले आओ।'' वह दर्द से छटपटा रहा था और सशंकित था। लेकिन अंतत: उसने सावधानी को दरकिनार कर दिया। वह हिमालय के ट्रेकिंग दल के साथ शामिल हो गया और बारह दिनों में उसने पूरा अस्सी किलोमीटर का रास्ता तय किया। और-तो-और उसने सद्गुरु के साथ कदम से

कदम मिलाया। सद्गुरु ने बाद में मजाकिया लहजे में कहा, ''तो मैं सबको यह बतलाता रहा कि इस आदमी ने मुझसे दस हजार डॉलर ठगने की कोशिश की।'' बाद में सद्गुरु ने मजाक में ही कहा, ''अब तुम चाहो तो इसे करिश्मा कह सकते हो। मैं इसे एक अलग तरह का विज्ञान कहता हूँ, बस तुम्हारी इस जीवन ऊर्जा ने तुम्हारे सारे शरीर का निर्माण किया है। ये हड्डियाँ, यह माँस, यह दिल, ये गुर्दे, और सबकुछ, क्या यह एक टुकड़ा उपास्थि पैदा नहीं कर सकती? यदि तुम्हारी ऊर्जाओं को पूर्ण प्रवाह और उचित संतुलन में रखा जाए, तो निश्चित रूप से वे शरीर की पुनर्संरचना कर सकती हैं।''

एक नाटकीय मोड़ तब आया जब 2007 में देश-विदेश के कई डॉक्टरों को हैरान करते हुए और उनकी मेडिकल रिपोर्टों के खतरनाक परिणाम की भविष्यवाणियों को ठेंगा दिखाते हुए, सद्गुरु ने स्वयं को स्वस्थ कर लिया। इसकी शुरुआत उस समय हुई जब अप्रैल में लॉस एंजिल्स में एक कार्यक्रम के दौरान उन्हें बुखार महसूस हुआ। यह बुखार लंदन में कार्यक्रम के दौरान (पैरासिटामोल की कई खुराकों के बावजूद) भी नहीं उतरा। उनके भारत लौटने और तदुपरांत ऑस्ट्रेलिया यात्रा, और लौटने पर आश्रम में व्यस्त टेलिविजन शूटिंग के समय भी बुखार जस का तस बरकरार था। पिछले ढाई दशकों में किसी कार्यक्रम की तिथि रद्द न करनेवाले सद्गुरु का इरादा इसे करने का नहीं था। ''मेरा तापमान लगातार 104 और 105 चल रहा था। मुझे इतनी बुरी तरह पसीना आ रहा था कि हर दो घंटे में मुझे अपने कपड़े बदलने पड़ते थे। एक दिन आश्रम में मुझे ऐसा लगा कि मेरा सिर फटनेवाला था; मैंने अपना तापमान जाँचा और पाया कि यह 107 था। मैं तुरंत गया और ठंडे फव्वारे के नीचे जैसा था, वैसे ही खड़ा हो गया, कपड़े और पगड़ी पहने हुए'', वह हँसते हैं, ''बाद में यू.एस.ए. के एक डॉक्टर ने मुझे बताया कि उस समय के लिए यही सबसे बड़ी बुद्धिमानी का काम था। इस तरह के बुखार से तो मैं किसी भी क्षण चला गया होता।''

उनकी बीमारी से हर जगह चिकित्सक परेशान हो गए। उन्होंने पाया कि उनका एक तरह के मलेरिया—डेंगू और टाइफाइड के लिए इलाज किया जा रहा था। वह वापस यू.एस.ए. लौट गए और कैलिफोर्निया में एक सत्संग के बीच में ही एक सदस्य, एक डॉक्टर ने, जिसने उन्हें अत्यधिक पसीना आते हुए और कमजोर-सी हालत में पाया—ऊपर हाथ उठाया और कहा कि उन्हें तुरंत इमरजेंसी वार्ड मे ले जाया जाना चाहिए। सद्गुरु राजी हो गए। उन्हें अतिशीघ्र अस्पताल ले जाया गया। अगले कई सप्ताह उन्होंने एक मोबाइल इंट्रावेनस पोर्ट से जुड़कर बिताए, और इसके साथ ही वे लगातार कैलिफोर्निया, अटलांटा, टेनेसी और नार्थ कैरोलिना में अविराम कार्यक्रम संपन्न करते रहे। ''इस तरह की यात्राएँ व कार्यक्रमों को करते-करते, जिस दौरान मैं भोजन भी नहीं कर पा रहा था और सात हफ्तों के लगातार बुखार के बाद उत्तरी कैरोलिना पहुँचते-पहुँचते मैं लगभग बेहोश-सा ही हो गया। मैं अपने शरीर तंत्र को खराब होता हुआ महसूस कर रहा था और काफी तेजी से साँसें ले रहा था। वहाँ के डाक्टर ने मेरी खून जाँच की रिपोर्ट को संस्कारीकृत करार दिया।'' वह हँसते हैं, ''और मुझे अटलांटा और तत्पश्चात् न्यूयॉर्क अस्पताल भेज दिया गया। तब तक मेरी सोलह खून जाँच और चार एमआईआर जाँचें हो चुकी थीं और मैंने हर तरह की विचित्र खून जाँच रिपोर्टों की एक मोटी फाइल तैयार कर रखी थी।''

न्यूयॉर्क पहुँचते तक उन्होंने पाया कि उनकी गरदन सूजी हुई है और उन्हें असहय दर्द हो रहा था। इस गरदन के दर्द के लिए उन्होंने मजाकिया अंदाज में कहा, ''सभी लोग मेरे चारों ओर होंगे। डॉक्टरों ने कहा कि मेरी लसीका गाँठें (लिम्फ नोट्स) विषाक्त हो चुकी थीं। धीरे-धीरे मेरा सारा शरीर तंत्र खराब और ढह रहा था और उन्हें (डॉक्टरों को) पता ही नहीं था कि ऐसा क्यों था। वे कहते थे, 'तुम्हारे पास दो सप्ताह का समय हो सकता है।' और बेहतर होगा कि मैं अपने परिवार को सूचित कर दूँ। मेरी लसीका गाँठों का ऑपरेशन होना था और मुझे बेहोशी जाँच के लिए ले जाया जा रहा था। अभी मैं इंतजार कक्ष में ही बैठा हुआ था, कि तभी मैंने अपने शरीर की तरफ देखा। मैं जानता था कि कुछ ऐसी गड़बड़ी थी जिसे वे सर्जरी से भी ठीक नहीं कर पाते। तकलीफ और कहीं थी। और मैंने सोचा, 'मैं नहीं चाहता कि यह आदमी मेरी चीर-फाड़ करके मेरे भीतर झाँके।' मैंने कहा, बहुत हो गया। मैं घर जाना चाहता हूँ। यू.एस. में यह बात

बड़ी अच्छी है, यदि आप डॉक्टरों को बता दें कि आप घर जाना चाहते हैं, तो वे रुकने के लिए जोर नहीं देंगे। उन्होंने मुझसे कई जगह हस्ताक्षर कराए ताकि वे स्वयं को सुरक्षित रखें और कहा, अब सबकुछ आप पर है।''

वह कुछ दिनों तक न्यूयॉर्क अपार्टमेंट में ठहरे। स्वयं अपने ऊपर 'प्रयास' किया और शीघ्र ही सभी चिकित्सकीय रिपोर्टों की सामूहिक बुद्धिमत्ता को चुनौती देने के लिए अपनी विशेष संस्कारीकृत बुद्धिमत्ता को अपनाया। दो सप्ताह की अवधि में ही वह कहते हैं, ''मैं ठीक हो गया। और लगभग पच्चीस दिनों में ही मैं कैलास पर था। मैं काठमांडू से कैलास तक कार में गया और फिर ट्रेकिंग की।'' इस नाटकीय स्थिति परिवर्तन के बाद वह उस समय भी देखने में कमजोर लगते थे। लेकिन आखिर वह जिसे प्राय: धरती का सबसे महान् रहस्यमय वाचनालय कहते हैं, के समीप पहुँच गए थे। ''मैंने कैलास की ओर देखा और पाया कि जानकारी देने के लिए कई सूचनाएँ वहाँ हमारे इंतजार में थीं। मैं उन सूचनाओं के एक पहलू के संपर्क में आया और एक निश्चित तरीके से इसे अपने ऊपर प्रयोग किया। उसके बाद तो मैं उछल पड़ा। मैं अपेक्षाकृत युवा नजर आने लगा, और मेरी आवाज तक बदल गई— मात्र एक घंटे के समय में। परिणाम सबकी आँखों के सामने थे। वहाँ मौजूद लगभग दो सौ लोगों ने इसे देखा।''

एक श्रोता के रूप में ऐसी कहानी को मौन में सुनना ही संभव है। ''यह इस तरह की कहानी है जिसे आपकी नानी की माँ भी बताने में झेंप जाएँगी; क्योंकि यह बहुत क्लिष्ट है।'' लेकिन मैं पूछती हूँ फिर स्वयं के हस्तक्षेप से अपने को ठीक करने से पहले आपने तमाम चिकित्सीय बकवासों को क्यों होने दिया? ''क्योंकि मेरी चर्या (कार्यक्रम) इसकी अनुमति नहीं देती थी।

''मैं लगातार यात्रा कर रहा था और इसके लिए समय की जरूरत थी। और किसी भी स्थिति में एक बार यदि मैं स्वयं को डॉक्टर के हाथों में सौंप देता हूँ, तो मैं उसे नहीं बताता कि क्या करना है। लेकिन एक बार डॉक्टरों ने इसे अज्ञात उत्पत्ति का बुखार निरूपित करके बताया कि यह लाइलाज था जबकि मैं जानता था कि मुझे अंदर झाँककर इसे ठीक करना होगा।''

इसके पहले कि आप अपनी बात दुनिया के रहस्यमय पुरालेखागार तक उनकी पहुँच और उन्हें जान पाने की उनकी क्षमता की ओर मोड़ते लगते हैं, उन्होंने बड़ी कुशलता से बातचीत का केंद्रबिंदु कैलास की आश्चर्यजनक बातों की ओर मोड़ दिया। ''इसका वर्णन करने के लिए सचमुच शब्द ही नहीं हैं। यदि धरती पर कोई पूरी तरह 'अनुचित' स्थान है, तो वह यह पर्वत है, यह काले ग्रेनाइट की चट्टान है। यह तर्क से परे है। यह आपकी प्रचंड कल्पना से भी परे है। बचपन से ही मैंने कई स्थानों की यात्राएँ की हैं, भयंकर और आश्चर्यजनक स्थान। लेकिन मुझे कहना पड़ता है कि संभावना और यहाँ जो चीजें हैं उसकी विशालता में मैंने अब तक कैलास जैसा कुछ भी नहीं देखा। यदि इस अस्तित्व में कोई भैतिक स्वरूप ऐसा है जो शिव के सबसे करीब हो सकता है तो वह यही है।''

जहाँ चिकित्सीय परेशानी की स्थितियों में वह खुले तौर पर बहुत-से लोगों (डॉक्टरों) के पास गए, वहीं सद्गुरु स्वयं की करिश्मा दिखानेवाले की भद्दी छवि न बनने देने के प्रति काफी सावधान रहे। हमेशा के तर्कवादी की तरह, उन्होंने स्वास्थ्य लाभ करने की प्रक्रिया को 'ऊर्जा शरीर में कार्य प्रक्रिया की जानकारी' कहकर उसे अरहस्य बना दिया। ''मैं इसे करिश्मा नहीं कहने देना चाहता, क्योंकि इसका तात्पर्य है कि आप एक संपूर्ण विज्ञान, एक संपूर्ण बुद्धिमत्ता, जीवन की संपूर्ण समझ को ही समाप्त कर दे रहे हैं।'' आइए संक्रामक बीमारी और चिरकालिक बीमारी में भेद समझ लें। संक्रमणों से आपको सावधान रहना व स्वयं को बचाना होता है। लेकिन बात जब चिरकालिक बीमारी की आती है, चाहे वह कोई भी हो, इसका मूल कारण ऊर्जा शरीर में ही होता है। जब यह बाधित हो जाती है तो मानसिक शरीर और भौतिक शरीर बाधित होना ही है। यदि लोग अपने प्राणायाम कोष या ऊर्जा शरीर को क्रियाशील करने के लिए कुछ साधना करने को तैयार हैं, तो निश्चित ही वह सभी चिरकालिक बीमारियों से दूर हो सकते हैं।''

उनके पास प्रचुर संवेदना है, लेकिन अंदर के लोग (आश्रम में रहनेवाले) यह जानते हैं कि यह कठोरता से रहित नहीं है। इशा मंडली में एक जानी-पहचानी कहावत है, जब आप सद्गुरु के निकट जाते हैं, तो सावधान रहें। माँ कपूरी कहती

हैं, ''उन्होंने मित्र की तरह शुरुआत की, बाद में गुरु बन गए और तभी मैंने महसूस किया कि वह कितने कठोर काम लेनेवाले हैं। जब उन्होंने मुझे मौन की अवधि (जो तीन साल चली) में रखा तो मैंने उनकी उपस्थिति को चक्रवात की तरह मुझमें प्रवेश करते हुए महसूस किया। ऐसा लगा कि मैं अपने नियंत्रण में ही नहीं थी। मैंने स्वयं को पूर्णत: अभिभूत गला रुँधा और अंदर से निचोड़ी हुई-सी महसूस किया। मुझे मृत्यु-सा महसूस हुआ। लेकिन महीनों बीतने के बाद इतना पूर्णरूपेण साफ-सुथरा महसूस हुआ कि ऐसा लगा कि वह किसी दूसरे किनारे पर मुझे ले गए थे। मेरा ब्रह्मचर्य एक युद्ध भूमि और संघर्ष से भरा रहा है। लेकिन जब मैंने अंतत: तीन वर्ष की मौन अवधि के पश्चात् संन्यास ले लिया तो मैं सहज हो गई। आज मैं महसूस करती हूँ कि मैं अंतत: घर (लक्ष्य) के करीब हूँ। मेरा घर प्रकाशित है। मैं इसे देख सकती हूँ और मैं संतुष्ट हूँ।'' उसका मानना है कि गुरु की कठोर संवेदना—जिसने उसे उनसे मित्रता त्यागकर ज्यादा गहरा संबंध खोजने पर विवश कर दिया—की उसकी आध्यात्मिक यात्रा में गहरी भूमिका है।

गुरु की खरीदारी साफ तौर पर एक भद्दा व्यवसाय है और सद्‌गुरु ने प्राय: इसके खतरों की बात की है। लेकिन कोई कैसे जाने कि झटके में सही चीज मिल गई है? उसके संकेत क्या हैं? सद्‌गुरु दृढ़तापूर्वक कहते हैं, ''आप अपने गुरु की तलाश नहीं करते। आपको तो गुरु के लिए अपनी अभिलाषा गहरी करनी होती है। जब आपको अज्ञानता का सच्चा दु:ख महसूस हो तो गुरु घटित हो जाएगा। आपको देखना नहीं है। यदि आप उनके साथ बैठते हो, तो आपके अंदर की हर चीज हिलकर रह जाएगी। आप भाग जाना चाहोगे लेकिन आपके भीतर कुछ ऐसा रहेगा जो आपको खींचकर उनके पास लाता रहता है। आप मान सकते हो कि वह आपके गुरु हैं। यदि आप उनकी सोहबत में बड़ा सहज महसूस करते हैं, तो वह गुरु नहीं है। शायद वह आपके मित्र हैं, शायद वह बहुत अच्छे इनसान हैं। शायद आपको उनसे आशीष लेना चाहिए। लेकिन अच्छे इरादे और सुखद स्वभाव से गुरु नहीं बनते। एक गुरु का इरादा आपको जगाने का होता है, न कि आपको सुला देने का। वह ऐसा व्यक्ति है जो आपके द्वारा निकाले गए सारे निष्कर्षों को नकार देता है। वह घूम-घूमकर सहानुभूति बेचनेवाला नहीं होता। वह आपकी मुक्ति की दिशा में आपका साथ देता है।''

वह स्वीकार करते हैं कि एक गंभीर आपेक्षी के लिए भी संभव है कि वह चमक-दमक और दिखावे में पड़कर गलत व्यक्ति के पल्ले बंध जाए। ''हाँ, यह एक कठिन कार्य है, क्योंकि कभी-कभी नकली भी असली से ज्यादा अच्छा नजर आता है। सबसे पहले आपको देखना होता है कि यह आपके लिए कर क्या रहा है। शायद आपने ईश्वर को देखा हो। तो क्या बवंडर है? इसने तुम्हारे लिए क्या किया है? इसने तुम पर कौन-सा रूपांतरण उत्पन्न किया है? यही बात है। क्या इसने किसी तरह तुम्हें ज्यादा खुश, ज्यादा सघन मानव के रूप में रूपांतरित किया है? क्या तुम्हारा जीवन बेहतर हो गया है? बेहतर, नैतिकता के अर्थ में नहीं, बल्कि जीवन के तौर पर। क्या तुमने अपने अंदर की ओर कदम उठाया है? यदि ऐसा है तो भले ही गुरु नकली है, तो समस्या क्या है? उसका प्रयोग करो। वह तुम से चाह क्या रहा है। यदि वह तुम्हारा पैसा या तुम्हारी संपत्ति माँग रहा है, तो वह इस लायक नहीं है। तुम्हें मात्र उसी जगह जाना चाहिए जहाँ वे आपके जीवन की माँग करें।''

यह बेशक आश्चर्यजनक लगता है लेकिन सद्‌गुरु की शैली भी तो बहुत ज्यादा उदार नहीं है। कोई जो तुम्हारा जीवन माँग रहा है, आखिर वह इसका करेगा क्या? वह पूछते हैं। ''लेकिन मैं तो जीवन की माँग ही करता हूँ। उससे कुछ भी कम नहीं। यदि तुम यह दे देते हो, तो मैं इसे नहीं पाता हूँ। लेकिन सत्य तो यही है कि तुम अपना जीवन बाँट देने के इच्छुक हो-यही बात तुम्हें बदलती है। यह तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर देती है। यदि ये गुरु तुमसे तुम्हारे जीवन से कुछ भी कम माँग रहे हैं तो तुम निष्कर्ष निकाल सकते हो कि वे नकली हैं। लेकिन सबसे पहले यह देख लो कि यह कोई रूपांतरण उत्पन्न कर रहा है। एक धूर्त व्यक्ति भी सबसे पहले तुम्हें एक नमूना देता है, बाद में शायद वह तुम्हें ठगने की कोशिश करता है। लेकिन शुरू में जब तुम कोई माल लेने जाते हो, तो वे तुम्हें किसी चीज का मुफ्त नमूना देते हैं। इसे खाकर देखो। तुम्हारी समस्या क्या है? वे तुम्हें जहर नहीं देंगे— जहर देना खैर भविष्य में बिक्री के लिए ठीक नहीं रहता।''

सदगुरु में जो बात मुझे हमेशा लुभावनी लगी है वह है उनका जीवन के विविध पहलुओं के संबंध में ज्ञान और उस ज्ञान को व्यक्त करने का उनका प्रयासहीन तरीका। चाहे यह माउंट कैलास या मानसरोवर झील के रहस्यों पर तत्काल भाखित व्याख्यान हो या विभिन्न पवित्र स्थलों के संस्कारीकरण के विषय में विस्तार से बात करने की योग्यता हो, प्रत्येक व्यक्ति से जुड़े अंतरंग विवरण, उनके ज्ञान की सीमा वास्तव में आश्चर्यजनक लगती है। वह जानते कैसे हैं? वह सचमुच इतना कैसे जानते हैं? मैंने यह ज्ञात करने की हमेशा कोशिश की है। एक बार उन्होंने कहा, ''जब आप अपनी तार्किक सोच के आयाम के बिना देखते हैं, तब कोई समय और स्थान नहीं होता। यदि सामान्य रूप से आप देखना जानते हैं तो सबकुछ हर समय यहीं है। यह क्षण ही निरंतरता है, यहीं पर हर कहीं है।''

उन्हें इस विषय पर लापरवाह होने पर हमेशा खराब लगता है, लेकिन अरहस्यमयकरण के प्रति उनके सभी प्रयासों के अतिरिक्त वह इस प्रक्रिया को एक बिंदु सीमा के परे नहीं समझा पाते। जैसे इंटरनेट है वैसे ही एक 'इनरनेट' भी है। एक बार उन्होंने मुझे बताया। ''प्रत्येक कार्य जिन्हें हमेशा चेतना के स्तर पर किया जाता है, जीवित रहते हैं। और उन पर पहुँचा जा सकता है।''

जहाँ इसमें कोई भी पारंपरिक तर्क नहीं है, वहीं इसमें एक मूलभूत तर्क काम करता है। वह कहते हैं, ''समस्त रहस्यमय ज्ञान उस आयाम से आता है जहाँ लोग अपनी ज्ञानेंद्रियों से पहुँच ही नहीं पाते। यह बोध का पूर्णत: अलग आयाम है। जो तुम देखना, सुनना, सूँघना, स्वाद लेना और स्पर्श करना कर सकते हो वह सीमित है। ऐसी भी सूचनाएँ हैं जिनका बोध तुम आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा से नहीं कर सकते। जरा एक कैमरा या पेरिस्कोप के विषय में सोचो जिनसे तुम अलग तरीके से देखने का कार्य करते हो। जरा अल्ट्रासोनिक या सबसोनिक ध्वनि के विषय में सोचो। तुम्हारे कान आवाजों को नहीं सुन सकते लेकिन यह अस्तित्वान है। इसी तरह एक्सरे वह सब देख सकता है जो तुम्हारी आँख नहीं देख सकतीं। इसी तरह रहस्यात्मक ज्ञान से ऐसी सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा बोध में नहीं आ सकतीं। यह बोध का एक अन्य आयाम है।''

एक बार मैंने उनसे पूछ लिया कि वे इतने सारे और हमेशा नए-नए चुटकुले कहाँ से लेकर आते हैं। हर सत्संग में ऐसा लगता है जैसे उनके पास नए-नए चुटकुले होते हैं। उनके जवाब के लिए मैं जरा भी तैयार नहीं थी। उन्होंने कहा, ''मैं उन साथी यात्रियों, जो अंतहीन उड़ान में रहते हैं, के मन से निकाल लेता हूँ।'' एक क्षण उन्होंने मेरी ओर देखा मानो मेरी शक्ति का मूल्यांकन कर रहे हों और तब खेद में सिर हिलाते हुए कहा, ''इसमें चुटकुले हैं ही नहीं।''

अपनी विदेश यात्राओं के दौरान अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में भी वह लोगों के दिमागों से बातें जान लेते हैं। ''एक मेडिकल कॉन्फ्रेंस में लोग मेरे आधुनिक दवाओं के ज्ञान पर आश्चर्यचकित थे।'' वह अपनी इस बौद्धिक चोरी पर बिना क्षमाभाव के हँसने लगते हैं। एक बार कार सवारी के दौरान मैंने उनसे पूछा कि ऐसा कुछ है जिसे वह अपने वातावरण में तुरंत जान सकते हैं। उन्होंने उत्तर दिया, ''यदि मैं किसी ऐसे स्थान से गुजर रहा हूँ तो किसी तरह से संस्कारीकृत है तो मैं तुरंत जान जाऊँगा। और यदि कोई अभी हाल ही में मृत हुआ है मैं उसे भी जान जाऊँगा।''

ऐसा स्पष्ट रूप से उनकी माँ की मृत्यु के मामले में हुआ। सुशीला लूपस (एक चर्म रोग) बीमारी से ग्रसित और किडनी फेल की ओर तेजी से अग्रसर थीं। यह स्पष्ट था कि अंत निकट था। ''मैंने हैदराबाद में एक कार्यक्रम तय कर रखा था। मेरे पिता मेरे ऊपर भड़के हुए थे, क्योंकि मैंने इस कार्यक्रम को रद्द नहीं किया था।'' सद्गुरु कहते हैं, ''सारा परिवार पूरी तरह स्तब्ध था।'' जाने के पूर्व उन्होंने अपनी माँ से बात की थी और माँ ने भी उन्हें अपना काम जारी रखने के लिए कहा था। ''मैं जानता था कि वह जल्द ही चली जाएगी, लेकिन मैंने अपने कार्यक्रम तय कर रखे थे। पिछले छब्बीस वर्षों के दौरान मैंने एक भी कार्यक्रम रद्द नहीं किया है। इसलिए यद्यपि मुझे मालूम था कि वह अपनी साँसें गिन रही थी, फिर भी मैंने उससे कहा, देखो न, मुझे जाना होगा। उसने कहा, हाँ, ठीक है, जाओ।''

सद्गुरु को एक शुक्रवार को परिचय कार्यक्रम संचालित करना याद है। ''कार्यक्रम के लिए बहुत-से नामांकन हुए थे। पंजीयनों के बीच में ही, अचानक मुझे मालूम हो गया। मैंने घोषणा कर दी कि कार्यक्रम के संचालन हेतु मैं उपलब्ध

नहीं रहूँगा और इसे पंद्रह दिनों के पश्चात् पुन: निर्धारित कर दिया। मैंने अपनी मोटरसाइकिल उठाई और वापस लौट गया। मैं पेनुकोंडा में एक टेलिफोन बूथ के सामने रुका। उस समय एक बजा था। घर फोन किया। मैंने कहा जो हुआ था वह मैं जान गया, और मैं वापस लौट रहा था। मैं सुबह 6:30 पर पहुँच गया। अंत्येष्टि दोपहर को होनेवाली थी।''

लोगों के व्यक्तित्व को जाँचने एवं उनके विचार पढ़ने की उनकी योग्यता बहुत विख्यात है। कई लोगों ने यह बात उनमें देखी है (प्राय: वे परेशान ही हो जाते हैं।) कुछ तुच्छ, लेकिन उपयोगी विवरणों को भी वे जान लेते हैं। वह तेज सवारी करने के लिए जाने जाते हैं और सड़कों पर बहुत-से जोखिम इसलिए उठाते हैं, क्योंकि वह रास्तों का मूल्यांकन करना जानते हैं, कौन-से रास्ते पर जाना है, कौन-से रास्ते पर नहीं जाना है, रास्ते में पड़नेवाली बाधाओं व गतिरोधों की जानकारी उन्हें होती है। एक जर्मन साधक को उनकी जर्मनी से फ्रांस की भयंकर तेज सवारी हमेशा याद आती है, जिसके दौरान सद्गुरु को अपने अंतर्ज्ञान से मालूम हो जाता था कि कहाँ-कहाँ ट्रैफिक जाम होने की संभावनाएँ थीं। वह कहता है, ''उन्होंने उन सभी रास्तों को बिना सोचे-समझे छोड़ दिया और अपने गंतव्य पर रिकॉर्ड समय पर पहुँच गए।''

जहाँ एक तरफ भौतिक दुनिया की उन्हें आश्चर्यजनक जानकारी है, वहीं दूसरी ओर वह दूसरे क्षेत्रों (अलौकिक) में अपने द्वारा किए जा रहे कामों की जानकारी भी देते हैं। एक बार उन्होंने एप्पालशियन माउंटेन पर घूमने का एक विचित्र वृत्तांत कह सुनाया। बात वर्ष 2000 की है। ''मैं अकेला था और जंगलों के बीच से गुजर रहा था। अचानक मुझे एक आदमी दिखाई पड़ा। वह अकेला शांत खड़ा हुआ, निराशा और शर्म की स्थिति में था। वह अमेरिका की स्थानीय जनजाति की वेषभूषा में था। वह वहीं, बिना हिले-डुले खड़ा हुआ था, और मैंने पाया कि उस स्थिति में वह लगभग तीन सौ सालों से खड़ा हुआ था।''

हालाँकि उसका भौतिक शरीर नहीं रह गया था फिर भी उसकी ऊर्जाएँ वहीं अपरिवर्तित पड़ी हुई थीं। उत्सुकतावश सद्गुरु ने उस आदमी की जीवनी प्राप्त कर ली। ''यदि कोई अंतिम गति या अंतिम शांति की स्थिति में है तो मैं शीघ्र ही स्वयं को सम्मिलित कर देता हूँ। इन दोनों के बीच के स्तर की गतियों का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन अंतिम गति या शांति की स्थिति के लोग— मैं उनसे दूर नहीं रह सकता, क्योंकि वह मेरा क्रीड़ास्थल है। मैंने पाया कि इस आदमी पर अपने बड़े भाई की रक्षा की जिम्मेदारी थी, जो अपने समुदाय में एक तरह का अगुआ था। वह अपने बड़े भाई का काफी सम्मान करता था और उसके बगल में चलकर उसकी रक्षा करने को अपना विशेषाधिकार समझता था। तभी एक ऐसी स्थिति निर्मित हुई जिसमें दोनों के साथ धोखा हुआ और बड़ा भाई मारा गया। इसलिए अब यह आदमी वहाँ पूरी तरह असफल और दु:खी खड़ा रह गया। ये ऐसी चरम भावनाएँ थीं कि वह इसी तरह लगभग तीन सौ सालों तक खड़ा रह गया! बेशक, शरीर धरती पर गिर गया, लेकिन उसका शेष भाग वैसा ही खड़ा रहा जैसे वह उस समय था। मैंने सोचा कि अब उसके चलने-फिरने का समय आ गया था। शर्म और पराजय में बहुत समय तक रहना अच्छा नहीं होता। इसलिए मैंने उस स्थिति से आगे बढ़ने में उसकी मदद की।'' जैसा कि हमेशा होता है, उसका अपना हस्तक्षेप बड़े आकस्मिक भाव से प्रस्तुत किया जाता है। सद्गुरु उन कथावाचकों में से हैं जो यह जानते हैं कि किसी पंक्ति को कैसे हटाना है, और कैसे किसी बिंदु पर जोर नहीं देना है। इससे उनके श्रोता बार-बार रहस्य में पड़ जाते हैं। लेकिन स्पष्ट तौर पर यही तरीका है।

उनके कार्यक्रम की चर्चाएँ साल दर साल बहुत बढ़ जाती हैं। साल के कई महीने अपने कार्यक्रमों और सत्संगों के कारण वह देश से बाहर रहते हैं। जब वह आश्रम में होते हैं तब वह हर रात तीन या चार घंटों से ज्यादा नहीं सोते। जब उनकी व्यक्तिगत कार्यप्रणाली के विषय में पूछा गया तो वह कहते हैं कि उनका प्रतिदिन रखरखाव के अभ्यास में एक सूर्य नमस्कार (जिस पर वह कहते हैं कि उन्हें चालीस मिनट लगते हैं) और बीस सेकेंड का योग शामिल है। ''इतना ही, अंदर के सृजनकर्ता को जगाने के लिए लगता है,'' वह बड़े गूढ़ भाव से कहते हैं।

मैंने पूछा कि क्या गुरुओं को कठोर साधना से छूट मिली होती है। वह हँसकर कहते हैं, ''क्रिया न तो शरीर के लिए

होती है, न साँस के लिए। तुम्हें ऊर्जा शरीर को क्रियाशील करना नहीं आता है, इसलिए आप अपनी साँस और शरीर को माध्यम बनाकर प्रयोग करते हैं। लेकिन यदि आप उस सीमा में नहीं रहते तो बहुत कम समय में आप इसे क्रियाशील कर सकते हैं।''

वह कभी भी किसी भी अर्थ में कट्टर नैतिकतावादी नहीं रहे हैं और यही बात उनकी भोजन की आदत में भी परिलक्षित होती है। वह दिन में दो बार भोजन करते हैं। एक बार दिन के साढ़े-ग्यारह बजे, फिर शाम को साढ़े सात बजे। वह शाकाहारी हैं, उनके भोजन में हमेशा अनाज की अपेक्षा सब्जियाँ ज्यादा रहती हैं। जब शाकाहार का विकल्प आसानी से उपलब्ध नहीं होता, खासकर यात्राओं के दौरान तो वह समुद्री मछलियों का स्वाद लेना पसंद करते हैं। इस सर्वहारी भोजन से एक शाकाहारी अमेरिकनों के समूह ने अपनी आश्रम की प्रस्तावित यात्रा ही रद्द कर दी थी। वह संन्यासी जिसके संपर्क में यह समूह था, उसने कहा कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व वे वहाँ जाकर उस स्थान का अनुभव तो ले लें, लेकिन इस खुलासे से वे ऊपरी तौर पर बुरी तरह हिलकर रह गए थे।

जीवन के प्रति उनका प्रेम अन्य क्षेत्रों में भी विस्तीर्ण होता है। जब उनके पास समय होता है तो उन्हें भोजन तैयार करने में काफी आनंद आता है। वह दुनिया का सबसे छोटा मसाला दोसा बनाने का दावा करते हैं। उनकी बेटी इस बात का समर्थन करती है (और बड़ी खुशी के साथ वह बताती है कि वह दुनिया के सर्वोत्तम रसोईए हैं।) वे खेल-कूद के शौकीन हैं और इस ओर उनका उत्साह देखते ही बनता है। जब वह आश्रम में होते हैं तब आश्रमवासियों के साथ शाम को उन्हें वॉलीबॉल खेलते देखा जा सकता है। गोल्फ एक ऐसा खेल है जिसके प्रति वे काफी कटिबद्ध हैं। जब कभी उन्हें अपने व्यस्त कार्यक्रमों से कुछ दिन मिल जाते हैं, तो वह गोल्फ खेलने में मस्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् उनका संगीत के प्रति प्रेम (जब कभी उन्हें समय मिलता है, वह शास्त्रीय संगीत सीखते हैं, और उनके संगीत शिक्षक उन्हें उत्सुक छात्र बताते हुए कहते हैं कि कभी-कभी उनका ध्यान भटक जाता है।) साथ ही उन्हें कविता से बड़ा लगाव है (वे हमेशा ही पोल्ट्री फार्मवाले वर्षों की बात करते हैं जब उनके पास घंटों का समय उनके लेखन को समर्पित था।

तेज कारों के प्रति उनका प्रेम अभी भी बरकरार है और उनका जाना-माना उत्साह है। ''मैं लोगों के साथ सत्संग में मदमस्त होकर भावावेश में रो सकता हूँ। अगले ही क्षण अपनी कार में सवार होकर सर्वाधिक जोशीला ड्राइवर भी हो सकता हूँ।'' यह बात उन्होंने बड़े गर्व से तब बताई जब वह किसी योगी द्वारा उसके भीतर इडा और पिंगला—चंद्र और सूर्य तत्वों—नाड़ियों को नियंत्रित करने की बात कर रहे थे।

''इस बार कैलास की यात्रा पर, मैं चीन में सबसे जोशीला ड्राइवर था। तिब्बती ड्राइवर मानते हैं कि केवल वही ड्राइविंग कर सकते हैं। लेकिन जो अधिकतर लोग तीन दिनों में करते थे, मैं एक ही दिन में कर लेता था। जब मैं पहुँच गया और अपनी कार से उतरा, तिब्बती ड्राइवरों ने अपनी सिगरेट फेंकी और हाथ जोड़कर मेरे सामने खड़े हो गए। इसलिए नहीं कि मैं गुरु हूँ और कुछ और बल्कि मेरी ड्राइविंग के कारण! जब आपको अपने भीतर के दोनों पहलुओं का नियंत्रण मालूम होता है तो आप ध्यानशील या वाह्यगामी— हो सकते हैं—स्थिति के अनुसार।''

हँसते हुए उन्होंने आगे कहा, ''शिव ने हर किसी के लिए दो लकीरें खींचीं लेकिन मेरे लिए मात्र एक लकीर।'' मैंने कहा ऐसा पक्षपात क्यों? ''अरे, वह मेरे साझेदार हैं, वह पक्षपाती हैं।'' वह हँसे और समझाने लगे; ''एक जागृत व्यक्ति के लिए सूर्य और चंद्रमा का अस्तित्व नहीं होता। द्वैत रहता ही नहीं। दोनों लकीरें एक में ही मिल जाती हैं।''

स्पष्ट है, कोई भी जो सूर्य और चंद्र तत्वों को संतुलन में संचालित कर लेता है, उसके पास इच्छानुसार स्थितियों का प्रत्युत्तर देने की स्वतंत्रता होती है। ''कभी जब मेरे पास समय होता है तो मैं रोता हूँ।'' वह कहते हैं, ''मैं इसमें सक्षम हूँ। मैं हँसने से रोने में आ सकता हूँ, क्षणभर में ही। ऐसा इसलिए कि जो अंदर चल रहा है वह चेतन है। इस दुनिया में बहुत-सी चीजें ऐसी हैं जिनके लिए आँसू बहाए जा सकते हैं। और बहुत-सी चीजें ऐसी हैं जिनके लिए हँसा जा सकता है, है ना? यदि मैं चाहूँ तो एक फूल की तरफ देखकर रो सकता हूँ। मैं एक पक्षी या बादल को देखकर रो सकता हूँ। मैं भावनात्मक रूप से अपाहिज नहीं हूँ, मैं भावना में सक्षम हूँ, लेकिन मैं स्थितियों में विवश हो जाने को बाध्य नहीं

होता।''

उनकी रूखी व संक्षिप्त बातों की क्षमता और तीक्ष्ण बुद्धि के बावजूद सद्गुरु को जाननेवाला कोई भी, उनके भावनात्मक पक्ष के प्रति संदेहास्पद नहीं हो सकता। जैसा कि एक आश्रम रहवासी का मानना है, ''मेरा अनुमान है हममें से सभी को किसी-न-किसी तरह उनके ममत्व और कोमलता की अनुभूति हुई है, जो सद्गुरु की विशेषता है। बिलकुल सहज रूप से वह हमारे लिए सर्वाधिक दयावान व्यक्ति हैं। यही बात हमें कठिन क्षणों में संभाले रहती है।''

लगभग प्रत्येक महासत्संग के अंत में प्राय: उनकी आँखों में आँसू होते हैं। एक बार मैंने उनसे पूछा कि क्या वे आँसू प्रेम या संवेदन के होते हैं? उन्होंने बेझिझक सहज उत्तर दिया, ''सघनता और समाहितता के।''

लिंग भैरवी मंदिर के हाल ही में संपन्न संस्कारीकरण के दौरान सद्गुरु के आँसू खुलकर बहे। उन्होंने स्वीकार किया कि इसकी वजह देवी की ऊर्जा और पांच हजार साधकों की भारी शक्ति थी जिससे वह अभिभूत हो उठे। उन्होंने बड़ी रहस्यमयता से कहा, ''मैं दो के बीच दबकर रह जाता हूँ। देवी की शक्ति से मुझे आशीष मिल रहा है। इसलिए यदि मैं इस तरह देखता हूँ तो मैं रोता हूँ और यदि मैं दूसरी तरह से देखता हूँ तो रोता हूँ।''

उन्होंने यह बात स्वीकार की कि जिस किसी ने भी उन्हें सड़कों पर देखा होगा, वह उन्हें भावुक व्यक्ति नहीं मान सकता। लेकिन जीवन को पूर्णता में जानने के लिए व्यक्ति को न तो पूरी तरह आदमी होने की आवश्यकता है और न पूरी तरह औरत। ''यदि पूर्ण आदमी होने की जरूरत पड़े, यदि पूर्ण शैतान होने की जरूरत पड़े, और पूर्ण भगवान भी होने की जरूरत यदि पड़े— तो मानव चेतना में यह संभावना उपलब्ध है। संभावना की जानकारी प्रत्येक मनुष्य को होनी चाहिए।''

लोगों और परिस्थितियों के प्रति उनके खुलेपन से उनके जाननेवाले लोगों में रक्षात्मक भाव आ जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो यह बताते हैं कि सद्गुरु की समाहितता की भावना कभी-कभी अविवेकपूर्ण हो जाती है। ''शिव को भोलेनाथ कहा जाता है, है ना?'' एक बार एक साधक ने मुझसे पूछा था। उसका इशारा साफ था; शायद सद्गुरु अपनी अच्छाई के लिए अत्यधिक विश्वासी थे।

स्वयं सद्गुरु अपने शुभाकांक्षी रक्षकों से खुशी और ओपचारिक व्यवहार करते से लगते हैं। हाल ही में उन्होंने अपने जीवन के बिंदास रवैये के विषय में रोचक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, ''मैं एक ऐसा जीवन जीता हूँ जो पूरी तरह चौकसहीन है। कोई भी मुझे धोखा दे सकता है। यह बड़ा सहज है। इसलिए नहीं कि मुझमें स्वयं की रक्षा करने की बुद्धि नहीं है, बल्कि मात्र इसलिए कि जो मेरे पास है उसे चोरी नहीं किया जा सकता। यदि कोई इसे ले लेता है तो मुझे बहुत खुशी होगी। आप मुझे धोखा देकर अच्छी तरह रहने के विषय में नहीं सोच सकते। ऐसा कभी नहीं होगा। यह कोई धमकी या अभिशाप नहीं है। यह तो जीवन का तरीका है। आप आकाश की ओर थूककर, अपने थूक का छींटा स्वयं पर न पड़ने की कभी नहीं सोच सकते।''

एक बार एक खुशमिजाज पत्रकार ने उनसे पूछा कि यदि उन्हें कोई आतंकवादी मिल जाए तो वह क्या करेंगे। इस पर उन्होंने जवाब दिया, ''सबसे पहली बात तो यह है कि मैं किसी को आतंकवादी के रूप में नहीं देखता, हर किसी को मैं संभावित आतंकवादी के रूप में देखता हूँ। यदि आप किसी को जरूरत से ज्यादा छेड़ते हैं तो हर किसी के आतंकवादी होने की संभावना है। लेकिन यदि कोई आतंकवादी गतिविधियों में शामिल रहा व्यक्ति मेरे पास आता है, तो शायद मैं उसे गले से लगा लूँगा। यह तरीका कारगर होने में कभी चूक ही नहीं सकता—यदि वह स्वयं के अंदर एक सुखद अहसास महसूस करता है, यदि उसका क्रोध और घृणा कुछ समय के लिए समाप्त हो जाते हैं, तो वह किसी के लिए आतंकी नहीं रह जाता।'' यहाँ तक तो एक गुरु की जुबान से निकला हुआ यह उत्तर स्वीकार्य था। लेकिन इसके बाद सद्गुरु ही तो हैं, और वह ऐसा कहने से स्वयं को रोक न सके, ''लेकिन यदि मैं किसी ऐसे व्यक्ति से मिलूँ जब वह आतंकी कार्य को अंजाम दे रहा है, तब मैं उसकी हत्या कर दूँगा।'' वह पत्रकार एकदम से सहमा-सा दिखा, और कहा, ''यकीनन आप उसकी हत्या कर देंगे?'' सद्गुरु ने जवाब दिया, ''अरे जब वह आदमी गोलियाँ बरसा रहा है तो भला

आप मुझसे क्या करने की अपेक्षा रखते हैं? क्या यह कहने की—'असतो मा सद्गमय:।''

और बेशक, यही सद्गुरु का उत्तर है। कुछ भी—अहिंसा भी नहीं—उनकी धार्मिक मान्यताएँ नहीं हैं। जिस व्यक्ति को आवश्यकता है उसके लिए वह अपने स्वयं में ही संवेदना हैं, अगले ही क्षण जरूरत पड़े तो वह जरूरत के अनुसार नृशंस बन सकते हैं। आपको सचेत रहना है और जो जरूरी हो, वह करना है। यही बुद्धि है, यही चेतना है और यही जीवन है। जब आप में चेतना होती है तो आपको नैतिकता के ढाँचे की जरूरत नहीं पड़ती। इस संस्कृति की हमेशा से यही जरूरत रही है। जब कभी भी चेतना में गोते लगाए गए, सही तरह के लोग सामने आते रहे, इस पर कार्य किया और इसे पल्लवित किया। अब दुर्भाग्यवश हम एक ऐसे खतरनाक बिंदु की ओर बढ़ रहे हैं जहाँ न नैतिकता है और न चेतना। यदि हम मनुष्य की चेतना को ऊपर उठाने के लिए तुरंत कुछ नहीं करते तो हम नैतिकता के भयंकर जाल में फँस जाएँगे। और यदि हम यह भी नहीं करते हैं, तो हम घोर अव्यवस्था में पड़ जाएंगे।''

कुछ वर्षों के दौरान उनमें स्पष्ट रूप से काफी बदलाव आया है। भारती कहती है सद्गुरु अब वह व्यक्ति नहीं हैं जिन्हें वह कभी जानती थी। ''जब मैं पहली बार उनसे मिली तो वह आग के गोले की तरह थे। अब वह ज्यादा मधुर हो गए हैं। उनकी उपस्थिति की भौतिक भयंकरता लगभग समाप्त हो चुकी है।'' माँ कपूरी इस बात से सहमत होते हुए कहती हैं, ''वह अब कभी-कभी इतने खूबसूरत-शिष्ट और चालाक लगते हैं कि मुझे उन्हें उस परिपक्व, सघन व्यक्ति जिन्हें मैं कभी जानती थी, से जोड़ने में कठिनाई महसूस होती है। लेकिन अब मैं उनसे सामाजिक रूप से जुड़ी नहीं हूँ—केवल आंतरिक संबंध रह गए हैं— इसलिए व्यवहार संबंधी परिवर्तनों का कम प्रभाव पड़ता है।''

सद्गुरु इस बात की पुष्टि करते हैं कि उन्होंने कुछ परिवर्तन स्वयं में किया है। ''संस्कारीकरण के बाद मैंने एक कविता लिखी जिसमें मैंने कहा—'शिखर में बहुत समय रह चुका। अब जीवन की घाटी में चरने का समय है...' अब मैं यही तो कर रहा हूँ—घाटी में चर रहा हूँ। पहले मैं एक आत्मघाती दस्ता था। केवल एक ही काम मैं करना चाहता था और जब उसके बाद शरीर टूट भी गया तो मैंने तनिक परवाह नहीं की। मेरी ऊर्जाएँ मात्र एक ही उद्देश्य की ओर घूम-घूमकर जाती थीं और कुछ भी नहीं। वह था इन सभी लोगों को एक ही दिशा में ले जाना—जीवन में विभिन्न प्रतिरोधी, नासमझ और उलझे स्तरों के लोगों को। इसमें कुछ जोर-जबरदस्ती की जरूरत थी। लेकिन ध्यानलिंग के संस्कारीकरण के बाद, मैंने स्वयं को अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के बदलाव के लिए तैयार कर लिया।''

जहाँ कुछ सालों के दौरान बहुत-से लोग उनकी भूमिका और तौर-तरीके में एकदम से आए परिवर्तन के कारण विक्षुब्ध रहे हैं, वहीं सद्गुरु एक यथार्थवादी लक्ष्य के प्रति जरा भी नहीं बदले—जो किए जाने की जरूरत है, उसे करने का महत्त्व। उनके शिष्यों ने उन्हें ध्यानलिंग की रचना करनेवाले उदासीन संत और लिंग भैरवी का संस्कारीकरण करनेवाले हर्षोन्मादी भक्त के बीच दोलन करती हुई स्थिति में पाया है। इसलिए समय-समय पर उनके शिष्यों द्वारा ये प्रश्न उठते रहे हैं कि सद्गुरु और ब्राण्ड इशा वस्तुत: हैं क्या? ''मैं वास्तव में किसी ब्राण्ड से मतलब नहीं रखता। मेरा मतलब मात्र इस बात से है कि आप कहाँ हैं। क्या आप संभावना का सामना करते हुए खड़े हैं या आप किसी और के सामने खड़े हुए हैं? मेरा प्रयास सिर्फ यही है कि आप दरवाजे की ओर मुँह करके खड़े हों। अचेतन स्थिति में भी यदि आप सही दिशा की ओर हैं, तो ठीक है। भले ही आप नींद में चलें, तो भी ठीक है; तब भी आप पार हो जाएँगे। मैं सोचता हूँ कि आवश्यक ब्राण्ड भी हमेशा से व्यर्थ नहीं रहे हैं— जो कारगर हो उसे करते रहना। यही मेरा ब्राण्ड है। अब यह ग्रंथों में लिखा है या नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह कारगर है—यही मेरा ब्राण्ड है, और अब भी यही ब्राण्ड है।'शायद' वह हँसते हुए स्वीकारते हैं, ''आजकल यह ज्यादा जटिल होता जा रहा है...।''

जरूरत तो निश्चित ही है, लेकिन शायद यह ज्यादा मूक है। निस्संदेह अब उनके पास ज्यादा से ज्यादा लोग पहुँच रखते हैं, और वह ज्यादा सामाजिकता पसंद भी हैं। उनका कार्यक्षेत्र अंतरराष्ट्रीय है, और विविधताओं एवं पेचीदगीपूर्ण स्थितियों में खेलने को लेकर वह अनभिज्ञ भी नहीं हैं। एक योग केंद्र के प्रमुख होने के साथ-साथ बहुत-सी ऐसी सामाजिक परियोजनाओं में पहुँच रखना, कारपोरेट के दिग्गजों को और सरकारी अधिकारियों को संतुष्ट रखना और

अपना संगठन कठिन राजनीतिक स्थितियों में आगे ले जाने के लिए व्यवहार कुशलता, चालाकी व कठोरता की जरूरत तो पड़ती ही है। और स्पष्ट है कि इस काम में वह निपुण हैं।

उनके एक पहलू को मैं अंदर से अभी भी समझने की कोशिश कर रही हूँ। एक ऐसा व्यक्ति जो इतने विशाल आध्यात्मिक समुदाय का संचालन कर रहा है, उसके लिए कुछ हद तक राजनीतिक जागरूकता को मैं समझ सकती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि यदि वह कुछ आवश्कता के स्तर पर हद पार करने में नहीं लगे होते, तो कई लोगों को, मुझे भी उनके अस्तित्व का पता ही नहीं रहता। लेकिन मेरा विचार है कि मैं एक ऐसे विनीत भाव के आध्यात्मिक गुरु के प्रति ज्यादा सहज रहती जो चर्चा में रहने से दूर रहता, ध्यान-मनन का शांत जीवन जीता, कटिबद्ध साधकों के छोटे-से समूह को उपलब्ध रहता, आध्यात्मिक विषयों पर अपनी राय देता और अन्य मुद्दों पर टीका-टिप्पणी करने से बचता। लेकिन ऐसे किसी गुरु के स्थान पर यह दुस्साहसी, हर्षोन्मादी व्यक्ति है जो मेरा गुरु बन गया, जो साउथ अफ्रीका में इंडियन प्रीमियर लीग मैचों का मुख्य अतिथि रहता है, उच्चस्तरीय आर्थिक सभाओं की शोभा बढ़ाता है, रेशमी शाल धारण करता है, नारीवाद से लेकर समलैंगिकता तक के प्रश्नों पर टिप्पणी करता है।

एक बार मैंने उनके वर्ल्ड इकॉनॉमिक फोरम पर जाने की पूर्व संध्या पर उनसे पूछा, ''इस संगठन के साथ समझौता कर रहे हैं, क्या?'' ''यह समझौता करने की बात नहीं है,'' उन्होंने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, ''यह अपने संसाधनों और ऊर्जा को वहाँ लगाना है जहाँ इससे अधिकतम परिणाम प्राप्त होता है। आप अपने बीज पत्थरों में नहीं बोते, आप इसे उपजाऊ मिट्टी में बोते हैं। वास्तविकता यह है कि अब तक आध्यात्मिक लोग अपनी जिम्मेदारियों से बचकर भागते रहे हैं। जिम्मेदारियों से भागना योगदान नहीं है। यदि लोग, समाज, यहाँ तक कि भ्रष्टाचार आपका कार्यक्षेत्र है तो इकॉनॉमिक फोरम भी आपका कार्यक्षेत्र है। इस देश में गुरु हमेशा राजाओं के पास जाया करते थे, इसलिए नहीं कि उन्हें पैसों की जरूरत थी, बल्कि इसलिए कि यदि आप अपनी कुछ सलाह उस व्यक्ति (राजा) को देंगे, तो लोग अमन से रहेंगे। यदि आप एक गाँव में जाकर एकांत में रहते हैं, तो राजा एक दिन में ही आपका काम ध्वस्त कर देता है। आध्यात्मिक कार्य करने के लिए मुझे किसी विज्ञापन या प्रचार की जरूरत नहीं है। प्रथम पंद्रह वर्षों तक मैंने कभी भी प्रेस कॉन्फ्रेंस नहीं की, कभी टेलीविजन पर नहीं आया; कोई बैनर-पोस्टर नहीं थे। लेकिन मैं सदा व्यस्त रहा। आध्यात्मिक कार्यों के लिए मुझे प्रचार की जरूरत नहीं है, लेकिन अपने कार्य के सामाजिक हिस्से के लिए, मुझे प्रचार की बहुत ज्यादा आवश्यकता है।''

तो क्या एकांतवासी, भगवा वस्त्र-धारी ऋषियों के दिन लद गए, आज के गुरु तो साहसी व वायुयानों में यात्रा करनेवाले, बाजार की माँग का सुराग रखनेवाले हैं, क्या इस संक्रमण के दौरान कुछ खो नहीं गया? उन्होंने हँसते हुए कहा, ''योगी हमेशा से ही साहसी रहे हैं।'' उन्होंने हाजिर जवाब दिया, ''वे हमेशा ही उत्साही लोग रहे हैं। रहस्यवादी भी रंगीन तरह के लोग थे। केवल ऐसे लोग जो उनकी तरह बनने का प्रयास कर रहे हैं, वे ही लंगोटी धारी हैं। यह महसूस करने में कुछ समय लगता है कि कोई लंगोटी धारी तुम्हें आध्यात्मिक नहीं बना सकता। बल्कि सभी ने भगवा वस्त्र के चरण से गुजरकर यह जाना होगा। यदि तुम अपने जीवन में लंगोटी धारी के चरण से गुजरते हो, तो तुम इसे (उन्होंने अपने कपड़े की ओर इशारा किया।) एक अलग रुतबे से पहन सकते हो।''

एक अन्य अवसर पर, उन्होंने कहा, ''लोग कहते हैं, कि मैं जार्ज बुश से ध्यान करा सकता हूँ। अब वह जो निर्णय लेगा वे गुणात्मक रूप से भिन्न रहेंगे। यदि उसने इराक पर आक्रमण के पहले ध्यान कर लिया होता तो वह अलग तरह का निर्णय लेता। मैं बुश को एक आदिवासी महिला से अधिक नहीं आँक रहा हूँ। इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। लेकिन कष्ट पैदा करके फिर उसकी राहत का प्रयास करने के बदले, हम उन तक पहुँचकर, जो सामाजिक जिम्मेदारियों की स्थितियों में हैं, हम उन कष्टों को टाल सकते हैं जो जारी हैं।''

चाहे वह कोई राजनीतिज्ञ हो या पॉप स्टार, उनमें से किसी को भी योग प्रशिक्षण देने में उन्हें कोई गुरेज नहीं है। लेकिन, एक बार मैंने उनसे पूछा, क्या समाहितकर्ता और भेदभाव न करने की स्थिति के बीच बारीक-सा अंतर नहीं

होता? लेकिन पेज थ्री स्तर के आध्यात्मिक साधकों को उत्पन्न करने के खतरे क्या हैं? उन्होंने उत्तर दिया, ''जो मैं कर रहा हूँ उसको लेकर मैं कोई समझौता नहीं कर सकता। बल्कि मैं किसी माइकल जैक्सन के लिए निश्चित ही कार्यक्रम करूँगा, यदि वह सभी के लिए इसे उचित बताता है। अब सही बात तो यह है कि किसी माइकल जैक्सन जैसे का ध्यान करने से उसके करोड़ों अनुयायी अपनी आँखें बंद करके उसके जैसा होने की कोशिश करेंगे। यह बुरी बात नहीं है। वह मुझसे ज्यादा प्रभावशाली रहेगा। मेरा उससे कुछ सरोकार नहीं है। तुम्हें व्यावसायिक लगता है? मैं तो इसे समझदारी समझता हूँ।''

एक लंबे समय से जुड़े स्वयंसेवी ने इशारा किया कि इशा फाउंडेशन के साथ अपनी यात्रा के दौरान अपने हिस्से की, इसमें बने रहने या छोड़ने की उलझनों से उबरने के बाद, जो बात उन्हें इसमें जुड़े रहने के लिए उत्साहित करती है, वह यह है कि यह मौलिक रूप से एक उपयुक्त संगठन है। इसमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद, भाई-भतीजावाद को सावधानीपूर्वक अलग रखा गया है। ''इस देश के अन्य आध्यात्मिक संगठनों के विपरीत जाति, पंथ और परिवार यहाँ के नियंत्रक घटक नहीं हैं,'' उनका कहना है, ''यदि यहाँ परिवार के सदस्य हैं जो अपनी भूमिका निभाना चाहते हैं, तो उन्हें अन्य लोगों की तरह संगठन के साथ आगे बढ़ना होगा। उन्हें कोई विशेषाधिकार नहीं दिया जाता। भारत के बहुत-से दूसरे आध्यात्मिक संगठनों में आध्यात्मिक प्रक्रिया तो समर्पित स्वयंसेवियों द्वारा दी जाती है, लेकिन जब पैसे और संपत्ति की बात आती है तो इसमें बड़े करीब से गुरु के परिवारवालों का एकाधिकार रखा जाता है। इससे इन संगठनों के विषय में क्या मालूम होता है?''

यद्यपि सद्गुरु सार्वजनिक भूमिका निभाने का स्वाद चखते हैं, फिर भी उनके अनुसार वह 'जान-बूझकर असभ्य' बने रहने को प्राथमिकता देते हैं। इसलिए जहाँ उनका तौर-तरीका सामाजिक रूप से बहुत कम अनुपयुक्त रहता है, वहीं दूसरी ओर वह दुनिया के कोई सर्वाधिक चतुर कूटनीतिज्ञ भी नहीं हैं। पहले वर्ष जब वह वर्ल्ड इकानॉमिक फोरम में शामिल हुए, तब उन्होंने अपने तीक्ष्ण भाषण और स्पष्टवादी सोच से बहुत से प्रतिभागियों को धराशायी कर दिया। लेकिन, फिर शाम के नृत्य कार्यक्रम में उत्साहपूर्वक भाग लेकर उन्होंने इसे उड़ा दिया। ऐसा बरताव एक संत के लिए स्वीकार्य नहीं था। इससे कई उद्योगपति और उनकी पत्नियाँ हिलकर रह गए। वे सभी शराब पी रहे थे और नाचने में संकोच कर रहे थे। ''क्योंकि वैसे तो मैं हर समय नशे में ही रहता हूँ, मैं गया और नाचने लगा!'' कुछ तो इस नर्तक योगी के प्रति प्रेमासक्त हो गए और दूसरे यह सब पचा नहीं पाए।

एक बार सद्गुरु ने कहा, ''एक गुरु का काम संप्रेषित करना होता है। संप्रेषण अध्यापन से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है, अध्यापन तो मात्र दरवाजे पर दस्तक देना है।''

वह ऐसे व्यक्ति हैं जो मान्यता को आत्मखोज की राह का रोड़ा, या भार स्वरूप मानते हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सद्गुरु की शिक्षा की कोई सैद्धांतिक प्रणाली नहीं है जिसे 'सद्गुरु शिक्षा' कहा जा सके। वह कहते हैं कि उनका उद्देश्य सभी निर्मित मान्यताओं को खत्म करना है, इसमें अपना योगदान देना नहीं है।

इशा योग कार्यक्रमों में काफी गैर तारतम्य बातें हैं, जल्द ही यह स्पष्ट होता है कि किसी बात का मुख्य बिंदु कहीं और है।

''मैं आपके तर्क को आकर्षित करता हूँ क्योंकि यही एक तरीका है जिससे मैं आपको अपने साथ बैठा सकता हूँ।'' वह प्राय: कहते हैं, ''ज्यों ही मैं तार्किक होने से हटूँगा, आप खड़े होंगे और चले जाएँगे। इसलिए मैं तार्किक हूँ, लेकिन एक सीमा तक। यदि मैं निर्वाण की बात करूँ तो जहाँ तक आपकी बात है, यह एक बहुत बड़ी बात होगी। और यदि मैं स्वयं को प्रकट करता हूँ तो आप कल वापस नहीं आएँगे। हर स्थिति में तार्किक दिमाग, इसकी अपनी परिभाषा से ही, हर चीज को दो भागों में बाँट देता है। लेकिन निर्वाण का अभिप्राय केवल एक ही है। इसलिए आप निर्वाण की चर्चा नहीं कर सकते आप इसके आसपास की बातें कर सकते हैं।'' और वह इसके आसपास की बात करने में बहुत अच्छे हैं। और इसके पीछे उनकी यह सोच है कि उनके श्रोता लौटकर आते रहते हैं। अन्य बहुत से रहस्यवादी संतों की तरह

सद्गुरु भी विरोधाभासी हो सकते हैं।

एक बार मैंने उनसे पूछा, ''रहस्यवादी होने का तात्पर्य—सही अर्थ में क्या होता है?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''दो गायें एक चरागाह में चर रही थीं। एक ने दूसरी से कहा, 'मैड काऊ' रोग के बारे में तुम्हारी क्या राय है? दूसरी ने कहा, 'मैं इन बातों से मतलब नहीं रखती। खैर मैं तो हेलिकॉप्टर हूँ।''

''यदि एक गाय महसूस कर ले कि वह गाय है तो वह सेलिब्रिटी—एक पवित्र गाय-बन जाएगी। यह उतना ही सरल है। यह आत्मबोध का प्रश्न है। भारत में हमने रहस्यवादी संतों को 'आत्मबोध' प्राप्त प्राणी कहा है। यह किसी चीज का आविष्कार या खोज करने का काम नहीं है, यह तो मात्र इतना महसूस या बोध कर लेना है कि आप हैं कौन। यदि कुछ ऐसा है जिसे तुम समझ नहीं पा रहे हो तो यह तुम्हारे लिए रहस्यय है। वह, जिसके बारे में सोचा जाता है कि उसे वह सबकुछ मालूम है, जो दूसरों को नहीं मालूम, वही रहस्यवादी संत कहलाता है। लेकिन रहस्यवादी संत वह व्यक्ति है जिसने यह बोध कर लिया है कि वास्तविकता क्या है। दूसरे नहीं जानते क्योंकि वे इतने खोये हुए हैं कि जीवन क्या है, इस बात पर ध्यान नहीं दे पाते।''

फिर इस ज्ञान में इतना विशेष क्या है? इसमें इतनी बड़ी बात क्या है कि एक गाय को अपना गाय होना मालूम हो जाए? उत्तर में वह कहते हैं, ''यदि तुम जीवन को जान लो, यदि तुम सत्य को जान लो, तो तुम जान जाओगे कि कैसे सभी चीजें चलती हैं। तब यदि तुम्हें प्रेम या हर्षोन्माद या आनंद चाहिए, तो यह तुम्हें हासिल है। मनुष्य की गहनतम इच्छा स्वतंत्रता है। और यह भी तुम्हें उपलब्ध है। चामुंडी हिल में मेरे अनुभव के बाद समय और स्थान मुझमें ही मिलना शुरू हो गए। अचानक—जो वहाँ था वह यहाँ हो गया; जो तब था वह अब हो गया। मैं हर किसी का भूत, वर्तमान और भविष्य एक समय ही, एक साथ देख सकता था। यह सब एक शानदार उलझन थी। लेकिन यह पूर्णत: खूबसूरत भी थी। तब मैंने महसूस किया कि सभी मानवीय अनुभव स्वनिर्मित हैं। हालाँकि अधिकतर मनुष्य यह समझते हैं कि उनके अनुभव उनके आस-पास की घटनाओं से निर्मित हैं लेकिन मैंने महसूस किया कि ये सौ फीसदी स्वनिर्मित हैं। आप अपने अनुभवों को जैसा चाहें बना सकते हैं। एक क्षण की खुशी अपने भीतर महसूस करने के लिए, हर आदमी कितना तिरस्कार सहन करता है। क्षणभर पूर्णता को महसूस करने के लिए, लोगों ने अपने जीवन को क्या सर्कस बना रखा है। और वह भी कभी पर्याप्त नहीं होगा। आदमी में हमेशा कुछ और पाने की इच्छा बनी रहेगी। मजबूरी के परे जाने की यह मजबूरी ही आधारभूत मानवीय आवश्यकता है।''

सद्गुरु के एक चुटकुले से लगता है कि उनकी मनुष्यों के प्रति राय चापलूसीपूर्ण नहीं है। दो मगरमच्छों की मुलाकात हुई। उनमें से एक खूबसूरत और मोटा-ताजा दिखाई दे रहा था, दूसरा एक वर्ष के सम्यम कार्यक्रम की तरह दिखाई दे रहा था (सात दिन के अग्रिम इशा कार्यक्रम की ओर इशारा है जिसमें भोजन को सादा कहना एक न्यूनोक्ति होता।) वह झील जहाँ वे रहते थे, वह अदालत के करीब थी।

दुबले-पतले मगर ने कहा, ''अरे मित्र तुम इतने मोटे-ताजे कैसे हो गए? हम दोनों तो एक जैसा ही भोजन कर रहे हैं, लेकिन तुम तो बड़े अच्छे लगते हो। जरा मुझे देखो। मैं तो हड्डियों का ढाँचा और चमड़ी मात्र हूँ।''

मोटे मगर ने कहा, ''तुम अपना शिकार कैसे पकड़ते हो?''

दुबले-पतले मगर ने कहा, ''मैं पार्किंग स्थल के पास जाकर, जहाँ वकील अपनी कारें खड़ी करते हैं, ताकता रहता हूँ। और जब वे अपनी कार का दरवाजा खोल रहे होते हैं, मैं कार के नीचे से जाकर, उन्हें पकड़ लेता हूँ, कार के नीचे खींच लेता हूँ, उन्हें हिलाकर सारी गंदगी बाहर करने के बाद उन्हें खा जाता हूँ।''

दूसरे मगर ने कहा, ''यही तो गलती है। यदि तुम सारी गंदगी बाहर निकाल दोगे तो जो बच रहता है, वह तो ब्रीफकेस मात्र है।''

''तो यदि हम तुम्हें हिलाकर सारे कर्म बाहर निकाल देते हैं,'' सदगुरु कहते हैं, ''तो क्या रह जाता है? ज्यादा कुछ नहीं।''

लेकिन फिर वही धुरीय विरोधाभास। यदि मनुष्य गंदगी के ढेर और एक ब्रीफकेस से ज्यादा कुछ नहीं है तो फिर गुरु का अपना सारा जीवन मानवीय दशा को समझाते हुए क्यों बीत जाता है, इसकी तार्किकता क्या है? प्रेरणा क्या है? एक बार सद्‍गुरु ने मुझे बताया, ''यह बिलकुल गलत बात है कि तुम्हें कुछ करने के लिए अति उत्साहित हो जाना चाहिए।'' मैंने पूछा, ''क्या बिना फल की चिंता किए हुए पूर्ण संलिप्तता होनी चाहिए?'' उन्होंने, निष्काम कर्म जैसी घिसी-पिटी बात की संभावना के प्रति सचेत रहते हुए तुरंत कहा, ''मैं बहुत संलिप्त हूँ। लेकिन यदि यह नहीं होता, तो मैं टूट तो नहीं जाऊँगा। हमारों लोगों के साथ मैं बहुत गहराई और उत्साहपूर्वक संलिप्त हूँ। यदि आप कष्ट के भय से मुक्त हैं, तो क्या आप स्वयं को जीवन में संलिप्त करने से डरेंगे? अभी तो आप सामान्य रूप से कष्ट के डर से हिचकिचा रहे हैं। यदि कष्ट का भय समाप्त कर दिया जाए तो क्या आप अपने आसपास की चीजों में स्वयं को पूरी तरह संलिप्त नहीं करेंगे?

''क्या आप स्वयं को जीवन में नहीं झोंक देंगे? क्या आप कम की अपेक्षा ज्यादा प्रेम नहीं करेंगे? यह आश्रम, ये भवन-इमारतें, जो कुछ भी हम कर रहे हैं, व्यक्तिगत तौर पर मेरा इनसे जरा भी सरोकार नहीं है। ज्यों ही मैं यह बात कहता हूँ लोग सकते में आ आते हैं। या वे पूछ बैठते हैं, 'यदि इनका आपसे कोई सरोकार नहीं है, तो आप यह सब कर क्यों रहे हैं?' इसी बात को आपको समझने की आवश्यकता है। हालाँकि व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए ये सब कोई सरोकार नहीं रखते, फिर भी, मैं अपना जीवन यह सब करते हुए गुजार देना चाहता हूँ। मैं यह सब इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि इनका मेरे लिए कोई विशेष महत्त्व है, मैं इसलिए करता हूँ कि इनकी जरूरत है, बस।''

शुरू से ही सद्‍गुरु की जो बात मुझे अच्छी लगी, वह यह कि वह निष्ठा और तर्क, आध्यात्मिकता और विज्ञान, पवित्र और भौतिक में कोई विभाजन करने से इनकार कर देते हैं। वह प्राय: इस बात को दुहराते हैं, आप भौतिक चीजों में हलकी-फुलकी रुचि रखते हुए आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, हालाँकि आप सोचते हैं कि यह इसका उलटा है। ''मुक्ति मेरा विचार नहीं है, यह तो प्रत्येक तरह के जीवन की मूलभूत आकांक्षा है। प्रत्येक मानव में समाहितता और विस्तार, आत्म परिरक्षण और असीमता की एक ही समय आवश्यकता है। शरीर की अभिलाषाओं के साथ, स्वयं की अभिलाषाएँ एक साथ जुड़ी होती हैं। भौतिक प्रकृति इसे संरक्षित करने का प्रयास कर रही है तो आध्यात्मिक प्रकृति इसका विस्तार कर रही है। इसके परे सुरक्षित और संरक्षित करना कारावास है। आध्यात्मिक ललक जन्मजात होती है, लेकिन जरूरत से ज्यादा शिक्षण-प्रशिक्षण के कारण लोगों को लगता है कि यह बाहर से आ रही है। आप सर्व-समाहित करने की इच्छा को रोक नहीं सकते। आदमी में ऐसा कुछ है कि वह सीमाएँ पसंद नहीं करता। असीम होने की यह प्यास आप निर्मित नहीं करते, यह तो जीवन की स्वयं को प्राप्त करने की अभिलाषा है। आप चाहें तो आप किस्तों में इसे अदा कर सकते हैं। लेकिन आधारभूत अभिलाषा तो कुछ असीम जैसा ही ग्रहण करने की है, तब तक यह अभिप्सा बनी रहेगी। सचेत भाव से आध्यात्मिक होना, समझदारी है।''

अपनी बात समझाने के लिए वह लार्वा के तितली बनने और बीज के पेड़ बनने के काफी पुराने उदाहरण देते हैं। इनकी प्रक्रिया में अनिरंतरता महसूस होने के बाद भी, ये निरंतर प्राकृतिक प्रक्रियाएँ हैं। यदि कोई बीज न फूटे तो एक नया अंकुरण कभी न हो। कभी कोई संभावना ही न हो, यदि आप इसके आवरण को सुरक्षित करने का प्रयास करते हैं। बीज वृक्ष बनने की प्रक्रिया में स्वयं को खो देने का भारी संघर्ष करता है—यह अपनी सुरक्षा, अखंडता खोकर और आसपास की स्थितियों के प्रति स्वयं को खुला रखकर अपनी पूर्णता हासिल करता है। लेकिन इन परिस्थितियों से गुजरे बिना जीवन अंकुरित नहीं होगा।

जीवन के इस अंकुरण में किन बातों की आवश्यकता होती है? स्पष्ट है, ''जैसी परिस्थितियाँ हैं, उनके अनुरूप ढलते जाना या कार्य करना, न कि इस प्रक्रिया की अनिवार्यता के खिलाफ संघर्ष करना। विकास तो खैर होता ही है। पसंद तुम्हारी अपनी इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक है। यदि आप इच्छुक हैं तो यह प्रेम है और यदि आप अनिच्छुक हैं तो यह बलात्कार है।''

सद्‍गुरु की एक और बात जो अच्छी लगती है वह यह कि वह कर्म की कोई निर्धारित-सी परिभाषा नहीं देते। वह

प्राय: यही कहते हैं, ''यदि आप सचेत रहकर अपनी जीवन प्रक्रिया संचालित करने के इच्छुक हैं तो आपके लिए भाग्य की कोई बात ही नहीं है। भाग्य तो सौ फीसदी आपका सृजन है। अब भी ऐसा ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि आप इसे बिना सचेत हुए, भूलवश निर्मित कर रहे हैं। योग तो यह सिखलाता है कि आप अपने भाग्य के विधाता इस तरह बन जाएँ कि आपका जीवन, मृत्यु और जन्म ही आपके हाथों में आ जाए।'' वह ठिठोली करते हुए कहते हैं, ''अधिकतर लोग अपनी सफलता का श्रेय तो स्वयं लेना चाहते हैं लेकिन अपनी असफलताओं का कारण अपने कर्म या दैवीय इच्छा को बताते हैं।''

किसी ग्रंथ, आदर्श, धारणा, दर्शन, पूर्णधारणा या मान्यता से गहरा तादात्म्य इस यात्रा में रोड़ा बन जाता है। सद्‍गुरु कहते हैं, ''ज्यों ही आप किसी चीज में विश्वास करते हैं, वैसे ही इसके विपरीत दृष्टिकोण से संघर्ष प्रारंभ होना अवश्यंभावी है। आप हलकी-फुलकी बातें करके इस संघर्ष को मात्र स्थगित कर देते हैं। लेकिन यदि आप मानवीय मन को झंझट में ना डालें तो मनुष्य का खोज करना या साधना करना स्वाभाविक है। जो यह सोचता है कि वह जानता है ऐसे आस्तिक के विपरीत एक खोजनेवाला या साधक 'मैं नहीं जानता' से शुरू करता है। ज्यों ही आप 'मैं नहीं जानता' की स्थिति में आ जाते हैं, आपका जीवन विशाल परिप्रेक्ष्य में प्रारंभ हो जाता है।''

इस क्षेत्र में किसी भी तरह की आत्म-धार्मिकता खतरनाक हो सकती है। सद्‍गुरु कहते हैं, ''अच्छाई भी किसी स्तर तक पूर्वाग्रह है। माता-पिता के बाद स्कूल शिक्षक अपने अच्छे इरादों के कारण, शायद हिटलर से ज्यादा सामूहिक बुराई में शामिल रहे हैं। उसने तो केवल कष्ट को संगठित किया था। यदि आप मुक्ति की खोज में हैं, तो आप बेहतर कर्म करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। आप तो पूरी तरह कर्मों के बोझ को छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे कुछ शिक्षक या गुरु हैं, जो अच्छाई या बुराई का पाठ पढ़ाते हैं। और कुछ मेरी तरह हैं जो दोनों को नष्ट करने की कोशिश करते हैं।''

यदि वह घिसे-पिटे विचारों के प्रति शंकास्पद हैं तो वे कट्टर विचारों को भी प्रश्रय नहीं देते। एक बार उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से कहा था, ''आस्था एक परिपक्व तर्क है, आस्तिकता अपरिपक्व तथ्य है। इस दृष्टिकोण से आस्था का मान्यता से कोई सरोकार नहीं है। यह केवल ईंधन के समान है जो साधक को हमेशा रास्तों में ही रखता है जो कि प्राय: बंद गली में समाप्त होते हैं।'' शक आस्था की यात्रा में एक अहम और अनिवार्य कदम है, लेकिन संदेह को वह एक बीमारी मानते हैं। वह प्राय: इसी संदर्भ में एक बौद्‍धकथा सुनाते हैं, जब एक समर्पित भक्त ने बुद्‍ध से ईश्वर के अस्तित्व के विषय में प्रश्न किया, तो उन महान् गुरु ने इसे नकार दिया। जब एक कटिबद्‍ध संदेही व्यक्ति ने बुद्‍ध से वही प्रश्न किया तो गुरु ने इसे सही ठहराया। इस कहानी का स्पष्ट आशय यही है कि सत्य निश्चित तौर पर मान्यता या अमान्यता से परे है। और आध्यात्मिक यात्रा में साधकों की आवश्यकता होती है, मान्यतावादियों की नहीं।

तो वस्तुत: सत्य है क्या? बुद्‍ध की तरह सद्‍गुरु भी इस प्रश्न पर मूक रहते हैं। यह कोई गंतव्य, कोई निष्कर्ष या कोई पराभौतिक अनुमान नहीं है। बल्कि, उनका कहना है, एक जीता-जागता अनुभव ही सबकुछ है। इसे बोलकर व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल इसकी अनुभूति की जा सकती है। लेकिन इस अनुभव के लिए किसी खास तरह के लोगों का होना जरूरी नहीं है। इस अनुभव की संभावना सभी को उपलब्ध है। यह तो लोगों की तत्परता के स्तर हैं जिसमें फर्क हो सकता है। और इन्हें सुधारा जा सकता है, ''यह शरीर खून, माँस, और हड्‍डी का ढेर मात्र हो सकता है या इस शरीर को एक शक्तिशाली यंत्र में परिवर्तित किया जा सकता है। जब यह एक विशुद्‍ध जैविक अस्तित्व है, आत्मरक्षण और संतानोत्पत्ति की क्रियाओं हेतु ही शक्ति कार्यरत होती है। लेकिन यदि आप इसके साथ कुछ प्रयास करते हैं, तो आप इस मिट्टी के एक टुकड़े को स्वयं दैवज्ञता में परिवर्तित कर सकते हैं। आप इसे वंदनीय देव स्वरूप रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। मनुष्य की प्रकृति का अभिप्राय है कि यह आपके अपने विवेक पर निर्भर है कि ईश्वर आपके भीतर किस तरह कार्य करे।''

यही थोड़े से कार्य का नाम योग है—आंतरिक रसायन विशेषज्ञता का रास्ता जिससे एक जैविक अस्तित्व अपना स्वयं

का रूपांतरण आध्यात्मिक स्वरूप में करता है। यह मनुष्य के रूप में अपनी गहनतम शक्ति को महसूस करने के लिए शरीर, मन, और भावना को एकरूपता में लाने का आंतरिक विज्ञान है। सद्‌गुरु कहते हैं, ''जहाँ मात्र शिक्षा का अस्तित्व है वहाँ स्तुति और आराधना ही होगी। लेकिन जहाँ विधि होगी वहाँ रूपांतरण होगा।''

एक वार्त्ता के दौरान उन्होंने इस विधि को एक अलग भाव में वर्णित किया, ''योग में हम अचानक निर्वाण या जागृति में विश्वास नहीं करते। हम निर्वाण को एक प्रक्रिया बना देते हैं। जेन (ZEN) के अंतर्गत एक खिलते फूल की तरह निर्वाण के घटित होने का इंतजार किया जाता है। एक अचानक निर्वाण की तरह ही। लेकिन योग में हम इसे शनैः शनैः घटित होने देते हैं, क्योंकि यदि यह अचानक घटित हो जाएगा, तो आप शरीर छोड़ सकते हैं। हम ऐसा होने देना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि आप चरणबद्ध आगे बढ़ें। जब आपकी समझ एक स्तर तक आ जाती है, तो आप अगले स्तर की अनुभूति की दिशा में कदम रखते हैं। कुछ अचानक-सा नहीं होगा। कुछ सदमा-सा नहीं होता।''

लेकिन क्या इसका तात्पर्य यह है कि इसमें जादुई आकर्षण कम होता है? यह कम रोमांचक होता है? इसमें कम नाटक होता है?

वह स्वीकारते हैं कि यह संभव है। ''शायद किसी सीमा तक इसमें मनोरमता कम होती है। जब कोई फूल अचानक पुष्पित होता है, यह खूबसूरत या मनोरम होता है। लेकिन यह (योग) एक धीमी प्रक्रिया है। फूल खिलेंगे लेकिन योग में हमें फूलों की चिंता नहीं होती। यहाँ तो हम माली की तरह होते हैं। यह काम नीरस-सा लगता है। हम बीज बोते हैं। हमारा काम केवल मिट्टी तक ही है। हमें पौधों की चिंता नहीं होती। हमें फूलों या फलों की चिंता नहीं होती। हमारे हाथ सदा मिट्टी में सने रहते हैं। हम बागवानी से एक प्रणाली तैयार करते हैं। आप खिलते फूलों से विज्ञान तैयार नहीं कर सकते, लेकिन आप बागवानी से एक विज्ञान निर्मित कर सकते हैं। यदि आप बागवानी में मन लगाते हैं तो फूल तो पुष्पित होंगे ही। यही योग का विज्ञान है। यह कहीं भी सर्वाधिक गहन-गहनतम बोध है। आप जब इसमें आगे बढ़ते जाते हैं तो अंतहीन परतें आपके सामने आती हैं। आप समझ की एक के बाद दूसरी परतें निकालते जाते हैं। मान लो, यदि मैं एक लाख पेड़ लगाता हूँ और मात्र एक पेड़ ही पुष्पित होता है, तो क्या मैं स्वयं को माली कह सकता हूँ? मैं नहीं भी होता तो वह एक पेड़ तो स्वयंमेव तैयार हो जाता, होता या नहीं? लेकिन यदि कम-से-कम पचास हजार पेड़ पुष्पित होते, तो मैं स्वयं को माली कह सकता हूँ। यही तो फर्क है। और यह प्रणाली मेरे जाने के बाद भी कारगर रहती है।''

लेकिन उनके इस कृषक/माली मिट्टी की प्रक्रिया के बाद भी सद्‌गुरु जिस विधि से आध्यात्मिकता प्रस्तुत करते हैं वह नीरसता से कोसों दूर है। यद्यपि इसमें समर्पण तो लगता है लेकिन यह कठोर तप-साधना जैसी होने की अपेक्षा उत्सव की तरह है। इसमें जीवन को नकारने जैसा कुछ नहीं है। वास्तव में कई बार उनके वर्णन सौ फीसदी सकारात्मक तौर पर मौज-मस्ती की तरह हैं। ''मैं सौ फीसदी नशे का समर्थन करता हूँ। मैं शराब नहीं पीता, न ही कोई बाह्य नशीली औषधि लेता हूँ। लेकिन पीने का मैंने एक तरीका सीख लिया है। हर समय मस्ती जिसमें कोई दाम नहीं लगता न हैंगओवर होता है। फिर भी हर समय पूरी तरह संतुलित रहना। और यह आपके स्वास्थ्य के लिए भी हितकर है। क्या पीने का यह बेहतर तरीका नहीं है? शराब से दैवज्ञता तक की मंजिल।''

या फिर, ''आप अपना शरीर ऐसा आनंदमय बना लें कि यहाँ बैठकर साँस लेना मात्र ही अभी तक जो आपने जाना है उसकी अपेक्षा लाखों गुना हो जाए। और साँसें तो दिन में चौबीसो घंटे चलती रहती हैं। यदि साँस इतनी सुखदायी हो जाए, तो आप भला सुख के लिए कुछ और क्यों करेंगे?''

सद्‌गुरु का दृष्टिकोण सम्मिलित होने या करने पर जोर देता है न कि अलगाव पर। यदि आप जीवन से जुड़ते नहीं हैं, तो, जैसा कि वह हमेशा कहते हैं, ''आप मृत हैं। चुनौती यह है कि बिना फँसे या उलझे हुए ही जीवन से जुड़ाव रखना। हमारा जीवन खूबसूरत इसलिए बनता है क्योंकि हम जो करते हैं, उसमें अपना दिल लगा देते हैं। यदि आप गहराई से जीवन से नहीं जुड़ते हैं, तो आपको जीवन की खूबसूरती, उसकी लावण्यता का अहसास कभी नहीं होगा। इसके अलावा यदि आप आसक्ति भाव रखते हैं तो आपको जुड़ाव की खूबसूरती का अहसास कभी भी नहीं होगा। यदि यह सूक्ष्म भेद

आपको समझ नहीं आता तो आपको कष्ट भुगतना पड़ेगा।''

आध्यात्मिक जीवन के परंपरा निषेध— कामुकता और कामासक्ति भी पुरातनपंथियों की तरह नहीं लिए जाते। ''सेक्स और पैसा समस्याएँ नहीं हैं। ये समस्या तभी बनते हैं जब ये मन में प्रवेश कर जाते हैं। यह सत्य है कि उन्होंने इशा में ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के एक समूह को संस्कारित कर रखा है, लेकिन इसमें वह किसी तरह नैतिक तार्किकता प्रस्तुत नहीं करते। 'ब्रह्मचर्य' वह सहजता से कहते हैं, ''इस तरह से अपनी ऊर्जाओं को संगठित करना है कि तुम्हारी शांति और तुम्हारी खुशी सब तुम्हारी अपनी ही हो। यह आपके व्यक्तिगत कार्यक्रम के हिस्सों को त्यागने और मजबूरी से पसंदगी की ओर बढ़ने का तरीका है। यदि आप अनिच्छापूर्वक इसे करते हैं तो यह पूरी तरह यातना है। लेकिन यदि आप इसे स्वेच्छापूर्वक करते हैं तो यह बड़ी खूबसूरत है। दूसरी ओर ब्रह्मचर्य (कौमार्यव्रत) एक भद्दा शब्द है जो उस प्राकृतिक उकसाव को रोकने पर जोर देता है जो शरीर में है और उससे ज्यादा दिमाग में है।''

आत्म-प्राप्ति की इस पूर्ण यात्रा में, लक्ष्य शांति नहीं अपितु यह अचानक उत्पन्न होता उप-उत्पाद है। ''शांति जीवन की अंतिम उपलब्धि नहीं है, बल्कि जीवन की बुनियाद है, सभी मनुष्यों का जन्मसिद्ध अधिकार है।'' तर्क बहुत सहज है। समाहितकर्ता होने की प्रक्रिया—दुनिया को बाह्य न समझकर अपने स्वयं के हिस्से के रूप में देखना—ही अलगाव के बीज को नष्ट कर देती है। ''जो कुछ भी आप अपने स्वयं के भाग के रूप में अनुभव करते हैं, उसके साथ आपका कोई द्वंद्व नहीं हो सकता। खुशी भी इसी का हिस्सा है। और गहन होती सम्मिलित होने या जुड़ने की प्रक्रिया में, हमारा जीवन खुशी की अभिव्यक्ति हो जाता है न कि इसका अनुगमन। खुशी सदा ही आंतरिक स्थिति रही है। आपकी खुशी का स्रोत आपके भीतर ही होता है। लेकिन इस वक्त, यद्यपि यह आपके भीतर है, किंतु इसका बटन किसी और के हाथ में है। इसका स्टार्टर बटन कहीं और है। यह या तो स्टॉक मार्केट में है या आपकी पत्नी के हाथ में है या बच्चों के हाथ में है या आपके पड़ोसी के हाथ में है। आपने इस बटन को सिवा अपने सभी को दे रखा है। कोई खुश है या दु:खी है इसका कारण यह नहीं है कि उनके जीवन में क्या हो रहा है। आप अपने अंदर की जलवायु का नियंत्रण करना जानते हैं या नहीं, बस इतना ही।''

यदि शांति और खुशी इस प्रक्रिया के हिस्से मात्र हैं, तो क्या संपूर्ण मानवता के लिए या ज्ञात से अज्ञात की तरफ जाने में ही कोई और बड़ी उपलब्धि है? अंत में होता क्या है? क्या इसमें कुछ ज्यादा विस्तृत योजना है, खगोलीय योजना है, या कोई सार्वभौमिक सोच है?

जो महसूस होता है वह कुछ भी नहीं। सद्गुरु कहते हैं, ''दैवज्ञता सबकुछ बिना लक्ष्य या उद्देश्य के ही करती है। लक्ष्यपूर्णता या उद्देश्यपूर्णता मन का भ्रम है। ब्रह्मांड एक खाली खोल है जिसमें आपका मन अनंत रूप से उछलता-कूदता रहता है। और आपको इसका ज्ञान तभी होता है जब आप भूमिका निभा सकते हैं, यदि आप बिलकुल गंभीर हैं, तो जो यहाँ उपलब्ध है आप उसे खो देते हैं। और यदि आप सघन होंगे तो आप जीवन के प्रति ग्राह्य रहेंगे। और यदि आप अत्यधिक गंभीर रहेंगे तो आप इसे खो देंगे।''

ऐसी स्थिति में सद्गुरु हमें स्मरण कराते हैं कि आत्मज्ञान का तात्पर्य कहीं जाना नहीं है बल्कि यह महसूस करना है कि कहीं जाने की जगह ही नहीं है। इसमें कोई ज्ञान प्राप्ति संबंधित नहीं है बल्कि हासिल किए गए ज्ञान को खोना है। उन्होंने एक बार इस संदर्भ में कहा था, ''जो सीमित ज्ञान था वह असीमित न जानना हो गया। यह मेरे लिए बहुत ही आश्चर्यजनक था। अधिकतर लोग आंशिक ज्ञान और आंशिक अज्ञान की स्थिति में हैं। लेकिन निर्वाण या आत्मज्ञान एक सीमाहीन अज्ञान की दशा है। जब आप सचमुच ही नहीं जानते तो आप सृष्टि की सीमाओं से बँधे नहीं होते। आप सृष्टिकर्ता की स्वतंत्रता के धारक होते हैं।''

लेकिन आत्मज्ञान के क्षण या उस असीम अज्ञान के बोध के पश्चात् क्या बच रहता है? और हमारे समक्ष उपस्थित व्यक्ति (सद्गुरु) के अनुसार इसका उत्तर है जीवंतता—बंधनहीन, प्रचंड जीवंतता। और सद्गुरु कहते हैं, ''वह जीवंतता कोई तुच्छ चीज नहीं है। यह धरती की महानतम स्थिति है।''

जैसा कि एक बार उन्होंने श्रोताओं के एक समूह में ससंदेह पूछा, ''सृष्टिकर्ता ही आपके भीतर है, आप किस विषय में सोच रहे हैं? सृष्टि का स्रोत ही आपके भीतर स्पंदनशील है। आप इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और क्या सोच रहे हैं?''



‘बाल गेम’ और उससे परे

प्रमुख योजना

उनका जीवन सार्वजनिक तौर पर खुलकर बीता है। ध्यानलिंग के संस्कारीकरण के बाद से दस वर्षों में सद्गुरु के कार्यक्रम और प्रवचनों की दर में भारी वृद्धि हुई है, और उनके पासपोर्ट पर कई और विविध स्टैंप किए हुए पृष्ठ जुड़े हैं। जहाँ एक ओर वह धनी और ऊँची हैसियतवालों के साथ दिल्ली के बैठक कक्षों में और यूरोप के सभा भवनों मे दिखाई पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी जमीन से जुड़ी परियोजनाएँ— ग्रामीण उत्थान कार्य (एक्शन फॉर रूरल रिजुवैनेशन) से आंचलिक जनसंख्या हेतु सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाएँ उनके हृदय के नजदीक होती हैं। तमिलनाडु में उनकी प्रवर्तनकारी वृक्षारोपण परियोजना के कारण वह राज्य के आदर्श व्यक्तित्व बन चुके हैं। इस कार्य के लिए उन्हें हाल ही में इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। और सत्संगों में उमड़ती भीड़ के आधार पर कहा जा सकता है कि वह किसी रॉक-स्टार से कम नहीं हैं।

भीड़ पर जो स्वयं के प्रति प्रभाव है, वह उसे बहुत हलका कर देते हैं। कोटागिरी में भारी उत्साह के साथ संपन्न हुए एक सत्संग के अंत में उन्होंने कहा था, ‘‘यह बहुत उत्साहित महसूस करने की बात नहीं है। बल्कि यह घर (स्वयं तक) पहुँचना है—तात्पर्य यह कि लोग आपको इस रूप में पहचानें जो आप वस्तुत: हैं। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसा कोई पौधा स्वयं को उपजाऊ भूमि पर पाता है।’’

यद्यपि उनके कार्यक्रमों की संख्या उनके लिए अत्यधिक या कष्टकारक-सी लगती है फिर भी उनके आंतरिक जीवन का आयाम स्पष्ट तौर पर अब भी सक्रिय है। उन्होंने हमेशा इस बात को कहा है कि आध्यात्मिक पथ पर जिन लोगों से वह मिले हैं, उनकी अपेक्षा उन लोगों को ज्यादा संस्कारित किया है जिनसे वह नहीं मिले हैं। इससे उनके आध्यात्मिक क्रियाकलाप का एक समानांतर स्तर ज्ञात होता है। ध्यानलिंग के बाद से अन्य संस्कारीकरण भी हुए हैं, जिसमें टेनेसी इशा केंद्र का महिला हाल और कोयंबतूर का लिंग भैरवी शामिल है।

योजनाएँ और परियोजनाएँ दिन-प्रतिदिन दिन-दूनी-रात-चौगुनी गति से बढ़ती महसूस होती हैं। कोयंबतूर के इशा केंद्र में निरंतर निर्माण गतिविधियों की हलचल बनी रहती है। कार्यविधियों की गति से रहवासी और आगंतुक बेचैन हो उठते हैं। अपने आसपास नजर डालते हुए विशाल स्पांडा हाल, होम स्कूल और तेजी से बढ़ते हुए रहवासी कमरों की ओर देखते हुए एक रहवासी कहता है, ‘‘कौन यकीन कर सकता है कि हमने अपनी शुरुआत यहाँ एक छोटी सी कॉटेज और घास-फूस के छप्परवाले ध्यानकक्ष से, मात्र 15 वर्ष पहले की थी।

इशा के लिए सद्गुरु की योजनाएँ क्या हैं? वह इन विषयों का कोई विवरण कदाचित ही देते हैं। लेकिन किसी को भी इस बात का संदेह नहीं है कि एक अप्रकट मास्टर प्लान अस्तित्व में है। वह बड़े रहस्यमय अंदाज में कहते हैं, ‘‘वह हर मास्टर प्लान जिसे गौतम बुद्ध ने अपनाया, मैं भी अपनाता हूँ। गौतम बुद्ध ऐसे गुरु हैं जो अपनी शिक्षा का परिणाम बहुत अच्छी तरह जानते थे। और मैं भी अपनी शिक्षा का परिणाम अच्छी तरह जानता हूँ। मैं कुछ भी आवेगपूर्वक नहीं सिखा रहा हूँ। यदि मैं आपको अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को बतलाऊँ, वे असंभव जटिलताएँ, और जिस भयंकर यथार्थता के साथ मैं इन्हें थामे हुए हूँ, तो शायद आप मुझे बहुत कठोर अनुभव करेंगे या शायद आप सोचेंगे कि मैं भगवान की भूमिका निभा रहा हूँ। लेकिन सभी बातों के परिणाम होते हैं, जिसमें उपदेश या शिक्षण भी सम्मिलित है। क्योंकि शिक्षण भी कर्म होता है। खासकर जब आप आध्यात्मिक क्रियाकलाप में संलग्न होते हैं, और इसका परिणाम काफी विशाल रूप में सामने आता है। इसलिए अगले सौ से पाँच सौ वर्ष में आप जो परिणाम निर्मित करेंगे वह क्या है? यह ऐसा कुछ है जिसे प्रत्येक गुरु को देखना होता है।’’

तो फिर वह इशा के भविष्य का मानचित्र कैसे निर्धारित करते हैं? ''इशा के संदर्भ में अगले छह सौ से सात सौ सालों में प्रक्रिया काफी सक्रिय रूप से जारी रहेगी। तत्पश्चात् यह न्यून स्तर पर जारी रहेगी। लेकिन इसका ऊर्जा भाग अविनाशी ही रहेगा। यद्यपि इस समय शिक्षा ही प्रमुख हिस्सा प्रतीत होता है, किंतु वस्तुत: यह मेरे जीवन का बहुत छोटा हिस्सा है। वास्तविक कार्य जो मैं करता हूँ वह उसमें नहीं है, जो दुनियाभर में मैं कह रहा हूँ या कर रहा हूँ। वास्तविक कार्य उन 'अंडों' में है, जिन्हें मैं निर्मित करता हूँ, जिन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता और जो चिरकालीन रहेंगे।'' निश्‍चित रूप से 'अंडों' से तात्पर्य कुछ ऊर्जा संभावनाओं से है— उनकी आंतरिक अनुभूति का शाश्‍तत्व—जो कि, वह कहते हैं, प्रत्येक गुरु भावी साधकों के लिए छोड़ जाता है। यह अदृश्य किंतु तरंगित रूप से जीवित वसीयत ही प्रत्येक गुरु की विरासत होती है।

एक बार उन्होंने कहा कि वह अपना कोई एक आध्यात्मिक उत्तराधिकारी छोड़ना नहीं चाहते। ध्यानलिंग ही प्राथमिक गुरु होगा एवं अन्य आध्यात्मिक संभावनाएँ भी विविध लोगों द्वारा उपलब्ध करायी जाएँगी। यह स्पष्ट है कि नियम-कायदे अधिक होंगे और आश्रम का जीवन उनके जीवनकाल की अपेक्षा अधिक नियम-कायदों वाला हो जाएगा। इस समय यह बड़ी सावधानी से अराजकता और उत्साह की निर्मित स्थिति है, जिसे हर किसी को उलझन में रखने के लिए कायम रखा जाता है। यहाँ आपको साधना या खोज कराते रहने और आपको चौंकाते रहने के लिए समुचित उलझन भरी स्थिति है।'' क्या यह उचित है? लेकिन कभी भी इतनी ज्यादा उलझनें न हो जाएँ। इस संतुलन को कायम रखना बहुत बड़ा चमत्कार है। इसमें काफी प्रयास लगता है। यदि लोग अत्यधिक स्थिर हो जाएँ, यदि वे अत्यधिक संगठित हो जाएँ तो आध्यात्मिक खोज ही समाप्त हो जाएगी। और आश्रम एक कॉरपोरेशन का रूप ले लेगा। लेकिन फिर आप कितनी अराजकता स्वीकार कर सकते हैं। वह परिवर्तन को अनिवार्य रूप में देखते हैं। जब कोई गुरु उपस्थित हो तो एक निश्‍चित स्तर पर नियंत्रण रहता है, लेकिन वह कहते हैं कि उनके बाद संगठन के लिए एक अपेक्षाकृत विशाल कदम आवश्यक होगा।

एक ओर तो सद्‍गुरु इशा के विस्तार कार्यक्रम को लेकर बच्चों से उत्साहित प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन फिर भी वह हमेशा इस बात को दुहराते रहते हैं कि एक अन्य स्तर पर यह उनके लिए कुछ भी नहीं है। ''मैं चाहता ही हूँ कि परिस्थितियाँ सुधरें। यदि आवश्यक अवसर और संसाधन उपलब्ध हैं, तो मेरा मिशन इस ग्रह (पृथ्वी) का संस्कारीकरण करने का है। यही मैं करना चाहूँगा। कोई भी पुरुष, स्त्री, बच्चा, जानवर या कीड़ा-मकोड़ा ऐसा नहीं होगा जो असंस्कारित हो। कोई भी बंजर स्थान पर जन्म लेने और मरने योग्य नहीं है। यदि हम पैसा, संसाधन और तकनीक की व्यवस्था कर लें, तो दुनिया में गरीबी-भुखमरी बीमारी कम करने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। एक मनुष्य के रूप में मैं स्थितियों को सुधारने के व्यवसाय में लगा हूँ और जीवित रहकर अपना जीवन इसी उद्‍देश्य के लिए दाँव पर लगाना चाहता हूँ। लेकिन एक गुरु के रूप में वस्तुत: फर्क नहीं पड़ता। यदि आप कल ही खेल समाप्त करना चाहते हैं, तो मैं तैयार हूँ। यदि यह कारगर होता है तो ठीक है। यदि नहीं भी होता तो भी ठीक है। शायद तब मेरी आँखों में आँसू और होंठों पर मुसकराहट होगी। अधिकतर समय मैं ऐसा ही रहता हूँ।''

एक ओर तो उन्होंने अपने जाने का समय प्रकट नहीं किया है वहीं दूसरी ओर सद्‍गुरु ने हमेशा कहा है कि उनका इरादा समय और तिथि सुनिश्‍चित करने का है। ''जब तक मैं अपने आसपास आँखों में प्यास देखता हूँ, मैं बना रहूँगा। जिस क्षण मैं आँखों में प्यास नहीं पाऊँगा, मैं चला जाऊँगा। मैं अपनी कब्र में चला जाऊँगा। किसी को भी मुझे वहाँ नहीं ले जाना पड़ेगा, इस बात का मैं आप से वादा करता हूँ। यदि आप में समुचित प्रकांडता है, यदि आप अपना शरीर सचेत रहते छोड़ने में सक्षम हैं तो आपको तभी जाना चाहिए जब सबकुछ ठीक-ठाक हो। मुझे जल्दी नहीं है। लेकिन मैं तभी जाऊँगा जब मैं अच्छा रहूँगा। मैं अपने भीतर बिलकुल विचित्र जीवन जीता हूँ, भले ही यह ज्यादातर लोगों को स्पष्ट न हो। और जिस तरह मैं अंतिम सांसें लूँगा वह दिखने में विचित्र होगा, एक हस्ताक्षर की तरह।''

वह इससे ज्यादा कुछ कहने से इनकार कर देते हैं। वह सहज भाव से हँसते हुए कहते हैं, ''लेकिन ऐसा तभी है जब

सभी अनुमान सही हो जाएँ। कुछ और भी हो सकता है— मेरी कार कहीं टकरा जाए या कुछ भी। लेकिन यह भी विचित्र ही होगा, तो मैं काफी तेज गति से टकराऊँगा!''

उन्होंने घोषणा की है कि अपनी मृत्यु के बाद अस्सी वर्षों तक वह अपने सूक्ष्म शरीर में रहेंगे। ऐसा वह उन शिष्यों के लिए करेंगे जो उनके बाद बचे रहेंगे। जब मैं उनसे यह बात समझाने के लिए कहती हूँ तो वह बड़े शांत भाव से कहते हैं, ''जब कोई व्यक्ति चेतन अवस्था में अपना शरीर छोड़ता है तो इसका तात्पर्य विलय हो जाना होता है। किसी व्यक्ति का मूलभूत रूप विलय हो जाता है। लेकिन यदि आवश्यकता हो तो आप उसमें विलंब कर सकते हैं। जब आप शरीर छोड़ते हैं तो आप यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि एक तरह का विवेक उसमें छूटा रह जाए। ऐसी कोई व्यक्तिगत उपस्थिति नहीं रहती जिसे भौतिक रूप से देखा जा सके, लेकिन आप तब भी आस-पास बने रहते हैं। यदि जरूरत पड़े तो आप सत्संग भी आयोजित कर सकते हैं। परावर्तन जारी रहेगा, केवल बोलना बंद रहेगा।''

किसी स्थिति में भी, वह अपनी आँखों में चमक लिए हुए इशारा करते हैं कि इस बात का कोई सबूत ही नहीं है कि वह अभी भी यहाँ हैं। हिमालय के तपोवन में एक बंगाली माँ नाम की एक वृद्ध महिला संत ने एक बार उनकी तसवीर का बारीक निरीक्षण किया और जोर-शोर से यह घोषणा कर दी कि वह मृत हो चुके थे। जब भौचक्के हो गए साधकों ने सद्गुरु को यह बात बतलाई तो उन्होंने हँसते हुए कहा, ''जहाँ तक अस्तित्व की बात है, मैं अभिलेख से बाहर हूँ। मैंने आप सभी लोगों को मूर्ख बनाया है, लेकिन यह महिला ऐसी है, जिसे मूर्ख नहीं बनाया जा सकता।'' एक अन्य अवसर पर जब उनकी कुछ जाँच की गई, वैज्ञानिकों को उनके मस्तिष्क में गामा किरणें दिखीं और वे भौचक्के रह गए। ''उन्होंने मुझे बताया, या तो आप मृत हैं या आपका मस्तिष्क मृत है। मैंने कहा कि मस्तिष्क का मृत होना बड़ा अपमानजनक है, इसलिए मैं स्वयं मृत होने तक मान सकता हूँ।''

और अपनी मृत्यु के अस्सी साल बाद तक अपने सूक्ष्म शरीर में बने रहकर वह क्या हासिल करना चाहते हैं? वह संक्षिप्त उत्तर देते हैं, ''अपने कार्यों की सफाई। उन लोगों की देखभाल करूँगा जो किसी न किसी तरह इशा से जुड़े हुए हैं और मेरे बाद जीवित रहेंगे। उन सभी लोगों की देखभाल जिन्होंने एक क्षण के लिए भी मेरे साथ बैठने की गलती की है।''

''और उनका क्या होता है'', मैंने पूछा, ''क्या आप उनकी मुक्ति सुनिश्चित करते हैं।''

'मुक्ति' उन्हें जो इच्छुक हैं, वह उत्तर देते हैं, ''मृत्यु के समय ज्यादातर लोगों की यही इच्छा होती है। और शेष लोगों के लिए अगला बेहतर जीवन जिसमें उनका आध्यात्मिक विकास तेज होगा।''

मैं सोचती हूँ कि क्या कभी वह भौतिक शरीर में लौटने के विषय में सोचेंगे? इस विषय पर समझौते की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

''फिर नहीं। मैंने तीन बार ऐसा कर लिया है। एक बार यदि आप अनुभूति कर लें, तो आप कल्पना नहीं कर सकते कि शरीर धारण करना और फिर से जन्म लेना कितना मूर्खतापूर्ण महसूस होता है। भौतिक शरीर में होने का आशय है कि आपको दुनियादारी से भिड़ना पड़ेगा। यह बाल गेम अवश्यंभावी है। और एक बार यदि आप अनुभूति-धारी हो जाते हैं, तो यह खेल बच्चों के साथ खेलने जैसा लगता है। अब आप इसे तटस्थ रहकर खेलें या प्रेम से। लेकिन इसमें कोई चुनौती नहीं है। आप एक सीमा बिंदु से अधिक कुछ चीजों को बंद अवस्था में नहीं रख सकते। मैं बड़ी सहजता से कहता हूँ। फिर से कभी नहीं।''



अनुलेख

वह बातचीत आश्रम के आसपास भोर की सैर के समय हुई। मुझे याद है, सुबह का ही समय था। हमारे चारों ओर का जंगल स्वयं को हरियाली की दर्जनों बोलियों में बड़े उत्साहपूर्वक व्यक्त कर रहा है, ओस की बूँदों से पंक्तिबद्ध जल के रंग, जिस पर प्रकाश छाया हुआ है, से लेकर तैल-चित्रकला के मनोहारी चित्रण तक। सुआपंखी नजर आनेवाली चंचल हरियाली से लेकर जेड सी गहरी हरियाली की रहस्यमयता तक। प्रात: समीर सँभावनाओं को संदेश देती सी। पर्वत छाँह में खड़े हुए, निगरानी करते से, बादलों में लिपटे हुए रात की कड़कड़ाती ठंड की यादें समेटे नजर आ रहे हैं, सूर्य के उदय से उनकी नींदें अभी भी नहीं खुली प्रतीत होती हैं।

फिर भी मेरे साथ सैर कर रहे साथी थोड़े भी निद्रासक्त नहीं हैं। वह संभवत: पूरी तरह जगे हुए हैं। उनकी बातचीत तीक्ष्ण, उनका मन विचारों की ओर झपटता हुआ, उनकी गतिविधियाँ पेड़ों के नीचे उग आई वनस्पति की प्रतियों और उनकी छायाओं के लिए उतनी ही सजग हैं जितनी उनके श्वान की कलाबाजियों और मेरी मनोवैज्ञानिक आबोहवा में हलके परिवर्तन के प्रति हैं। मुझे भोर की यह सैर बहुत अच्छी लगती है, यह सीखने की उस आदर्श स्थिति की छवि के अनूकूल है जिसकी मेरे मन में सदा से चाहना रही है। मैं प्राय: अपने मित्र और शिक्षक के साथ उनकी बातें सुनते, प्रश्न करते और मनन करते हुए मैदानों में और घुमावदार जंगली गलियों में घूमने की कल्पना करती थी। इस घूमते-फिरते शिक्षण प्राप्त करने का मेरे जीवन में गहरा अर्थ है। मुझे बातें, हँसी, तर्कों की हलचलें पसंद हैं लेकिन सर्वोपरि मुझे मालूम है कि मैं सबसे अच्छी तरह कोई बात तभी सीखती हूँ, जब मैं बिलकुल विश्राम की स्थिति में रहती हूँ, जब मैं एक वातावरण को ग्रहण कर सकूँ, वर्तमान में भीगकर तरबतर हो जाऊँ।

हम पुन: आश्रम द्वार में प्रवेश करते हैं। हमारी सैर के दौरान बार-बार ठहराव आता है, जब वह व्यक्तियों का अभिनंदन करते हैं और साधकों के समूह को आशीष देते हैं। वे उन्हें अभिलाषापूर्वक और उत्साह से देखते हुए उनके आसपास एकत्र हो जाते हैं, जिससे मुझमें उतना ही विनीत भाव जागता है, जितना भय। मैं उस विश्वास की सघनता से विस्मित हो उठती हूँ और फिर भी यह मेरे लिए नया तो नहीं है। मैंने भी उन्हें शायद उतनी ही तीक्ष्ण सघनता से देखा है। मुझे आश्चर्य है कि वह इससे कैसे निबटते हैं, कैसे वे उन सभी लोगों के जीवन के साथ समायोजन करते हैं जो उन्हें समर्पित हैं। वह प्राय: प्रत्येक उस व्यक्ति के प्रति, जिससे वह बात करते हैं, पूरी तरह समर्पित होते हैं और फिर अगले ही क्षण वह बड़ी सहजता से अपनी बातचीत मुझसे शुरू करते हुए आगे बढ़ते हैं।

हमारी बातचीत बिना तर्क-वितर्क के किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचती। मैं उस बात के प्रति बड़ी बेचैन हूँ जो उन्होंने पत्रकारों से कही है। वह कहते हैं कि उनकी बात को गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। लेकिन फिर आधे घंटे का समय वह उसी गलत कही गई बात का औचित्य बताते हुए व्यतीत करते हैं। यह उस व्यक्ति का अपना अंदाज ही है।

इस बातचीत से हमेशा की तरह ऊर्जा से ओत-प्रोत होकर मैं आश्रम से उस शाम बाहर निकलती हूँ। साथ ही मैं धीरे-धीरे उनके उस दृष्टिकोण के बारे में बड़बड़ाती रहती हूँ जिससे मैं स्वयं को सहमत नहीं कर सकती। 'यह आदमी मेरा गुरु कैसे है?' उनकी महसूस होनेवाली संपूर्ण उदारता के कारण वह पूरी तरह प्रतिक्रियात्मक हो सकते हैं। मैं कई मुद्दों पर उनसे असहमत रहती हूँ। वह बेतुके, बेसब्र और बेमेल हो सकते हैं। और किसी तर्क को पूरा न कर पाना खीझ भरा होता है।'

विचारों का आवर्ती चक्र वापस लौट आता है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक उस सीमा तक सांसारिक मामलों में लिप्त हो सकते हैं। मुझे लगता है कि वह बहुत विशाल तो नहीं होते जा रहे हैं? इशा की महत्त्वाकांक्षा काफी ऊँची तो नहीं होती जा रही है? मैं सोचती हूँ कि कहीं, अन्य कई लोगों की तरह वह भी अधिकार व सत्ता के कारण भ्रष्ट तो नहीं हो रहे हैं? मैं उनकी इस कठोरता और जिद के विषय में सोचती हूँ। मैं सोचती हूँ कि क्या मैं कभी उनके व्यक्तित्व से समझौता कर सकूँगी? और उनकी एक ही समय में सभी से जुड़े होने और सभी से अलग

होने की योग्यता को समझ सकूँगी?

घर लौटकर मैं अपने मित्रों के विषय में सोचती हूँ। मुझे यह सोचते हुए बड़ा आश्चर्य होता है कि मैं उन्हें एक गुरु की विडंबना के विषय में कैसे बता सकूँगी। मुझे उनके विनम्रता भरे उत्सुक चेहरे याद आ जाते हैं, जब मैं उनकी सुबोधता की उस ऊर्जा के संप्रेषण, उनके पिछले जन्मों की आध्यात्मिक पूर्णता के विषय में बातें करती हूँ। मैं खुद के समय-समय पर आश्रम में चले जाने की बात उनकी समझ में न आने, मेरे एक नए पंथ में डूब जाने, 'वास्तविक दुनिया' और इसके वास्तविक मुद्दों को संगठित आध्यात्मिक सुखद अनुभव में बदलने के प्रति उनकी चिंताओं के विषय में सोचती हूँ। क्या वे कभी समझ पाएँगे कि इस व्यक्ति और इस यात्रा में क्या ऐसा है जिससे मेरा जीवन इतना महत्त्वपूर्ण हो जाएगा? क्या मैं पूरी ईमानदारी से यह कह सकती हूँ कि मैं स्वयं इस बात को समझती हूँ?

पाँच वर्ष पहले मैंने उन (सद्गुरु) पर लिखे अपने लेख में जो बातें लिखीं, वे मुझे अभी भी याद हैं। ''चलो यह कह दें कि हम उनके योग की प्रकांडता और निर्वाण की सभी बातों पर यकीन नहीं करते। फिर भी एक रोचक बात हमारे लिए छूट जाती है। उनकी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता, उनका धर्मनिष्ठा का अभाव...समकालीन शब्द भंडार, एक ऐसी ध्यान प्रक्रिया का प्रशिक्षण जिसमें किसी निष्ठा के बदले केवल कटिबद्ध अभ्यास की आवश्यकता है। सद्गुरु जग्गी ऐसे व्यक्ति का भाव धारण किए रहते हैं जिन्होंने यह जान लिया है कि बुद्धि की स्थिरता में जीवन कैसे जिएँ। शायद यह समुचित है।''

क्या यह समुचित है? यदि अन्य सभी चीजें ले ली जाएँ और मुझे मात्र अभ्यास के साथ ही छोड़ दिया जाए, तो क्या यह सचमुच समुचित होगा? चूँकि मैं बड़े स्थापित गुरुओं की प्रतिष्ठाओं को धराशायी होते हुए और उनके संख्यातीत शिष्यों को दु:ख और द्वंद की स्थिति में देखती हूँ, तो मैं स्वयं से पूछती हूँ कि क्या मैं ऐसा धोखा सहन कर सकूँगी? मुझे विश्वास है कि ऐसी स्थिति नहीं आएगी। और यदि ऐसा होता है तो मेरी भावना को ठेस लगेगी और अत्यधिक वास्तविक कष्ट होगा। लेकिन मुझे विश्वास है— और यह प्रत्युत्तर माना जाता है— कि उत्तर हाँ है। मैं नहीं चाहती कि मेरा विश्वास टूटे लेकिन इससे मुझे समय-समय पर स्थिति का सामना करने में मदद मिलती है। मैं तो सोचती हूँ कि यह अभ्यास एक सारयुक्त उपहार रहा है और यह बढ़ती हुई गहनता इसका अपना पुरस्कार है। और, इससे बेशक यह प्रश्न उठता है, क्या ऐसे उपहार का दाता सचमुच मुझे धोखा दे सकता है?

कुछ समय के लिए अंतर्द्वंद्व रुक जाता है। मन अपेक्षाकृत ज्यादा शांत हो जाता है। मुझे 1977 का मृत्यु के निकट होने का अनुभव याद आता है। मुझे वह आतंक याद आता है। अभिलाषा और निराशा के वर्ष याद आते हैं। शुष्कता के वर्ष याद आते हैं। मुझे आकाश की ओर, उसका मौन हासिल करने के लिए, मुठ्ठी भींचना याद आता है। सात साल बाद पथ प्रदर्शक मिला। वे बहुत लंबे सात साल रहे हैं। और उनका आना मेरी कल्पना से बढ़कर है।

वर्षों पहले तीस की होने पर मैंने एक कविता लिखी थी। इसकी समाप्ति इस पंक्ति से हुई : ''तीस तक तुम जानते हो कि तुम उत्साहित स्वप्नों के विनाश हो चुके साम्राज्य से विशाल और अकाल्पनिक स्थान की ओर दूर चले जाना चाहते हो, जहाँ आगे का हर कदम साहसिक अभियान है और हर आगे का कदम एक लंगर या ठहराव है।''

मैं महसूस करती हूँ कि सद्गुरु यही बात मेरे जीवन में ले आए हैं—साहसिक अभियान और लंगर। और उन्होंने उन्हें एक साथ, एक समय पर ही समाहित कर दिया, जैसा मैं जानती थी। अंदर की यात्रा की संभावना जितनी मैंने कल्पना की थी मेरे लिए उससे ज्यादा रोमांचक हो गई। साथ ही मुझे अपने स्वयं से जुड़ जाने का पहले से ज्यादा गहरा अहसास है। उन्होंने विरोधाभास को जीवित कर दिया है।

जब मैं पक्ष और विपक्ष के सारे तर्कों को हटा लेती हूँ, तो विश्वास की एक गाँठ ही मेरे पास बच रहती है। कुछ लोग इसका विरोध करते हुए इसे एक अनुचित विश्वास ठहराएँगे। लेकिन मैं सोचती हूँ, यह पूरी तरह दृढ़ है लेकिन यह तर्क से पोषित और संदेह से दृढ़ है। अग्नि परीक्षा यह है कि मेरा मानना है कि सद्गुरु के साथ मेरे इतने वर्षों ने उनके व्यक्तित्व पर मेरी निर्भरता समाप्त कर दी है। मैं पूर्ण सुबोधता के साथ देख सकती हूँ कि मैं पहले से ज्यादा अपने जीवन

में भाग लेने लगी हूँ। यह सत्य की कसौटी पर इशा के मेरे साथियों के लिए खरा भी उतरता है— और मात्र गहनता और सघनता में अंतर आता है। कुछ कारगर तो है। और इसलिए विश्वास टिका भी रहता है। मैं आश्चर्य से बार-बार यह महसूस कर रुक जाती हूँ कि उनके पास उनके अलावा कोई एजेंडा नहीं है जो वह खुलकर कहते हैं— लोगों को उनकी मुक्ति की दिशा में पथ प्रदर्शन की कटिबद्धता। क्या यह सत्य हो सकता है? ऐसा प्रतीत होता तो है। वह विलक्षण व्यक्ति हैं—बिलकुल विलक्षण लेकिन मेरा मानना है—वास्तविकता के लिए।

मुझे उनसे सहमत नहीं होना है, स्वीकृति नहीं देनी है, या पसंद नहीं करना है। लेकिन मेरा विश्वास है कि जब यह टेनिसन के 'अवरोध पार करने के' क्षण की बात होती है, जब साँसें अटक-अटककर रुकने को होती हैं, जब वह दुनिया, जिसे मैं जानती हूँ, ढहती है, जब सुबह तीन बजे की विस्मितता वास्तविकता में झिंझोड़कर आ जाती है, तब वह वहाँ होते हैं। मुझे संदेह है कि उनके पास कोई विकल्प ही नहीं है। वह हमेशा की तरह भावुकताहीन किंतु गतिवान, सूक्ष्म और निर्णयात्मक होंगे।

मैं यह बात किसी और, जिन्हें मैं जानती हूँ, उनके लिए नहीं कह सकती। मुझे पता भी नहीं है कि इसका अभिप्राय क्या है। लेकिन मुझे यकीन है कि जब अंत आता है, तो जो उन्हें करना होगा, वह करेंगे। वह उस कार्य को करेंगे जिसमें उन्हें महारत हासिल है। जब अंत आएगा, तो सद्गुरु मेरी नैया पार करेंगे—उन्हें करनी होगी— बल्कि वह कर ही देंगे।

